प्रथम पुष्प

जयपुर चातुर्मास की पुण्यस्मृति में

पावस-प्रवचन

प्रवचनकार

आचार्य श्री १००८ श्री नानालालजी म०

प्रवचन प्रकाशन समिति
लाल भवन : चौड़ा रास्ता, जयपुर-३

हार्दिक अभिनन्दन !

अनन्त आकाश से विशाल,
सागर से गम्भीर,
जाह्नवी से पवित्र,
अरावली से अचल—
परम आदरणीय जैन आचार्य श्री १००८ श्री
नानालाल जी म० साहब की सेवा में सादर
वन्दन ! अभिनन्दन !

श्री वर्द्धमान श्वे० जैन स्थानकवासी श्रावक संघ

जयपुर (राजस्थान)

अनुक्रमणिका

श्रद्धा के दो शब्द

मानव जीवन के विकास सम्बन्धी इतिहास पर यदि दृष्टिपात किया जाय तो यह स्पष्ट होगा कि मानव निरन्तर व्यक्ति एवं समूह के जीवन की विषमताओं से संघर्ष करता आया है, एवं समता की साधना में निरत रहा है। इस संघर्ष को अब तक जितनी सफलता मिली है इसके प्रकाश में कई व्यक्तित्त्व भी आदर्श एवं समादरणीय बनते रहे हैं। विषमताओं से संघर्ष का उद्देश्य रहा है अधिकाधिक सम-वातावरण एवं सम-प्रगति मार्ग का निर्माण। विषमता से सन्ताप जन्म लेता है और यही सन्ताप आर्तध्यान एवं रौद्रध्यान की मलिन धाराओं में आत्मा को ढकेलता हुआ उसे अधोगामी बनाता है। इसलिए समता की ओर अग्रसर होने की चेष्टा जीवन को 'कु' से 'सु' की ओर गतिशील बनाने की चेष्टा कहलायेगी।

समता मानव जीवन की अमृतमयी भावना है, क्योंकि यही भावना जब कार्य एवं आचरण के रूप में उभरती है तो व्यक्ति के जीवन में उदात्तता, सहनशीलता एवं सत्प्रेरणा जागृत होती है। व्यक्ति की ऐसी जीवनधारा जब सम्यक्त्व की श्रेष्ठता की ओर उन्मुख होती है तो वह निश्चय ही सारे समाज की विचार एवं आचार की धाराओं को भी प्रभावित किए बिना नहीं रहती। पूज्य आचार्य श्री नानालाल जी म. सा. के प्रस्तुत संकलन में आबद्ध प्रवचन इसी प्रकाशमयी दिशा की ओर मानव जीवन को अनुप्रेरित करते है।

एक साधक और आचार्य श्री जैसे प्रबुद्ध एवं कर्मठ साधक जब अपने ज्ञानानुभव के आधार पर प्रवचन-प्रवाह से जो मार्ग दर्शन देते हैं, वह अंतर-भाव की दृष्टि से एक उन्नायक वैशिष्ट्य लिए हुए होता है। उसे हृदयंगम करना और उसमें अपने आचरण को ढाल देना एक सच्चे भक्त का काम होता है। समता-दर्शन पर आधारित ये प्रवचन संसार एवं उसमें साधारण रूप से चल रहे जीवन की कुटिल विषमताओं को गहरी दृष्टि से समझाकर उन्हें दूर करते हुए समतामय जीवन निर्माण की एक नई दिशा देते हैं। पाठक यदि इस संकलन को आत्म-जागृति के साथ एवं अनुभूतिपूर्वक पढेंगे

तो अवश्य ही उन्हें अपने समग्र जीवन को उत्कृष्ट, भावना के प्रवाह में परिवर्तित करने की अनूठी प्रेरणा प्राप्त होगी।

वचन प्रवचन तभी बनते हैं जब वे प्रबुद्ध जनों की शास्त्र सम्मत विचारणा से उभर कर उनकी अपनी मौलिक निष्ठा को छूते हुए निकलते हैं। यही कारण है कि प्रवचन भावनाशील श्रोता अथवा पाठक के हृदय को सीधे तौर पर संवेदित करते हैं। इसके साथ ही यदि उसकी भावना ने प्रवचन के प्रवाह में समग्र रूप से अवगाहन किया तो वह श्रोता या पाठक कर्मठ बनकर स्वयं एवं समूह दोनों के जीवन में आदर्श उत्थान की प्रेरणा फूँकता है। प्रस्तुत संकलन के प्रवचन उत्थान की इसी दिशा को प्रकाशित करते हैं।

उपदेष्टा जब उपदेश देते हैं तो जिस भाव, भाषा एवं शैली का प्रयोग करते हैं—उसका अभिप्राय यही होता है कि वे श्रोता के हृदय को स्पन्दित करें। उपदेष्टा के प्रत्यक्ष दर्शन एवं श्रवण का जो सीधा सुप्रभाव होता है उसे उस प्रवचन की सम्पादित लिपिबद्धता में बनाए रखना सरल नहीं होता, फिर भी प्रयास उसकी श्रेष्ठता मौलिकता के निर्वाह की तरफ ही होनाचाहिए। इस संकलन को व्यवस्थित रूप देने में श्री शान्तिमुनि जी ने कठिन श्रम किया है वह इस दृष्टि से सार्थक रहा है तथा यह संकलन पाठकों के लिए सुवोध, पठनीय एवं प्रेरणादायक वन पड़ा है।

मुझे विश्वास है कि समतादर्शन की गहराइयों को समझने एवं उनमें अपनी अनुभूति को क्रियाशील दृष्टि से जागृत करने में इस संकलन से पाठक अवश्य उद्‌वोधित होंगे।

—शान्ति चन्द्र मेहता
एम. ए. एल-एल. बी. एडवोकेट
प्रधान सम्पादक ललकार साप्ताहिक
एवं अध्यक्ष अभिभापक संघ चित्तौड़गढ़ राज०

जयपुर
दि. २६-६-१६७२

प्रकाशकीय

श्रद्धेय जैनाचार्य श्री नानालाल जी म. सा. श्रमण परम्परा के एक उन्नत साधक तो हैं ही, किन्तु जैन समाज के एक जाज्वल्यमान नक्षत्र भी हैं। सांसारिक वासनाओं के पंक से जिनके चरण प्रारम्भ से ही तनिक भी मलिन नहीं हुए हैं तथा जिन्होंने अपने जीवन का श्री गणेश ही आत्मिक साधना से किया है, ऐसे इन आचार्य श्री की प्रतिभा एवं इनका प्रभाव अनुपम है। आचार्य श्री बाल ब्रह्मचारी हैं एवं इन्होंने अपने दीर्घ दीक्षा काल में महान् धर्म-यश का अर्जन किया है। समूचे साधु समाज के लिये आप एक अतुलनीय आदर्श हैं। वीतराग वाणी के आप प्रखर प्रवक्ता हैं तथा इनका एक-एक वचन आत्म ज्ञान की दृष्टि से 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' के लक्ष्य से युक्त होता है। ऐसे महापुरुष का चातुर्मास जयपुर में सम्भव हो सका यह हम सबके लिये सौभाग्य की बात है।

आचार्य श्री के इन्हीं विचारपूर्ण प्रवचनों के व्यापक प्रसार की दृष्टि से इसी हेतु निर्मित प्रवचन प्रकाशन समिति ने इनके क्रमबद्ध प्रकाशन की योजना बनाई और उसी के कार्य रूप में यह प्रथम संकलन प्रस्तुत है। इस शृंखला में 'पावस प्रवचन' के शीर्षक से ही सात संकलन और प्रकाशित किये जायेंगे जिनमें चातुर्मास के समस्त प्रवचनों का सम्पादित रूप समुपस्थित हो जायगा। इस रूप में जयपुर चातुर्मास की यह सुखद स्मृति भी रहेगी।

सूक्ष्म विवेक आचार्य श्री के जीवन की प्रमुख विशेषता है तथा उनका प्रत्येक प्रवचन साधु मर्यादा एवं शास्त्राज्ञा की सीमा में आबद्ध होता है। अपने नपे तुले शब्दों में वे उपदेश देते हैं जिसका एक मात्र उद्देश्य आत्म जागृति होता है। उनके इन उपदेशों के प्रकाशन या मुद्रण से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है अतः इस पावस प्रवचन माला में कोई भी शब्द या वाक्य सदोष आ गया हो अथवा मूल भावों में कोई अन्तर दिखाई दे तो उसके लिये हम ही उत्तरदायी हैं, क्योंकि ऐसी भूल हमारे से ही प्रमाद वश संभव है। गुरुदेव का कार्य तो प्रवचन देना मात्र है। उनके प्रकाशन, मुद्रण एवं प्रसार

की समस्त व्यवस्था हमारी अपनी है। जिसकी भूलों को स्वीकार करना भी हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

पावस प्रवचन माला को व्यवस्थित रूप देने में आचार्य श्री के सुशिष्य श्री शान्ति मुनि जी महाराज के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता, आपने इन प्रवचनों का अवलोकन करके हमारे इस कार्य को सुगम बनाया है इसके लिये समिति उनकी कृतज्ञ है। इसके अतिरिक्त वे प्रमुख रूप से सर्व श्री बालचन्द जी बैद, नरेन्द्र जी भाणावत, चेनसिंह जी बरला, प्रेमराजजी बोगावत, श्रीचन्द जी सुराणा, 'सरस' एवं श्री सुगनचन्द जी तातेड़ चुन्नीलाल जी ललवानी आदि महानुभावों ने अपना जो भावनापूर्ण सहयोग दिया है, तथा श्रीविष्णु प्रिंटिंग प्रेस के मालिक श्री रामनारायण जी मेड़तवाल ने बड़ी तत्परता के साथ सुन्दर मुद्रण कर समय पर कार्य संपन्न किया एतदर्थ हम उनके प्रति भी अपना आभार प्रदर्शित करते हैं।

यदि समग्र समाज ने इन प्रकाशनों को पसन्द किया तथा विज्ञ पाठकों ने इनको पढ़कर अपना कर्त्तव्य बोध लिया तो हम अपने इस प्रयास को सार्थक समझेंगे।

प्रस्तुत सकलन की श्रृंखला में आगे भी इस चातुर्मास में आचार्य श्री द्वारा दिये गये समस्त प्रवचनों का पावस प्रवचन के नाम से विभिन्न संकलन प्रकाशित करने की प्रवचन प्रकाशन समिति की योजना है। इस रूप से जयपुर चातुर्मास की पवित्र स्मृति तो रहेगी ही किन्तु यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि भी होगी। आशा है कि सभी सहृदय सज्जनों का सहयोग मिलता रहेगा।

विनीत
पारसमल डागा
संयोजक एवं प्रबन्ध संपादक
प्रवचन प्रकाशन समिति

जयपुर
लाल भवन
४-१०-७२

चारित्र चूड़ामणि जैनाचार्य

श्री १००८ नानालालजी महाराज साहब

के

जयपुर चातुर्मास

के

प्रेरक-पावस प्रवचन

हम सबको आत्म-जागृति में

सहायक हों

श्री अखिल भारतीय
साधुमार्गी जैन संघ
बीकानेर

अर्थात् आत्मिक शक्ति का सर्वाङ्गीण विकास जिसमें हो चुका हो, जाति, गोत्र, व्यक्ति, पार्टी से सर्वथा भिन्न हो, समकारक हो और वास्तव में प्राणियों के लिए समभाव का चरम स्वरूप हो। ऐसे आदर्श को सामने रखकर यदि मानव अपनी वृत्तियों को मोड़ दे दें तो आज जो संसार की विषम दशा दृष्टिगत हो रही है, वह सारी की सारी समाहित हो जाय। मानव का मस्तिष्क जब नहीं समझता है तो—मस्तिष्क में अनेक प्रकार की विषम वृत्तियां घर किये रहती है, जब मस्तिष्क विषमता की भावना को लेकर चलता है तो भावना के अनुसार उस मानव की वृत्तियाँ भी विकृत बनती हैं। एक दृष्टि से देखा जाय तो मानव का मस्तिष्क विचारों का एक मुख्य केन्द्र है, उस केन्द्र में यदि समता भाव के साथ वास्तविक तत्त्व दृष्टि आ जाय, विचारों का परिमार्जन होकर शुद्ध वृत्तियों का प्रादुर्भाव हो तो मस्तिष्क सुधर जाय, तात्पर्य यह है कि विचारों की शुद्धि ही मस्तिष्क की शुद्धि है और विचारों की शुद्धि से आचार पवित्र बनता है। उस व्यक्ति की वाणी की धारा भी पवित्र गंगा की तरह बहने लगती है, और जो भी वचन व्यक्त होते हैं वे प्रत्येक मानव के दिल को प्रमुदित करने वाले बन जाते हैं। विचारों के बदल जाने से इन्सान का जो आचार होता है, वह भी बदल बगैर नहीं रहता है। विचार, आचार और उच्चार जब तीनों की एक-रूपता बनती है। उस वक्त मनुष्य के स्वयं के जीवन की विषमताओं की तमाम स्थितियाँ समाहित हो जाती हैं, और वह अपने जीवन में एकरूपता की भावना का अनुभव करता है। वहभावना पास-पड़ोस में रहने वाले व्यक्ति को प्रभावित करती है और विस्तार करते हुए वह समाज, राष्ट्र और विश्व को आप्लावित करता है। आज इसी अनुसंधान की आवश्यकता है।

आज यद्यपि विश्व के अन्दर मानव का मस्तिष्क शान्त नहीं है।

वह विभिन्न प्रकार की खोजों में लगा हुआ है। वह चाहता यही है, कि इस मानव जीवन से परम शान्ति का स्वरूप, परम पवित्र रूप, वास्तविक सुख का स्थान उपलब्ध हो। इस आकांक्षा से व्यक्ति अपना रास्ता स्वतः बनाता जाता है। अपने मन की कल्पना के अनुसार वह खोज में लगता है। जब उसे ज्ञात होता है कि अमुक स्थल पर कुछ उसे उपलब्धि होने वाली है तो वहाँ जाने में भी वह संकोच नहीं करता है चाहे वह समुद्र की गहराई में हो, चाहे वह पहाड़ों की विकट ऊँचाई में हों, चाहे भयावना जंगल हो, लेकिन मानव उस उपलब्धि के लिए अपनी सारी चिंताएँ छोड़कर आगे बढ़ता ही जाता है।

आज का युग वैज्ञानिक युग है। विज्ञान प्रगति कर रहा है किन्तु यह प्रगति अधूरी है क्योंकि इस वैज्ञानिक स्थिति के साथ में, मानव का मस्तिष्क विज्ञान ही को सब कुछ समझकर चल रहा है। विज्ञान के विषय में यदि विस्तृत व्याख्या की जाय तो किसी के मतभेद का प्रश्न ही नहीं आता। विज्ञान के अन्दर सब तत्वों का समावेश है, विज्ञान के अन्दर सब का समन्वय है। यदि विज्ञान के अर्थ को संकुचित किया जाय और सिर्फ भौतिक तत्वों के विकास को ही विज्ञान कहा जाय तो वह विवाद का विषय बन जाता है क्योंकि विज्ञान भौतिक तत्वों का भी होता है और आध्यात्मिक जीवन के साथ भी उसका गहरा सम्बन्ध है। एक दृष्टि से आध्यात्मिक जीवन से ही विज्ञान का प्रादुर्भाव होता है। लेकिन मानव का मस्तिष्क, अन्तर की उस आध्यात्मिक शक्ति को लक्ष्य बनाने में अभी तक पूरा कामयाब नहीं बन रहा है। यही कारण है कि वह बाहरी पदार्थों में सुख-शान्ति को खोज रहा है। इस प्रकार विज्ञान की अनेकों उपलब्धियाँ होने पर भी मानव को अभी तक सन्तुष्टि नहीं मिल रही है, शान्ति और समता के दर्शन पूर्ण रूप से नहीं हो रहे हैं। मानव तथाकथित उपलब्धि से सन्तुष्ट है, लेकिन वस्तुतः यह स्थिति दिन-प्रति दिन

उसके जीवन को विषमतर बनाती चली जा रही है। वह चाहे भू-मण्डल से उठ कर गगनमण्डल में उड़ने के लिए, चाहे आकाश के अन्दर चमचमाते हुए सितारों को पकड़ने के लिए दौड़े, चाहे तथा-कथित चाँद आदि ग्रहों पर पहुंच जाय, लेकिन वहां पर भी वह वास्तविक शान्ति का स्वरूप, परमपवित्र रूप उपलब्ध होने वाला नहीं है। एक दृष्टि से देखा जाय तो यह खोज एकांगी बन रही है, उस एकांगी खोज को मोड़देकर सर्वांगोण खोज के साथ अगर जोड़ा जाय तो मानव-जीवन की तमाम समस्याएँ एक समता के धरातल पर सुलझ सकती हैं।

अभी जिन सिद्ध परमात्मा की प्रार्थना की गई है उस प्रार्थना में अनुसंधान का संकेत है। आज भौतिक अनुसंधान तीव्र गति से बढ़ रहा है किन्तु आध्यात्मिक अनुसंधान के अभाव में वह निर्जीव है, उसमें वह रौनक नहीं है जो आज के मानव जीवन के लिये नितान्त आवश्यक है अतः हमें आध्यात्मिक अनुसन्धान की ओर जीवन को मोड़ देना है। इसीलिए कविता में संकेत दिया गया है—

"तुझ में मुझ में भेद न पाऊं ऐसा हो संधान।
अजर अमर अखिलेश निरंजन जयति सिद्ध भगवान॥"

बन्धुओ, कविता का संकेत निमित्त मात्र है, लेकिन वह संकेत यदि हमारी अन्तर की दृष्टि को, अन्तर की जिज्ञासा वृत्ति को अन्तर की तमन्नाओं को, अन्तर के उल्लास आदि को आध्यात्मिक दृष्टि की ओर मोड़ दें और हम आध्यात्मिक अनुसन्धान में लग जायँ तो कविता का संकेत हमारे लिये आदर्श बन सकता है। इस कड़ी में तो बड़ा लम्बा-चौड़ा संकेत दिया गया है। परमात्मा का अनुसंधान करने के लिए "तुझ में मुझ में भेद न पाऊँ, यह लक्ष्य के रूप में रखा गया है। आत्मा का विकास इतना हो कि परमात्मा के तुल्य मैं बन जाऊँ। यह वास्तविक समता का परम आदर्श है, और उस स्थिति में गरीब और अमीर का भेद नहीं है, सुख और दुर्भाग्य की स्थिति

नहीं है, वह वास्तव में स्थायी समता का परम रूप है। उस परम रूप का अनुसंधान करने के लिए यदि व्यक्ति निश्चय कर लेता है कि मैं अनुसंधान के साथ भगवान के तुल्य बनूँ, इतना बड़ा लक्ष्य जब स्थिर होता है तो वह व्यक्ति उस लक्ष्य को केवल आदर्श के रूप में नहीं रखेगा, लेकिन यथार्थवाद की भूमिका पर वह जीवन को सुधारने का प्रयास करेगा। और सुधार की स्थिति के साथ जब जीवन में परिवर्तन होगा उसका आचरण उसी समता सिद्धान्त के साथ जोड़ कर उस रास्ते पर चलेगा तो उस जीवन का रूप कुछ और ही होगा।

आत्मा में परमात्मा

मैं इधर उधर परिभ्रमण करता हूं। वह परिभ्रमण उसी लक्ष्य की सिद्धि के लिए है। आत्मिक शक्तियों का विकास हो और जन मन में समता सिद्धान्त की भावना प्रचारित हो। यद्यपि आज विश्व के अन्दर जिन-जिन बातों का वायुमण्डल बन रहा है, वह चाहे राजनैतिक धरातल पर हो, चाहे सामाजिक क्षेत्र में हो, उन क्षेत्रों में जो यह आवाज बुलन्द हो रही है कि समता प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का अंग बने। शाब्दिक दृष्टि से भले ही उसे समता न कहकर, समाजवाद के रूप में कहें लेकिन वह समाजवाद भी वास्तविक हो। वह समाजवाद भी प्राणवान कब बनेगा, जब कि वह समता सिद्धान्त दर्शन को अपने स्वरूप में स्थान देगा। समता सिद्धान्त-दर्शन का तात्पर्य सबको एक ही रूप में देखने का नहीं है। बच्चा बच्चे के रूप में रहेगा, वृद्ध वृद्ध के रूप में समझा जाएगा, तरुण तरुण के रूप में देखा जाएगा। बच्चे की आवश्यकता क्या है अर्थात् बच्चे को किस प्रकार की सामग्री की आवश्यकता प्रेरित कर सकती है यह भी देखना होगा। इसप्रकार समता की व्यापक परिभाषा के अनुसार जो वर्गीकरण होगा वह समता सिद्धान्त के साथ होगा। समता सिद्धान्त वस्तु के वास्तविक रूप को उपस्थित करता है। जो वस्तु जैसी है उसे

उसी रूप में देखा जाय। उसके वास्तविक रूप को विकृत न करके वस्तुतत्त्व का निर्णय किया जाय तो समता सिद्धान्त दर्शन का दार्शनिक रूप हमारे सामने झलकने लगेगा। किन्तु हम समता सिद्धान्त के दार्शनिक रूप में ही न उलझ जाएँ उसे जीवन के कर्तव्य क्षेत्र में चरितार्थ करें ताकि समता सिद्धान्त के अनुरूप समता जीवन दर्शन का निर्माण है। और इस प्रकार जब समता जीवन दर्शन में छोटी-छोटी बातों को ठीक तरह से समाहित करके उनको समता सिद्धान्त के साथ असली रूप देंगे, तो समता जीवन दर्शन के धरातल पर उस आध्यात्मिक दर्शन की उपलब्धि होगी। जिसे हम आत्मदर्शन की संज्ञा देते हैं। आत्मदर्शन की प्राप्ति के साथ जब आध्यात्मिक उल्लास और आन्तरिक निर्विकारदशा जागृत होगी तो जीवन समता परमात्मा-दर्शन के रूप में परिवर्तित हो जाएगा। वही समता की पराकाष्ठा होगी, वही समता का चरम स्वरूप होगा और वही आत्मा का चरम साध्य परमात्म पद होगा। अर्थात् आत्मा स्वयं परमात्मा के रूप में परिलक्षित होगा। इसीलिए कहा गया है कि आत्मा स्वयं परमात्मा बन सकती है। आचार्यों कथन का है **अप्पा सो परमप्पा**—जो आत्मा है, वही परमात्मा है, लेकिन कब ? जब सारी विषमताएँ दूर हो जायेंगी, सर्वत्र परम पवित्र समता का साम्राज्य हो जायेगा।

आत्मा जब चरम, सर्वांगीण समता रूप में पहुंच जाती है, तब वह निर्विकार दशा को प्राप्त हो जाती है, यही परमात्मा के तुल्य बनना है। इसी का अनुसन्धान हमें करना है, जिसका कि कविता में संकेत किया गया है।

यह जयपुर नगर राजस्थान की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध है। इस नगर में जब होली चातुर्मास के आसपास उपस्थित हुआ था और यहां कुछ रहने का प्रसंग भी आया उसके पश्चात जयपुर संघ का अत्यधिक आग्रह होने से चातुर्मास का प्रसंग भी यहां

बना। चातुर्मास की दृष्टि से मैं यहां आ भी गया हूं लेकिन अब जयपुर संघ को क्या करना है! राजधानी की जनता को अपने जीवन में वास्तविक रूप से कुछ परिवर्तन लाना है? या उन्हीं कुरीति रिवाजों के साथ अपने जीवन की इतिश्री करनी है। जो वातें इतने दिनों से चलती आ रही हैं, प्रत्येक व्यक्ति के साथ जो कुछ रूढ़ियां लगी हुई हैं जिनमें वह अपने आपको आबद्ध पाता है, वह अपने आपको खोलने की कोशिश नहीं कर पा रहा है, अपने आपको व्यापक वनाने के लिए ध्यान नहीं दे रहा हैं। अब भी उसी भावना के साथ उन्हीं रूढ़ियों में बँधे रहना है या अपनी आत्मा की भावना को साथ लेकर एकत्व भावना के साथ आगे वढ़ना है? यह सारा चिंतन जयपुर की जनता को करना है। जयपुर की जनता को ही नहीं अपितु संपूर्ण मानव समाज को इस विषय में गहरा चिन्तन करना है। मैं माध्यम बन रहा हूं। अपनी शक्ति के अनुसार कुछ बातें वतला रहा हूँ। लेकिन मैं जो वतलाता हूँ वही आप ग्रहण कर लें उसी को आप मान लें यह मेरा आग्रह नहीं है। मैं जो कुछ वातें कहता हूं उन बातों को आप समझने की कोशिश करें। यदि आपको सत्य, तथ्यात्मक लगे, आपको सही चीज मालूम हो, यदि आपके जीवन के लिए हितावह हो, तो ग्रहण करें। मैं किसी के ऊपर थोपने की स्थिति में नहीं हूं। हां, यदि किन्हीं को मेरे विचारों को समझने में भ्रांति हो जाय तो उस भ्रांति को निकालने के लिए हर व्यक्ति के लिए दरवाजा खुला है। वे दिल खोल कर पूछ सकते हैं कि ये विचार आपने किस रूप में कहे हैं? इनका क्या तात्पर्य है? इसके लिए मैं सदैव तत्पर हूं। लेकिन आगे जिस स्थिति से आप लोगों को, एक प्रकाश प्राप्त करना है और नितान्त समतापूर्ण स्थिति के साथ यदि कुछ कार्य प्रारम्भ करना है तो आज जो समाजवाद की पहल राजनैतिक क्षेत्र में चल रही है उसमें जिन-जिन वातों की कमी है, उन कमियों पर

विचार करते हुए उसके अन्दर आध्यात्मिक भावना का पुट देना है। वैज्ञानिक दृष्टि से उसका समन्वय करते हुए आप, समता सिद्धान्त दर्शन के आधार पर अपने जीवन की गुत्थियों को सुलझाने की कोशिश करें और जो रूढ़िगत परम्पराएँ हैं जिनके अन्दर मानव घुट रहा है। उनके कुछ परिष्कार का प्रयास करें। आज मध्यम वर्ग की कैसी दुर्दशा है ? मानव कुछ समझ नहीं पा रहा है कि वह क्या करे ? जिसके पास कुछ अधिक पैसा इकट्ठा हो गया है, वे अपने आप में फूले नहीं समा रहे हैं और अपने आपको समझ रहे हैं कि वे तो सब कुछ बन गए, लेकिन जिनके पास इसकी कमी है वे मन मसोस कर बैठे हैं। आज इस विषमता की खाई को पाटने के लिए समता सिद्धान्त दर्शन की नितान्त आवश्यकता है, जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने विषम जीवन को समरूप में देख सके।

जीवन की भूमि को सम बनाओ

यह चातुर्मास का समय है और चातुर्मास की दृष्टि से संतों का आगमन हुआ है। इन संतों के आगमन और इस चातुर्मास के प्रसंग में आप आध्यात्मिक क्षेत्र में और जीवन के क्षेत्र में एक दृष्टि से कृषक बन जायँ। यद्यपि भारत देश कृषि प्रधान देश है, जन-संख्या की दृष्टि से यहाँ किसान अधिक हैं। ये किसान खेती करने के लिए हल हांककर जमीन के अन्दर बीज डालकर खेती करते हैं और उनके आधार पर जनता का जीवन चलता है। मै यह चाहूंगा कि आप भी एक तरह से कृषक बनें। आप सोचेंगे कि क्या इस शहर के अन्दर हमसे खेती करायेंगे, हल चलायेंगे। मैं कहूंगा कि वह हल तो आपके अन्य बन्धु हांकते ही हैं। आप उस हल को न हांके लेकिन जीवन के अन्दर हल हांकिए, अपने जीवन को देखिए कि हमारे मन में, हमारे दिल और दिमाग में, कौन सी घास पैदा हो रही है ? किसान खेती करने लगता है तो

पहले खेत को साफ करता है, उसके अन्दर कंकर पत्थर रह जायेंगे तो खेती ठीक से नहीं हो पायेगी। इसलिए बीज बोने से पहले किसान खेत को साफ करता है, कंकर पत्थरों को बाहर निकालता है और खेत को समभाव से समतल करता है। आपने कभी किसानों को देखा होगा कि किस प्रकार खेतों को साफ करके बीज बोते हैं, और बीज बोने के साथ ही वे निश्चित नहीं हो जाते हैं। लेकिन उसमें यदि कचरा उत्पन्न हो जाए तो उसको भी निकालने का प्रयास करते हैं और तभी जा करके वे समय के बाद फसल की प्राप्ति करते हैं। वैसे ही जीवन की खेती का प्रसंग है। अपने जीवन की खेती को पकाने के लिए इस चातुर्मास के प्रारम्भ में प्रत्येक मनुष्य अपने मन मस्तिष्क में जो विषमताओं के कंकर-पत्थर पड़े हुए हैं उनको बाहर निकालें, उनको फेंक दें और कंकरों को फेंकने के बाद फिर आगे समता सिद्धान्त दर्शन के आधार पर वीतराग वाणी को श्रवण करें और इसके साथ जो अपने लिए हितावह हो, उसको ग्रहण करें और जो विषम भावना है उसको छोड़ दें। जीवन की, अन्तर हृदय की भूमि जब सम होगी, स्वच्छ होगी तभी उसमें धर्म की, आत्मिक सुख की फसल पकेगी। इस दृष्टि से यदि मानव चले और समता सिद्धान्त दर्शन को जीवन में अपनाते हुए, इस लक्ष्य को अपने सम्मुख रखें तो यह चातुर्मास सारे मानव समुदाय के लिए आदर्श उपस्थित कर सकता है।

आप यह न समझिये कि यहाँ सिर्फ महाराज अपने लिए कुछ करते होंगे, मेरे लिए तो मैं साधना में लगा हुआ हूं और मैं मौन रहकर भी साधना कर सकता हूं, गुफा में बैठकर भी साधना करने की स्थिति में रह सकता हूं लेकिन जब इस समाज में रहना है तो उसके हित की दृष्टि से भी सोचना पड़ेगा, समाज के हित की बातों को भी सामने रखना पड़ेगा और जो सामाजिक दृष्टि से हितावह है, वह मेरे लिए भी हितावह हो सकती है और वह

प्रत्येक मानव के लिए भी हितकर है, इसी दृष्टिकोण से मैं यहाँ कह रहा हूं, इसमें किसी व्यक्ति विशेष या किसी पार्टी विशेष का प्रसंग नहीं है। मैं तो यह चाहता हूं कि व्यक्ति-व्यक्ति में जो विषमताएँ हैं वे दूर हों,व्यक्ति,पार्टी,जाति सब एकरूप होकर मानव के कल्याणार्थ कार्य करें और इस प्रकार आगे बढ़ते हुए स्व-पर के जीवन को पवित्र बनावें।

सामाजिक कुरीतियों के कारण अगर कोई विषम परिस्थिति आ गई है, भेदभाव की कोई दिवाल खड़ी हो गई है, कोई पोइन्ट खड़ा हो गया है तो उसको निकालने की कोशिश करें। उस विषमता को निकालने से आपका जीवन कितना आनन्द और उल्लासमय हो सकेगा यह तो अनुभव की बात होगी।

जीवन में भी एक धरातल बनाइए

चातुर्मास में इस जीवन के समता धरातल के विषय में चिन्तन करना है कि आपने यह लाल भवन बनाया। यह पहले कैसा था और अब किस रूप में हो गया। एक सरीखा हो गया। अब आप सबके सब एक धरातल पर बैठे हुए हैं। नीचे एक भी कंकर चुभ नहीं रहा है। कंकर चुभ रहा है क्या ? कोई आपको कष्ट नहीं हो रहा है। उसी तरह से आप समाज के अन्दर भी एक धरातल बनाइये। आप अपनी स्थिति में रहते हुए एक ऐसा रंगमंच तैयार करें जीवन की खेती ऐसी तैयार करें जिसके अन्दर समता सिद्धान्त का एक ऐसा प्लेटफार्म बने। आप स्वयं ही उसमें न बैठें, उसमें अग्रवाल, ओसवाल और माहेश्वरी ही न बैठें, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ही न बैठें, लेकिन उसके ऊपर पूरी मानव समाज का अधिकार हो, और सभी मानव उसके ऊपर शांति की सांस ले सकें, पूरे मानव वर्ग को शान्ति का अनुभव हो सके, पूरी मानवता जहाँ से यह सीख सके कि वर्तमान जीवन कैसे जीयें और भावी जीवन का उज्ज्वल लक्ष्य कैसे रख सकें ? इन सब बातों का दृष्टिकोण सामने रखकर इस जीवन के क्षेत्र को समता सिद्धान्त का धरातल

तैयार कर समरूप बना देने का प्रयास किया गया तो जयपुर चातुर्मास का यह प्रकाश दूर-दूर तक प्रकाश फेंकेगा। हवाई जहाज आकाश में उड़ता है लेकिन कहाँ पर बड़ा स्टेशन है, इसका यात्री को पता कैसे लगता है! यह तो आप जानते हैं। कुछ प्रकाश की लाइट पड़ती है तो आप देख लेते हैं कि बड़ा स्टेशन आ गया। यह राजधानी का बड़ा स्टेशन है। इस स्टेशन की तरफ राजस्थान का ही ध्यान नहीं है, मैं सोचता हूं कि दूर-दूर के क्षेत्रों का ध्यान लगा हुआ है, और इसकी चमचमाती हुई रोशनी देखने के लिए कई तैयार हो रहे हैं। अगर राजधानी के अन्दर कोई ऐसा आदर्श और पवित्र कार्य जैन समाज को आह्लादित करने वाला हो और पवित्र समता सिद्धान्त का धरातल मानव मात्र के विकास का कारण बनता हो तो उस प्रकाश को लेने के लिए सब तैयार बैठे हुए हैं। यहाँ की सुगन्ध दूर दूर तक फैल सके यह उत्तरदायित्व जयपुर की जनता पर है। अतः जयपुर की जनता में जो पूर्वग्रहीत आग्रह की कोई भावना हो जिससे जाति, व्यक्ति, पार्टी के घेरे में पड़े हुए हों, जिससे भाई-भाई के साथ में विकट परिस्थिति पैदा हो गई हो तो उन विषमताओं को दूर कर सारी स्थितियों को समाहित करके एक धरातल की स्थिति के साथ आदर्श उपस्थित करना है। इस चातुर्मास में जयपुर की जनता को कृषक के रूप में अपने दिल और दिमाग को साफ करते हुए एक ऐसी खेती पैदा करनी है, जिससे अनेकों को तृप्ति मिल सके, उस तृप्ति के लिए आप सबको तैयार होना है, और उसकी तैयारी करने के लिए अभी से प्रवृत्ति प्रारम्भ कर देना है।

आप अपने जीवन को खेती तैयार करने के लिए, कंकर-पत्थर एक तरफ करने के लिए, कचरा साफ करने के लिए एकत्व भावना से आगे बढ़ेंगे। एकत्व भावना जब मन और जीवन में जग जायेगी तब 'तुझ में मुझ में भेद न पाऊँ, इस स्थिति पर पहुंच जाएंगे।

जाना कहां है ? हमें छोटी-छोटी बातों में न उलझ कर भगवान के तुल्थ बनने की कोशिश करना है। उदाहरण के तौर पर किसी को कलकत्ते जाना है, वह जौंहरीबाजार से निकलता है, जौहरी बाजार के अन्दर कोई व्यक्ति आकर उससे लड़ने की कोशिश करे कि कहाँ जाते ही मैं इतना मजमा खड़ा कर दूँगा, मैं यह कर दूँगा वह कर दूँगा उस समय वह कलकत्ते जाने वाला सोचेगा कि इस भाई का उत्तर दूँगा इससे कुछ प्रत्यालाप करूँगा तो रेल का टाइम चूक जाऊँगा और समय पर कलकत्ते नहीं पहुंच पाऊंगा, तो उस वक्त वह जौहरी बाजार के अन्दर उस व्यक्ति से लड़ने के लिए खड़ा रहेगा या मजमे की बात करेगा या तनातनी की बात करेगा या चुपचाप निकलकर चला जायगा ? गाड़ी के समय को समझने वाला, कलकत्ते टाइम से पहुंचने की इच्छा रखने वाला आदमी, उस व्यक्ति से लड़ने की कोशिश नहीं करेगा। उसी तरह से हमारा परम लक्ष्य वहां जाना है और काफी दूरी तय करके जाना है तो, जो जीवन के क्षेत्र में कोई जौहरी बाजार वाली बाधाएँ खड़ी करदें और गलत वायुमण्डल तैयार करने की कोशिश करे तो, मैं सोचता हूँ कि उनकी तरफ ख्याल नहीं करते हुए अपने जीवन की मन्जिल पर मुस्तैदी से आगे बढ़ते हुए अपूर्व आदर्श उपस्थित करने का प्रयत्न होना चाहिए।

आप इस बात को ध्यान में रखेंगे कि समता-सिद्धान्त दर्शन, समता जीवन दर्शन, समता आत्म दर्शन और समता परमात्म दर्शन इन चार बातों का उद्देश्य जीवन की कला है, जीवन का परम अनुसन्धान है। आप यदि इन बातों का गहराई से चिंतन मनन करेंगे, समता को जीवन में उतारने का प्रयत्न करेंगे—तो जीवन के दुःख वैषम्य और विपदाएँ अवश्य ही दूर होंगे और आत्मा परमात्मा की स्थिति तक पहुँच सकेगा।

लाल भवन, २० जुलाई १९७२

●●

ज्ञान मनुष्य का
तीसरा नेत्र है।
इस ज्ञान नेत्र को
खोलने वाले सद्‌गुरुदेव

आचार्य श्री नानालालजी म. सा.

के
चरणों में कोटिशः अभिवंदन।

सुन्दरलाल तातेड़
दसानियों का चौक,
बीकानेर
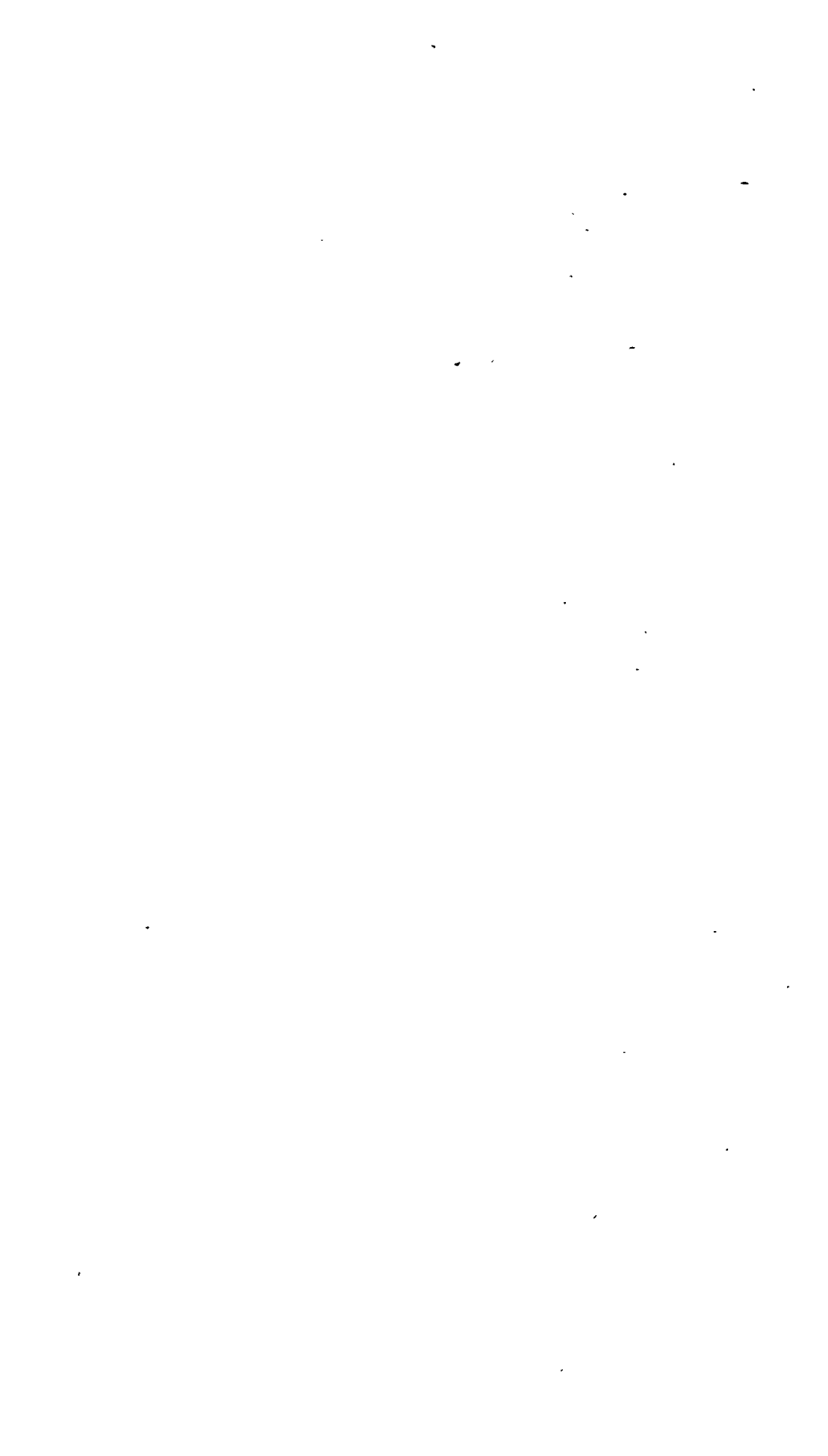
असंखयं जीविय मा पमायए

—उत्तराध्ययन ४।१

जीवन बड़ा असंस्कृत है, टूटने के बाद पुनः संध नहीं सकता, अतः प्रमाद मत करो !

---

२ | संस्कारित जीवन

सुमति जिनेसर साहिवा जी
मेघरथ नृपनो नन्द !
सुमंगला माता तणो जी !
तनय सदा सुखकन्द !
प्रभु त्रिभुवन तिलोजी !
सुमति सुमति दातार
महा महिमा निलोजी !
प्रणमूं वार हजार
प्रभु त्रिभुवन तिलोजी !

प्रभु सुमतिनाथ भगवान् के चरणों में प्रार्थना की कड़ियों का उच्चारण किया है। प्रभु के अनेक नाम हैं। अनेक नामों से प्रभु

को पुकारा जा सकता है। उनमें से एक सुमतिनाथ भी है। सुमति का अर्थ है—सद्बुद्धि !

जिनकी सन्मति होती है, जिनका ज्ञान सम्यग् होता है, पवित्र अध्यवसाय जिनकी आत्मा के अन्दर चलता है—वे सुमति कहे जा सकते हैं। लेकिन ऐसी सुमति रखने वाले जो समस्त प्राणियों के स्वामी के रूप में प्रसिद्ध हैं, वे सुमतिनाथ कहलाते हैं। यहां सुमति नाथ भगवान् के चरणों में कवि ने प्रार्थना के रूप में संकेत किया है और यह वताया है कि सुमतिनाथ सुमति के दाता हैं।

सुमति के दाता दयालु कहलाते हैं। वे सुमति का दान भी करते हैं। आज सुमति के लेने वाले व्यक्तियों की कमी नहीं है ? आज देखा जाय तो संसार के अन्दर जितने प्राणी हैं उन सब प्राणियों को सुमति की आवश्यकता है। प्राणी जब सुमति को छोड़ कर कुमति के अधीन होता है तब वह अपने आपको खतरे में डालता है। उसका परिवार में सम्मान नहीं रहता है। वह समाज में भी विषमता पैदा करता है और राष्ट्र के अन्दर भी वह बहुत भयावह दृश्य उपस्थित कर देता है। यह कुमति का कार्य है। इस कुमति के कारण से ही संसार तवाह हो रहा है। इसलिए ऐसे प्रसंग में सुमतिनाथ भगवान् की वह दातार वृत्ति, वह उदार वृत्ति आवश्यक है। लेकिन सुमतिनाथ भगवान सुमति देंगे किसको ? सुमति लेने वाले व्यक्तियों को, जिज्ञासु व्यक्तियों को; किन्तु कब ? जब वे उस रूप में उपस्थित हों। दातार अपनी उदारता से कुछ देना चाहता है लेकिन लेने वाला भी तो चाहिये। लेने वाला इन्सान यदि तैयार हो जाता है, तो दातार अपनी उदारता के साथ दे भी सकता है। प्रश्न होगा, महाराज ! लेने वालों की कमी नहीं है। प्रार्थना हम कर ही रहे हैं। आपने जिन शब्दों का उच्चारण किया, जिन प्रार्थना की कड़ियों के साथ आपका सम्बन्ध जुड़ा है, उनके साथ हमारा भी सम्बन्ध रहा हुआ है। हम इसी के लिए यहां आये हैं कि हम यहां भगवान की वाणी का श्रवण

करके अपने अपने जीवन में सुमति का साम्राज्य स्थापित करें। इस सामूहिक प्रार्थना में आपका सामूहिक स्वर निकला हो या नहीं, मैंने इसका उच्चारण किया है वह आपकी सामूहिक भावना की दृष्टि से ही किया है। आप कहेंगे, जब हमें सुमति की अभिलाषा है, अपेक्षा है, तब ही यहां आकर खड़े हुए हैं, बैठे हैं। तो वह सुमति सुमतिनाथ से प्राप्त क्यों नहीं हो जाती है? किन्तु इस पर जरा चिन्तन करना है कि प्रार्थना का उच्चारण कर लेने मात्र से, या प्रभु से याचना करने भर से सुमति मिलने वाली नहीं हैं।

सुमति-अन्तर में जागृत की जाती है

एक दृष्टि से देखा जाय तो सुमति लेने देने जैसी चीज नहीं है। यह तो पैदा की जाती है। पैदा से तात्पर्य प्रादुर्भाव से है, प्रकट करने से है, जागृत करने से है न कि नवीन उत्पत्ति करने से। जिसकी उत्पत्ति होती है उसका नाश भी होता है। लेकिन सुमति आत्मिक शक्ति का परिणाम है। आत्मा है. वह स्थायी है तो उसके मौलिक गुण भी स्थायी होंगे। इसलिए आत्मा के गुणों की उत्पत्ति नवीन प्रकार से नहीं होती है। उसका आवरण मात्र हटता है, शक्ति पैदा होती है, आविर्भाव और तिरोभाव भी हुआ करता है, तो उस शक्ति को प्रकट करने के लिए प्रयास करना है। प्रार्थना में जो एक दूसरे को सुमति देने का प्रसंग आया है, वह औपचारिक है। जिन्हें सुमति प्राप्त है, वे लुटाते चले जायँ लेकिन लेने वाले की स्थिति नहीं बनेगी तो? जैसे आप कोई वस्तु उठा कर किसी के हाथ में देते हैं, उस तरह देने का प्रश्न तो नहीं है। हम भगवान के आदर्श को देखकर अपने अन्दर की स्थायी शक्ति को पहिचानें, हमारे जीवन में सुमति का भण्डार भरा हुआ है उसका प्रादुर्भाव करने के लिए प्रकट करने के लिए हम प्रयास में लग जाते हैं तो हम सुमति का भण्डार भरा पाते हैं, इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए यहां वीतराग

वाणी के प्रसंग से आपके सामनेविचार रखे हैं, उनके रखने का प्रसंग भी है। जिस समय जम्बूस्वामी सुधर्मा स्वामी के पास पहुँचे उस समय जम्बू स्वामी के मन में प्रबल जिज्ञासा हुई—मैं भी सुमति प्राप्त करूं। इस संसार में रहते हुए कुमति के चक्र में अनादिकाल से महा दुःख और झंझावतों में जीवन विताया, लेकिन अब शान्ति की स्थिति में पहुंचा हूं। सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी को उपदेश दिया और जिस तत्व का सुमति के साथ सम्बन्ध जुड़ता है उसका संकेत देते हुए कहा—

उस समय भगवान महावीर राजगिरि पधारे, राजगिरि नगरी में ऋद्धि सिद्धि की प्रचुरता थी।" उस नगरी में मानव की सुमति का भली-भांति विकास करने के लिए उन्होंने सुधर्मा स्वामी को जो वातें वतलाई उन ही वातों को सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी के सम्मुख प्रकट कर रहे हैं। वे बातें हमारे सामने भी शास्त्र के माध्यम से आ रही है। हम सुमति के द्वारा शांति का अनुभव करें और परलोक उज्ज्वल वना सकें—इस बात का प्रसंग लम्बे चौड़े विस्तार के साथ या सूक्ष्मता से जो भी मिले वह श्रवण करें। वह श्रवण कहां से करेंगे ? किस रूप में करेंगे ? सुमति के साथ श्रवण करें तो वह श्रवण सुखकारी होगा। वह जीवन में विवेक शक्ति पैदा करेगा। यदि सुमति को हटाया और कुमति के साथ श्रवण किया तो कुमति में जो चीज आयेगी वह कुमति रूप में हो परिणत होती हुई चली जायेगी। आपको मालूम है, घासलेट का तेल जिस वर्तन में हो, उस वर्तन में यदि वढ़िया से वढ़िया घी भी डाल दिया जाय तो उस घी की क्या दशा होगी ? घी को चखें तो कैसा लगेगा ? सुगन्ध कैसी हो जायेगी ? सारी की सारी घासलेट में परिणत हो जायेगी।

संस्कारित जीवन

जिस मानव के मस्तिष्क में सुमति का सुन्दर सरोवर लहलहा

रहा है, उसमें वीतराग धर्म की वाणी का श्रवण हुआ तो वह सारा का सारा अमृतमय हो जायेगा। उसे अमृतमय बनाने के लिए हम अपने जीवन को टटोलें। भगवान ने निर्देश दिया है, कि हे मानव! अपने जीवन को देख यह जीवन संस्कार हीन वन रहा है—**असंखयं जीविय मा पमायए**" यह भगवान महावीर की उद्घोषणा प्रत्येक मानव के लिए है, और उसमें कहा गया है कि हे मानव! तुम्हारे जीवन के अन्दर सुमति के संस्कार नहीं हैं, तुम्हारा जीवन असंस्कारित है, असंस्कारित जीवन में किसी तत्व को डाल दोगे तो उसका संस्कार नहीं हो पायेगा, उसका दुरुपयोग होगा। अपरिपक्व घड़े में यदि अमृत डाल दोगे तो घड़ा भी चला जायेगा और अमृत भी। आपको अगर संस्कारित जीवन बनाना है तो सुमति को जागृत कीजिये, सुमति के बिना संस्कारित जीवन नहीं वन सकता है। कुमति का जीवन असंस्कारित जीवन है, अज्ञान का जीवन है। आप देख रहे हैं, एक बच्चे के सामने बहुमूल्य रत्न रख दीजिये। आप अपनी अंगूठी का तीन लाख या पांच लाख का हीरा रख दीजिये। वह बच्चा उस हीरे की कीमत क्या करेगा? वह बच्चा उस हीरे को समझेगा? वह बच्चा उस हीरे को यत्न से रखने का प्रयत्न करेगा? नहीं! वह तो उसे उठाकर फेंक देगा। बच्चे के जीवन में हीरे की पहचान का संस्कार नहीं है इसलिए वह बच्चा उस ज्ञान के अभाव में, प्रारंभिक स्थिति में असंस्कारित होने के कारण हीरे के विषय में कुछ नहीं जान पा रहा है।

आप देखते हैं मनुष्यों की आकृति वाले प्राणी, हूबहू मनुष्यों की चेष्टाओं का अनुसरण करने वाले प्राणी। उनके अन्दर मनुष्यों सरीखे संस्कार पूर्ण रूप से नहीं पाये जाते। आपने जयपुर में भी कभी-कभी उनका अवलोकन किया होगा—जो बन्दर जाति कहलाती है। जिनके इधर-उधर आपको दर्शन होते हैं। माधोपुर के अन्दर तो इनका वहुत वोलवाला है। वहां स्थानक के अन्दर भी वहुत ये उपद्रव

करते हैं। कभी-कभी मुखवस्त्रिका तक उठा ले जाते हैं, कभी-कभी वस्त्र उठाकर ले जाते हैं। उन वस्त्रों को वे समझते नहीं हैं कि वे कैसे वस्त्र हैं और उन वस्त्रों की चिन्दी-चिन्दी करके, उनको बता-वताकर फाड़ डालते हैं। सिर्फ किसलिए? रोटी के टुकड़े के लिए और आप उनको रोटी डाल देते हैं तो आपकी जिन्स वे छोड़ देंगे। और नही देंगे तो वे उन वस्त्रों को बता-बताकर फाड़ेंगे। आप सोचिये की आप जैसे कपड़ों की कद्र कर रहे हैं, आप जिन वस्तुओं के पीछे बहुत मुग्ध हो रहे हैं उन्ही वस्तुओं को ले जाकर वे उनका दुरुपयोग करते हैं। आप कहेंगे महाराज बन्दर जाति है। उसकी चेष्टा तो करीब-करीव मनुष्यों जैसी है लेकिन फिर भी मनुष्यों जैसे संस्कार नहीं हैं। उनका असंस्कारित जीवन है। आप वन्दरों के जीवन को असंस्कारित जीवन कहेंगे और संस्कारित जीवन को आप मनुष्य जीवन कहेंगे। बन्धुओ! सोचने की वात है। आज संस्कारित और असंस्कारित जीवन का वड़ा प्रश्न है। जो मनुष्य जीवन जी रहा है लेकिन जीवन कैसा जी रहा है? "**किं जीवनम्**" जीवन कैसा है? और क्या है, आज यह प्रश्नवाचक चिह्न संसार के सामने मुंह बाये खड़ा है। जीवन का जव यह प्रश्न खड़ा होता है और सुलझता नहीं तव तक मनुष्य का जीवन जीवन नहीं कहला सकता। जीवन एक दृष्टि से देखा जाये तो मशीनरी की तरह चलता जा रहा है। मशीन को तो फिर भी कुछ समय के लिए छुट्टी मिल जाती है, मशीन हफ्ते में एक रोज तो विश्राम लेती होगी लेकिन मानव जीवन की मशीनरी तो हफ्ते में एक दिन भी विश्राम लेती है या नहीं? सरकार के डंडे से चाहे व्यापार का लेनदेन वन्द कर दिया जाता होगा लेकिन उस दिन वन्द करने के वावजूद भी अनुमानतः दूसरे दिन अधिक भार आता होगा। मैं अनुमानतः शब्द इसलिए कह रहा हूं कि कुछ लोगों के शब्द मेरे कान में आते हैं। मैं कहता हूं कि रविवार को तो छुट्टी रहती है तो वे कहते हैं महाराज, रविवार

को तो डबल काम रहता है। उस मशीनरी की तरह जीवन को विताने वाले व्यक्तियों के जीवन को मैं जीवन कहूं ? आप उसको जीवन कहें ? नहीं। किसको जीवन कहना ? यह प्रश्न आपके सामने खड़ा है। आपके सामने ही नहीं वल्कि मानवमात्र के सामने यह प्रश्नवाचक चिह्न है। चिन्तन और मनन कीजिए। दो हाथ, दो पैर, मुँह और आँख यह आ जाने मात्र से क्या जीवन वन गया ? क्या अच्छा खाना खाने से जीवन वन गया ? या अच्छे वस्त्र पहनने से जीवन वन गया ? अच्छे और बढ़िया मकानों में गद्दी तकिये लगाकर और पंखे की ठंडी हवा खाने से जीवन वन गया ? क्या है जीवन ? कभी एकान्त के क्षणों में आप इस प्रश्न पर चिन्तन कीजिए।

क्या मानव मिट्टी के ढेले के रूप में हैं ? क्या आज का मानव केवल एक तरह का पिण्ड या पुतला वन गया है ? उसको जीवन की कला याद नहीं, जीवन का स्वरूप ख्याल में नहीं जिससे वह अपने जीवन को लेकर चले और कहे कि मैं जीवन जी रहा हूं। अरे भाई कौन-सा जीवन जी रहे हो ? संस्कारित जीवन जी रहे हो या असंस्कारित जीवन जी रहे हो। संस्कारिक जीवन जीने वाला व्यक्ति कुछ और ही होता है और असंस्कारित जीवन जीने वाला व्यक्ति कुछ और ही होता है। रात और दिन का अन्तर है, प्रकाश और अंधकार का फर्क है। असंस्कारित जीवन में पग-पग पर ठोकरें लगती हैं। असंस्कारित जीवन न स्वयं को समझता है और न पर को समझता है, न स्वयं के हित को देखता है और न पर के हित को देखता है। उसके जीवन की नौका विना पतवार के इधर-उधर भटकती रहती है। उसका जीवन कहीं ठिकाने नहीं रहता। ऐसा प्रमादी जीवन और इस प्रकार का असंस्कारित जीवन विश्व के अन्दर जहां उपलब्ध होता है तो वहां अशांति की ज्वाला नहीं भड़केगी तो और क्या होगा ? जहाँ जीवन का विवेक और जीवन का पता नहीं, जहां जीवन के संस्कारों को परिमार्जन करने की

स्थिति नहीं, वहाँ जीवन की यही स्थिति है। आज आप प्रत्येक जीवन तत्व का चिन्तन कीजिए, जीवन के विषय में मैं कह रहा हूं। इसके साथ ही साथ आप संसार में जिन पदार्थों का अवलोकन करते हैं उनमें भी संस्कारित और असंस्कारित दोनों तरह के पदार्थ पाये जाते हैं। जो संस्कारित पदार्थ हैं उनका जरूर महत्व है, पर जो असंस्कारित पदार्थ हैं उनका कोई महत्व नहीं।

आप कभी-कभी अपनी दृष्टि में विवाह शादियों के प्रसंग पर इन बहिनों के सिर पर मिट्टी के कलशों को देखते होंगे। सम्भव है बड़े शहरों के अन्दर नहीं हों लेकिन विवाह शादियों से प्रसंगों पर घड़े पर घड़ा रख कर उसके गले में जेवर पहनाया जाता है। यहाँ शायद यह प्रथा नहीं होगी। यह प्रथा कम हो रही है, लेकिन गाँवों के अन्दर देखने को मिलता है कि वहिनें विवाहों के प्रसंग पर सुन्दर वस्त्र पहन कर, जेवर पहन कर गीत गाती हुई कुम्भकार के यहाँ पहुंचती हैं और कलशों को लाती हैं, बड़े और छोटे एक के ऊपर एक कलश चढ़ाकर अपने जेवर उन घड़ों के गले में डालती हैं। मेवाड़ के गाँवों में आपको यह देखने को मिलेगा। वह फिर वड़े यत्न से चलती हैं, शायद उपवास करके उतने जतन से नहीं चलती होंगी। जितनी वहाँ जतन से चलती हैं। उनका ख्याल रहता है कि यह घड़ा कहीं गिर नहीं जाये। सावधानी के साथ मन को एकाग्र करके चलती हैं और जव विवाह के मकान के दरवाजे पर जाती हैं तो यहाँ दूसरी वहनें फिर उनका सत्कार करके आरती करके दरवाजे से ले जाकर अन्दर रखती हैं। वन्धुओ, इस प्रक्रिया को आप देख चुके होंगे। नहीं देखा हो तो आप मस्तिष्क में ले लीजिए आप सोचिये यह किसकी कद्र हो रही है। वहिनों के सिरों पर मिट्टी क्यों चढ़े ? इन वहिनों को यदि कहा जाये इन विवाह शादियों के प्रसंग पर कि आप जंगल के अन्दर से एक मिट्टी का ढेला उठाकर अपने सिर पर रखकर चलिये। चलेंगी वे ?

नहीं। मिट्टी का ढेला उठाने के लिए कहेंगे तो बड़ी नाराज हो जायेंगी कि क्या हमको मजदूरनी समझा है जो हमसे मिट्टी का का ढेला उठवा रहे हैं। लेकिन आप सोचिये उस मिट्टी के ढेले को सिर पर उठाने से अपना अपमान समझती हैं और उसी मिट्टी को वे घड़े के रूप में सिर पर उठाकर लेकर आ रहीं हैं। क्या अन्तर पड़ा ? मिट्टी वही, लेकिन उस मिट्टी में और उस मिट्टी में रात और दिन का अन्तर पड़ गया। वह मिट्टी असंस्कारित मिट्टी थी जो ढेले के रूप में पड़ी थी, जिसके ऊपर कोई भी व्यक्ति टट्टी पेशाव कर सकता है, उसको कोई भी ठोकर मार सकता है, कुदाली से खोद सकता है लेकिन उसी मिट्टी को कुम्भकार ने उठाकर जव घड़ा बनाया, उस मिट्टी का उसने संस्कार करना चालू किया, यह संस्कार बड़ी मुश्किल से हुआ उसने उसे खूब मथा, राल मिलाई लेकिन मिट्टी ने सोचा कि मेरा तो संस्कार करना है, कुम्भकार ने उस मिट्टी के ढेले को संस्कार करने के लिए उसे चाक पर चढ़ाया, उसको चक्कर भी खिलाया, लेकिन मिट्टी ने तो सोचा कि मुझे तो संस्कारित होना है। तो क्या वह मिट्टी नाराज हुई ? नहीं। इतने से ही कुम्भकार नहीं रुका। उसे आकार देकर ऊपर से उसे ठोका भी। आपने कुम्हार को देखा होगा। जोर जोर से करता है मड़मड़, लेकिन फिर भी उसके अन्दर में वह हाथ रखता है और उस घड़े को पीटकर ठीक कर देता है—फिर भी मिट्टी सोचती है कि तुम खूब पीटो, मुझे तो संस्कारित होना है, पीटने के वाद भी कुम्हार ने चैन नहीं लिया और उसको कहाँ रखा ? आग के अन्दर। उसके अणु-अणु में गर्मी पहुंचा दी लेकिन उस मिट्टी ने सोचा कि खूब गर्मी पहुंचाओ, लेकिन मैं घड़े के रूप को नहीं छोड़ूँगी क्योंकि मुझे तो संस्कारित वनना है। वह मिट्टी का घड़ा अपनी परेशानियों से जव उत्तीर्ण हो गया तो वह मिट्टी की दृष्टि से संस्कारित वन गया, और वहिनों के सिर पर चढ़ गया।

संस्कारित बनने के लिए सहिष्णु बनो !

आज इन्सान अपने मन में क्या अभिलाषा रखता है ? यह कि मैं दुनियाँ का मान-सम्मान ग्रहण करूँ, दुनियाँ के सिर पर चढ़ कर दुनियां का वंदनीय और पूजनीय बनूं । अरे तू आदर और सत्कार के पीछे दीवाना बन रहा है, मान-सम्मान लेने के पीछे भाग रहा है । तू अपने जीवन को देख, तुम्हारा जीवन क्या है, तू मिट्टी के ढेले की तरह है या मिट्टी के घड़े की तरह है ? मिट्टी के ढेले ने तो मान सम्मान की परवाह नहीं की । मिट्टी के मन में तो यह ध्यान रहा कि मुझे संस्कारित बनना है । संस्कारित बनने में वह अनेक आपत्तियों को सहकर चली तो मिट्टी का संस्कार हो गया । यदि इन्सान को अपना जीवन जीना है, जीवन के प्रश्न को हल करना है कि मेरा जीवन क्या है ? तो सबसे पहले उसे मिट्टी से शिक्षा लेनी चाहिए कि मिट्टी के समान मैं निश्चिल, दृढ़ धैर्यवान बन जाऊँ । मिट्टी पर कुम्हार ने थपेड़े लगाये, मुझ पर भी थपेड़े लगाने वाला कोई आ जाय तो उस समय मैं शान्त एवं स्थिर रहता हूं या नहीं ? आत्मस्वरूप में लीन होता हूं या आत्मा के रूप को विस्मृत कर जाता हूं । मैं शान्ति को छोड़ता हूं या रखता हूं ? यह प्रत्येक व्यक्ति को चिन्तन करना है । यह चिन्तन नहीं होगा तब तक जीवन संस्कारिक नहीं हो पायेगा । अरे थपेड़े खाना तो दूर रहा, यदि कोई व्यक्ति दूर खड़े खड़े अंगुली उठाकर कह दे, मेरे सामने क्या बोल रहा है, तुम्हारी मूंछ का बाल उखाड़ कर फेंक दूंगा । इतने शब्द ही उस व्यक्ति को उत्तेजित किये बिना नहीं रहते । और वह व्यक्ति इतना उत्तेजित हो जाता है, कथन मात्र से ही अपने आपे को छोड़ देता है और मानवता को तिलांजलि देकर मुकद्दमेबाजी के लिए तैयार हो जाता है । हालांकि न उसने मूंछ के बाल पर हाथ लगाया, न उखाड़ी, फिर भी उसे जोश आ गया ।

यह जोश किस बात का द्योतन कर रहा है ? उसी बात का द्योतन कर रहा है। इन्सान मिट्टी का ढेला नहीं हो सकता है, मिट्टी से बना है, मिट्टी का अंश इन्सान है लेकिन मिट्टी की शिक्षा इन्सान में नहीं है। मिट्टी कितने गुण रखती है । असंस्कारित अवस्था में भी मिट्टी समभाव स्थिति में रहती है। इन्सान कहता है, मैं बहुत बड़ा विद्वान हूं, मैं बहुत बड़ा अधिकारी हूं, मैं बहुत बड़ा प्रोफेसर हूं, मैं बहुत बड़ा व्यापारी हूं, मैं बहुत बड़ा वकील हूं, मैं बहुत बड़ा बेरिस्टर हूं, मैं सब कुछ हूं। अरे ! सब कुछ है, लेकिन इसके पीछे अपने जीवन का भी कुछ विचार है ? जीवन की स्थिति को भी कुछ समझता है या नहीं ? इस प्रकार के शब्दों से अपने आपे से बाहर हो जाना अपने स्वभाव को छोड़ देना, अपनी शक्ति को छोड़कर, सुमति को छोड़कर कुमति की ओर चले जाना असंस्कारित स्थिति के कारण से होता है।

संस्कारिता का महत्व

मैं मिट्टी की बात ही क्यों कहूं, पृथ्वी की प्रत्येक सामग्री, पृथ्वी का प्रत्येक पदार्थ संस्कारिता का प्रदर्शन कर सकता है। लाल भवन में बैठे हुए हैं—यह लाल भवन किन तत्वों से बना है ? मिट्टी से बना है। पत्थरों से बना है। मिट्टी और पत्थर कहां से आता है ? मिट्टी खदान में थी। पत्थर खदान में था। उस वक्त तक कोई उनकी कदर नहीं थी। लेकिन वहां से बाहर निकलने पर बजरी बन गई, पत्थर पर टांकी लगाई गई। कारीगर ने पत्थर को खूब छीला और छील-छील कर दीवार में फिट कर दिया। इससे पत्थर का संस्कार हो गया। दीवार का संस्कार हो गया। ओर लालभवन की स्थिति में आपके सामने आ गया। लाल भवन ममत्व का पुतला बन गया। आप कहते हैं—"हमारा लाल भवन।" चाहे व्यक्तिगत रूप से न हो, पर सामूहिक रूप से है। इतना महत्व इसका क्यों बन

परमाणु वही थे। चीज वही थी। लेकिन उनका संस्कार हो गया। यहाँ छाया में बैठे हुए हैं टीन की, यह टीन कहां से आई ? लोहे से। यह टीन संस्कारित बनी लोहे के ढेले से। लोहे के पत्थर का भिलाई के पास वहुत वड़ा पहाड़ खड़ा हुआ है जिस पर लोग टट्टी-पेशाब करते हैं। वह लोहे का पत्थर निकलकर. भिलाई की भट्टियों में पहुंचा। भट्टियों में पहुंच कर उसने संस्कार ग्रहण किया, टीन क रूप में परिवर्तित हुआ और मनुष्य को छाया देने वाला वन गया। वाह रे लोहे। तू संस्कारित होकर दुनियां को छाया देवे, शान्ति देवे लेकिन मानव नाम धारण करने वाला मनुष्य—वह अपने आपको मानव कहलाते हुए दुनियां को शान्ति देता है या अशान्ति देता है, दुनियां के लिए फूल बनता है या दुनियां के लिए शूल बनता है—क्या मानव ने अपने जीवन में यह सोचा है ? मैं आपको इस विषय में क्या वताऊँ,प्रभु महावीर ने कहा है—संस्कारित जीवन जिस मानव का, बहिन या पुरुष का वन जाता है, उसका जीवन वदल जाता है, जिसका जीवन संस्कारित नहीं होता है वह चाहे जितनी अवस्था या स्थिति प्राप्त कर ले उसके जीवन में वह दूसरों के साथ भलाई करने वाला व्यक्ति नहीं वनता। एक अस्सी वर्ष की बुढ़िया, पैसे को दृष्टि से करोड़पति की माता है, लेकिन जीवन की दृष्टि से वह मिट्टी के ढेले से भी गई बीती है। रात और दिन संघर्ष, हाय-हाय। परिवार के सदस्यों में महाभारत का दृश्य उपस्थित करने वाली। सेठ ने चिंतन किया कि मुझे जीवन के संस्कार मिले हैं, मैं यद्यपि इसी माता की कुक्षी से जन्म लेकर आया हूं, फिर भी मैं कुछ जीवन के स्वरूप को समझने लगा हूं। लेकिन मेरी माता अभी तक जीवन को नहीं समझ पा रही है कि जीवन का क्या मूल्य है। रात और दिन परिवार के सदस्यों को तंग कर रही है। घर के अन्दर अशान्ति की ज्वाला सुलग रही है। इस माता का जीवन संस्कारित कैसे वने। पुत्र ने विनीत भाव से माता के चरणों में नमन करते हुए निवेदन किया, मातेश्वरी ! तू मेरी जननी है। दुनियां में कहावत है, जननी

जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से बढ़ कर है। मैं तुम्हारी उसी तरह कद्र करता हूं। लेकिन तुम्हारा जीवन असंस्कारित जीवन चल रहा है। अस्सी वर्ष की हो गई हो लेकिन जीवन में परिवर्तन नहीं है। वही पशुपन है, अनाड़ीपन है। यह कौन सा तुम्हारा जीवन है। मातेश्वरी! अपने जीवन को संस्कारित करो। अस्सी वर्ष में जो कार्य किया, उससे निवृत्ति लो और जीवन को माँजने के लिए, सन्मार्ग की ओर जाने के लिए जीवन को सुव्यवस्थित रूप में ढालो। पुत्र का निवेदन सुनने के पश्चात् माता कहने लगी, छोकरा! तू नहीं समझता। मैंने गरीवी के दिन भी देखे हैं। आज तू करोड़पति बन गया तो क्या हो गया! यह पुत्र वधू इस प्रकार की फिजूलखर्ची करती है; यह छोकरे इस प्रकार पैसे वर्वाद करते हैं—यह मुझे बर्दाश्त नहीं। इसलिए मैं लड़े विना नहीं रह सकती। पुत्र ने कहा, जैसा करोगी वैसा भरोगी। पुत्र की वात मातेश्वरी ने स्वीकार नहीं की। तब सेठ ने सोचा, इनके जीवन से अब यह संस्कार जाने वाले नहीं हैं लेकिन जिनके कोमल जीवन हैं, जो अभी बच्चे हैं, जो तरुण हैं, जो अधेड़ हैं उनमें फिर भी अच्छे संस्कार उत्पन्न किये जा सकते हैं। इसलिए परिवार के सव सदस्यों को एकत्रित करके सेठ ने नम्र भाव के साथ निवेदन किया—आप मेरे परिवार के सदस्य हैं। मेरी आत्मा के तुल्य हैं। मैं आपसे कहना चाहता हूँ, आप अपने जीवन को समझें। यह जीवन असंस्कारित जीवन रहता है तो मुझे दर्द होता है। आप अपने जीवन को संस्कारित वनाने के लिए कुछ प्रण करें। विनीत परिवार के सदस्यों ने सेठ की वात को ध्यानपूर्वक श्रवण करने के पश्चात् कहा, आप क्या आदेश देना चाहते हैं? आपके आदेश का पालन करना पहला कर्तव्य होगा। सेठ ने कहा, यह मेरी माता अस्सी वर्ष बुढ़िया है। अपने सव परिवार की मुखिया है। लेकिन इसके

में जीवन के अच्छे संस्कार नहीं हैं, यह हर किसी के साथ लड़ती झगड़ती है। आप लोग इसके ऊपर रोष न करें, इसकी बात पर ध्यान नहीं दें। बूढ़े और बच्चे को एक समझ कर माफ करें जिससे घर में कलह का वातावरण पैदा नहीं हो। सब परिवार के सदस्यों ने अनुशासन के नाते यह स्वीकार किया और घर में शान्ति का वातावरण बन गया। लेकिन बुढ़िया का असंस्कारित जोवन समाप्त नहीं हुआ। उसने सोचा, परिवार के सदस्य मेरे से लड़ाई नहीं करते। मुझे लड़ाई किये बिना चैन नहीं मिलता। वह घर से बाहर निकली, पड़ौसी के घर पहुंची। वहां अपने असंस्कारित जीवन का प्रदर्शन किया। उसकी बातों को सुनकर पड़ौसी के परिवार के सदस्य लड़ने लगे। एक घर में आग लगाई, फिर दूसरे घर में पहुंची। दिन में कई घरों में पहुँच कर सब के यहाँ लड़ाई झगड़े करा दिये। और शाम को अपने घर में वापिस पहुँच गई। यह उसका प्रति दिन का कार्यक्रम बन गया। असंस्कारित जीवन का कितना खराब प्रदर्शन है। नागरिक परेशान हो गये। यह क्या तमाशा है। यह माता करोड़पति की कहलाती है। उनके घर की माता है। हमारे घर में आग लगाने वाली कौन होती है? आग लगाने वाला व्यक्ति बहुत बड़ा पापी होता है। बाहर में आग नहीं, जीवन में आग जलाने वाला, जीवन में क्लेश पैदा करने वाला समाज के अन्दर शांति की स्थिति को तोड़ने वाला, अशांति पैदा करने वाला, राष्ट्र के अन्दर अशांति की ज्वाला सुलगाने वाला—ये सबके सब महापापियों की श्रेणी में आ सकते हैं।

नागरिकों का शिष्टमंडल सेठ के पास पहुंचा। सेठ ने बड़ा सत्कार किया। शिष्टमण्डल सोच रहा था कि यह करोड़पति सेठ है, हमें अनादर की दृष्टि से देखेगा। लेकिन सेठ के बर्ताव को बिल्कुल विपरीत पा रहे हैं। सेठ सम्मान कर रहा है हमारे जैसे

का। यह सेठ पूँली को महत्व नहीं दे रहा है, जीवन को महत्व दे रहा है। हमारे जैसे निर्धन व्यक्तियों के प्रति भी सम्मान प्रदर्शित कर रहा है, जैसे कि अपने वर्ग के, मुकावले के व्यक्ति को सम्मान देते हों। इस दृष्टि से सेठ का जीवन संस्कारित जीवन है। शिष्टमंडल ने अपनी वात रखी और कहा, आपकी मातेश्वरी को आप कुछ कब्जे में रखिए। यह हमारे घरों में आग लगाकर हमारे सबके जीवन को विषाक्त कर रही है। सेठ ने कहा, जितने सम्भव प्रयत्न थे वे सब मैंने कर लिये, लेकिन मेरे प्रयत्न सफल नहीं हुए। आपसे मेरा निवेदन है, आप ही कोई उपाय सुझायें और मेरी मातेश्वरी को समझा दें। उनके जीवन को संस्कारित बना दें तो में आपका अहसान नही भूलूंगा। शिष्टमण्डल उस अस्सी वर्ष की बुढ़िया के पास पहुँचा। अनेक तरह की शास्त्रीय बातों को रखते हुए समझाने की कोशिश की। बुढ़िया को सब वातें तो जंची, लेकिन उसने उत्तर दिया, आपकी सब बातें अच्छी हैं, भली हैं, मैं समझती हूं लेकिन झगड़ा किये वगैर मुझे खाना हज्म नहीं होता है।

शिष्ट मण्डल ने सोचा कि अब वृद्धावस्था के अन्दर संस्कार डालना बड़ा कठिन है। उस बुढ़िया को कहा मातेश्वरी ! यदि लड़ाई झगड़ा किये विना आपका अन्न हजम नहीं होता है तो हम आपके उस रास्ते को खुला रखकर बाकी दरवाजे बन्द कर देते हैं। आप लड़ाई करने के लिए घर घर के अन्दर पहुंचती हैं, आपको श्रम होता है, हम सब मिलकर आपके लिए एक कमरे का इन्तजाम कर देते हैं, उसी में आप गद्दी तकिये पर विराजकर बैठ जावें और वारी-वारी से एक व्यक्ति आपके पास पहुंच जाया करेगा और जितनी आपको लड़ाई करनी है दिनभर आप उस व्यक्ति से लड़ते रहें। तो उसने कहा कि हाँ यह वात मुझे मन्जूर है क्योंकि कोई लड़ने वाला नहीं हो तो विना लड़ाई किये मुझे शान्ति मिलने वाली नहीं है। शिष्ट मंडल ने सेठ से निवेदन किया कि अब समस्या

का कुछ हल आ चुका है। आपके घर के अन्दर काफी सदस्य हैं, एक-एक सदस्य की बारी बांध दी जावे, एक कमरे के अन्दर गादी तकिये डालकर बुढ़िया को बिठा दीजिए, यह आपके घर की अशान्ति एक ही कमरे में रहेगी और सारे नगर में अशान्ति भी नहीं रहेगी ' सेठ ने कहा कि आपकी आज्ञा शिरोधार्य है लेकिन मेरे परिवार के सदस्यों से यह समस्या हल होने वाली नहीं है। शिष्ट मण्डल ने कहा कि क्यों ! तो कहा—परिवार के सदस्यों को मैंने संस्कार दे दिये हैं कि बुढ़िया चाहे कितना ही कुछ कहे तुमको चुप्पी साध लेनी है और कुछ भी उत्तर नहीं देना है। जैसे बच्चे की बात को सुनकर हंसना है उसी तरह से बुढ़िया की बात को सुनकर हंस लेना है। अतः मेरे परिवार के सदस्य उससे लड़ाई नहीं करेंगे उसकी वात को सुनकर हंसते रहेंगे। तो इससे बुढ़िया की आग शान्त नहीं होगी और फिर कमरे से बाहर निकलकर आपके धरों में पहुंचेगी तो आपकी समस्या का हल कैसे होगा। शिष्ट मंडल ने सोचा यह भी ठीक है। सेठ के इस प्रकार संस्कारित जीवन का कुछ नमूना देखकर शिष्ट मण्डल ने सोच लिया कि यह सारे नगर की माता हो जानी चाहिए क्योंकि इसके पुत्र के इतने संस्कार हैं कि हमारे साथ सुमति के साथ व्यवहार कर रहा है तो यह उत्तरदायित्व हम सवका है। इस दृष्टिकोण से उस शिष्टमण्डल ने यह निर्णय किया कि सेठ के घर के सदस्यों को छोड़कर गांव के जितने सदस्य हैं उनके प्रत्येक घर से एक व्यक्ति की वारी वाँध दी जाये। उन्होंने गांव के अन्दर उसी ढंग का ऐलान करवाया। वह गाँव विपमताओं की स्थिति का प्रदर्शन करने वाला नहीं था। वह परिवार के रूप में गांव था, सव की समता की स्थिति का प्रदर्शन करने वाला गांव था। आजकल ग्राम पंचायतों की व्यवस्था करने के लिए जरूर कुछ किया जा रहा है लेकिन आज की स्थिति में वस्तुतः ग्राम को परिवार समझने की दृष्टि अभी मानव

में नहीं आ रही है । लेकिन उसका कुछ दृश्य इस तरह से अपने परिवार के सदस्यों की बारी बांधकर उस गांव वाले हमारे सामने रख रहे हैं। संयोग से एक संस्कारित कन्या जो कि बचपन से अपने जीवन के स्वरूप को समझकर जीवन को संस्कारित करके चलने वाली थी, सुसराल में पहुंची। सासु और स्वसुर को नमस्कार भी किया और उसके परिणाम हेतु शुभ आशीर्वाद चाहा था। उसने अपने प्रफुल्लित नैनों से सासु की आकृति को देखा और सोचने लगी कि मेरी सासुजी के मुँह से आज मेरे लिए सुन्दर आशीर्वाद आयेगा क्योंकि मैं इस घर के अन्दर नवीन पुत्रवधू के रूप में परिवार के नवीन सदस्य के रूप में उपस्थित हुई हूं। लेकिन उस कन्या ने देखा सासुजी के मुँह से आशीर्वाद के कोई वचन नहीं निकल रहे थे बल्कि आकृति में थोड़ी सी म्लानता थी। उस चतुर मनोविज्ञान की ज्ञाता, जीवन को संस्कारित करने वाली कन्या ने सासुजी से प्रश्न किया कि सासुजी, आज मेरा इस परिवार के सदस्य के रूप में आना आपको अच्छा नहीं लग रहा है ? मैं यह जानना चाहती हूं कि किसी भी परिवार के प्रत्येक सदस्य के मन में प्रफुल्लता आये बिना नहीं रहती। लेकिन आज मैं इसके विपरीत देख रही हूं, क्या कारण है ? आपको उदासी का क्या हेतु है। आप स्पष्ट बतायें ? उसने जो आजकल की प्रचलित प्रथा थी उनको भी हटा दिया। सासुजी ने पुत्रवधू के वचनों को महत्व दिया और कहा कि बींदनी जी;तुम्हारे आने से उतनी ही प्रफुल्लित हूं जितना कि होना चाहिए और जो चिन्ता का रूप आप देख रही हो वह तुम्हारे कारण नहीं है, उसका अन्य कारण है। वहू ने पूछा कि वह कौन सा कारण है जबकि मैं परिवार की सदस्या बनी हूं तो परिवार के ऊपर आने वाली हर विपत्ति के अन्दर मेरा भी हाथ बंटाना कर्त्तव्य है। कौनसी ऐसी कुमति का साम्राज्य छा गया जिससे

आपको मन को जो कि कोमल कमल के समान है मुरझा गया। आप स्पष्ट कहें मेरे से बन सकेगा तो मैं उसमें भाग लूंगी। सासु जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा और सारा वृत्तान्त सुनाया कि करोड़पति सेठ के यहां इस तरह से असंस्कारित वृद्धा माता का गांव के लोगों के साथ व्यवहार है और वहां बारी बारी से प्रत्येक परिवार से एक एक सदस्य रोज जाने का निर्णय हुआ है मेरे घर के सदस्य के जाने का आज प्रसंग है और यह सदस्य पहुंचा तो वह बुढ़िया चाहे वह ८० वर्ष की है लेकिन उसका जीवन मिट्टी के ढेले से भी गया बीता है और इतने अपशब्द वह परिवार के लिए प्रयोग करेगी कि जो कम से कम आज हमको अभीष्ट नहीं है। हम चाहते हैं कि आज तुम्हारी सरीखी संस्कारित कन्या हमारे परिवार में आई यह हमारे परिवार के लिए मंगलमय प्रसंग है अतः हमारे परिवार के लिए अमंगल सूचक शब्दों का प्रयोग नहीं हो इस भावना से मेरे मन में ग्लानि आ रही है कि मैं क्या करूँ। इस बात को सुनकर वह कन्या जो नवीन पुत्रवधू के रूप में परिवार में उपस्थित हुई, उसके जीवन के अन्दर उच्च जीवन के संस्कार थे। अपने जीवन को मांजने की दृष्टि से वह चल रही थी और सुमति की पाठशाला में भी वह प्रवेश पा चुकी थी इसलिए उस कन्या ने प्रफुल्लित नैनों के साथ मधुर स्वर में कहा सासुजी, यह कार्य जितना आपका है उतना ही मेरा भी है, आप चिन्ता मत कीजिए। मेरे लिए आप मंगल कामना करती हैं यह मेरे सौभाग्य की बात है लेकिन मेरा मंगल मेरे हाथ में है, मैं अपने जीवन में सुमति और सुमति के साथ जीवन के संस्कारों को लेकर चल रही हूं इसलिए मेरा कोई अमंगल होने वाला नहीं है—आप इस विषय में निश्चित रहिये और यदि आपके घर की बारी है तो आज मेरा ही नम्बर लगा दिया जाये। बन्धुओ, मैं क्या बताऊँ—कहाँ एक ८० वर्ष की बुढ़िया और कहां एक तरुणी जो कि नव पुत्रवधु के रूप में

परिवार में प्रवेश करती है और अमंगलकारी शब्दों को मंगल में परिणत करने के लिए कैसी भावना व्यक्त कर रही है आप थोड़ा अपने जीवन को टटोलें और थोड़ा सा प्रश्न का हल करने के लिए अपने आपको तैयार कीजिए।

[कथा के आगे का अंश अगले प्रवचन में चालू है। कृपया प्रवचन संख्या ३ देखें। —सम्पादक]

लाल भवन
२१ जुलाई १९७२

●●

संस्कारी जीवन विश्व उपवन का मधुर सुवास से भरा वह पुष्प है, जो प्रतिपल चारों ओर सुगन्ध ही सुगन्ध फैलाता है।

विन्नाणेण समागम्म धम्म साहणमिच्छिउं

—उत्तराध्ययन

विवेकज्ञान से ही धर्म के साधनों का निर्णय हो सकता है।

---

३ | जीवन का स्वरूप

पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो,
पतित उद्धारन हारो।
पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो।
जदपि धीवर भील कसाई,
अति पापिष्ट जमारो।
तदपि जीव हिंसा तज प्रभु भज,
पावे भवनिधि पारो।

यह पद्म प्रभु की प्रार्थना है। प्रार्थना की कड़ियों में प्रभु के नाम को पावन की संज्ञा दी है। ऐसे तो पद्म नाम कईयों का हो सकता है किन्तु कवि ने जिस संज्ञा वाचक शब्द को कविता में समन्वित किया है। उसका आशय है कि उनका नाम पावन और पवित्र है, पतितों का उद्धार करने वाला है। पतित कौन हैं ? कवि
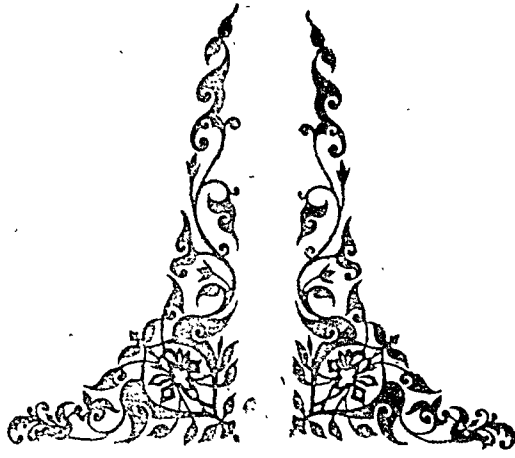
गुरुदेव ! तुम्हें शतशत वंदन
स्वीकार करो यह अभिनन्दन

आचार्य श्री नानालालजी म०

के

जयपुर चातुर्मास

के

पावस प्रवचन हमें
सतत मार्ग दर्शन
करते रहें।

●

ने धीवर, भील और कसाई की ओर संकेत किया है। आप जानते हैं इन लोगों का धन्धा क्या है? पापयुक्त है। ये पाप-युक्त जीवन बिताने वाले होते हैं। वे भी हिंसा का परित्याग करके यदि आपके नाम का स्मरण करें तो उनका भी उद्धार हो जाये। कवि ने इसकी लम्बी चौड़ी सूची दी है। गौ की हत्या करने वाला, ब्राह्मण की हत्या करने वाला, स्त्री की हत्या करने वाला ये बड़ी हत्याएँ मानी गई हैं, इन हत्याओं को करने वाले आपके नाम की स्तुति को समझ लेते तो ये भी अपने जीवन का उद्धार कर पाते।

शब्द-रचना की दृष्टि से अर्थ सरल-सा झलक रहा है लेकिन एक दृष्टि से देखा जाये तो इन शब्दों के अंदर गहनता है। वह गहनता तर्क के साथ व्यक्त की जाती है। आज का युग तर्कप्रधान युग है। सिर्फ आस्था से आज के युग का काम चलने वाला नहीं है।

जब मानव यह सुनता है कि प्रभु का नाम पावन है और पतित का उद्धार करने वाला है तो सहज ही एक तर्क पैदा होगा कि पापिष्ठ जीवन से सरलता से छुटकारा पाने का यह सुगम उपाय बन गया। दिन भर कितने ही पाप करते रहो, दुनियां भर को लूट-खसोट करते रहो, दुनियां को सताने वाले जितने कार्य बन सकें किये जायँ और सन्ध्या के समय प्रभु के नाम का स्मरण कर लिया जाये तो हमारे सारे कुकृत्य नष्ट हो जायेंगे। यह कितना सस्ता उपाय है? फिर अन्य किसी उपाय की आवश्यकता ही नहीं रहती है। किन्तु नाम लेना सरल है। मुँह, जुबान हिले, हाथ में माला लेकर फेर लो इतना सरल अर्थ समझ कर व्यक्ति इसको प्रमुखता देता है किन्तु इसका इतना सरल अर्थ नहीं है। शब्द वर्ण से बनते हैं। यह तो एक दृष्टि से जड़ तत्व है। इसके अन्दर पवित्रता का आरोप करें या अपवित्रता का, दरअसल शब्दों के माध्यम से वाञ्छित अर्थ निकाला जा सकता है। शब्दों के

साथ साथ प्रभु का स्मरण हो आता है। विशिष्ट शब्दों के उच्चारण से भगवान का अत्यन्त उज्ज्वल जीवन सामने आता है और उसका जब मन के ऊपर स्पष्ट प्रतिबिम्ब पड़ने का प्रसंग आता है तब मन में भी पवित्रता का संचार होता है।

हृदय से भगवान का पावन नाम लेते हैं तो जिह्वा और अंतःकरण भी पवित्र हो जाते हैं उस पवित्र नामोच्चारण से मन में या अन्तःकरण पर रहने वाली हमें धँधुलती हुई परिलक्षित होगी। यह मन रूपी कपड़ा सांसारिक कार्यों से दुर्गन्ध युक्त बना हुआ है। उसमें झूठ, छल, प्रपंच और न मालूम कितनी ही बुरी वस्तुएँ क्रीड़ा कर रही हैं और सारे मन रूपी कपड़े को गंदा बना रही हैं। इस गन्दे कपड़े के ऊपर यदि आप पद्म प्रभु भगवान के नाम का पवित्र अर्थ दो क्षण के लिये भी टिका लेंगे तो आपके मन में सुगन्ध रूपी आध्यात्मिक शान्ति का प्रभाव बना रहेगा। जितने क्षण आपका ध्यान प्रभु के सीधे स्वरूप की ओर होगा। तब तक वहाँ बाहरी वस्तुओं का प्रभाव मन्द होगा, कुसंस्कार नष्ट हो जायेंगे। यह स्थिति निरन्तर मन की बनी रही तो सारी दुर्गन्ध साफ होकर जीवन पावन और पवित्र वन जावेगा।

जो लोग समझते हैं कि दिन भर पाप करें और शाम को भगवान का नाम ले लें तो पाप से छुट्टी मिल जावेगी। उन लोगों के मन में ये विचार वैठे हुए हैं कि शाम को भगवान का नाम लेने से दिन भर के पाप नष्ट हो जावेंगे किन्तु ये विचार तथ्यपूर्ण नहीं हैं इस प्रकार के विश्वास से जोवन में पुनीत संस्कारों का आरोपन नहीं होगा।

हमारा सारा जीवन वीतराग देव की वाणी के अनुसार सुसंस्कारित हो यह तभी सम्भव है। उस जीवन को सुस्संकारित करने के लिये हम अपने जीवन के पापों को छिपावें नहीं। दुर्गन्ध को छिपाने की कोशिश न करें वरन् उसे वाहर फेंके। दुर्गन्ध को

सूर्य की किरणों के सामने विखेर दें, दुर्गन्ध उड़ जावेगी और वस्तु का वास्तविक स्वरूप सामने झलकने लगेगा।

गंदगी को दबाओ मत

आप जानते हैं, व्योपारी जब अपनी दुकान पर बैठता है और कचरा निकालने का प्रसंग आता है तो वह रुपया पैसा नोट और कोई बढ़िया चीज़ है तो गद्दी से उनको उठाकर तिजोरी में रखेगा और कचरे को झाड़कर, दुकान से बाहर फेंकेगा। यह तो प्रचलित पद्धति है। लेकिन कदाचित् किसी व्यापारी के दिल में यह आ जाय कि-सोने चाँदी, रुपये नोट हैं, उनको तो उठाकर बाजार में फेंक दें और जितना कूड़ा करकट है उसको इकट्ठा करके, या तो गद्दी के नीचे दवा दें या तिजोरी में रख दें। यदि ऐसा वह करने लग जाय तो उस व्यापारी को क्या कहेंगे? वेवकूफ और मूर्ख ही तो कहेंगे?

हम इस जीवन की दुकान पर भी बैठे हैं। क्या हमने अपने जीवन के स्वरूप को भी समझा है। प्रश्न वही है, "किं जीवनम्" जीवन क्या है? क्या इस प्रश्न पर आपने कुछ चिन्तन किया है? इस जीवन की दुकान पर बैठकर आप कूड़े करकट कचरे को बाहर फेंक रहे हैं या उसको जाजम के कोने नीचे के दवा रहे हैं? इसका तात्पर्य यह है कि इस जीवन के अन्दर कूड़ा कर्कट गंदगी भरी हुई है। इस गंदगी को इन्सान वाहर फैंकना नहीं चाहता है। नयी नयी गंदगी पैदा हो जाती है तो भी उसको छिपाने की कोशिश करता है और सद्गुण रूपी वहुमूल्य रत्नों को वाहर फेंकने की कोशिश करता है। जीवन के अन्दर पाप की वृत्ति आयी, मनुष्य ने पाप किया और पाप करना स्वाभाविक भी है। परन्तु पाप करने के बाद में पाप को पाप कहने की ताकत भी उसकी जवान में नहीं आती है। प्रकारान्तर से वह पाप प्रकट भी हो जाय तो भी मनुष्य चाहेगा कि पाप प्रकट

न हो और इस पाप को छिपा कर तथा दबाकर रखता रहूं। ऊपर से लेबल ऐसा बता देता है कि दुनिया मुझे भला आदमी समझती रहे। कदाचित् किसी संयोग से अपने जीवन से शुभ काम बन जाता है, मार्ग में जाते हूए किसी गिरते हुए प्राणी को सहारा देकर बचा लेता है, तो वह मन में फूला नहीं समाता है और सारी जगह बात कहता फिरता है कि मैंने ऐसा किया, और जिस व्यक्ति को सहारा दिया यदि वह व्यक्ति कभी कोई बात कहे तो वह उलट कर कहेगा कि मैंने तुमको मरते हुए को बचाया था। वह दुनिया भर में उसका ढिंढोरा पीटेगा और इस छोटे से शुभ कर्तव्य से अपनी गंदगी को नीचे दबायेगा। इस के विपरीत जो व्यक्ति सद्‌गुण रूपी शक्तियों को तिजोरी में बन्द रखता है कूड़े कर्कट को बाहर फेंक देता है, तथा प्रभु के नाम का श्रवण करता है तो वह नाम उसके जीवन को पावन करने वाला वन जावेगा। यदि ऐसा नहीं किया तो प्रभु का नाम हजार हजार बार लें, लाखों-करोड़ों बार लें, वह प्रभु का नाम पवित्र पावन करने वाला नहीं बनेगा। इन पवित्र कड़ियों को जीवन के साथ जोड़ें और जीवन को सामने रखकर इसके स्वरूप को समझने की कोशिश करें तो यह सब सम्भव है।

प्रभु महावीर ने ढाई हजार वर्ष पहले जो उद्‌घोषण किया वह यही था :

असंखयं जीविय मा पमायए।
जरोवणीयस्स हु नत्थि ताणं॥

हे मानव ! तुम्हारा जीवन असंस्कारित चल रहा है। प्रमाद में क्यों पड़े हो, जीवन को इधर उधर क्यों भटका रहे हो। आप विचार करिये असंस्कारित जीवन क्या है हमारा प्रश्न क्या है ? जीवन के साथ संस्कारित और असंस्कारित शब्द जुड़े हुए हैं। असंस्कारित जीवन की और संस्कारित जीवन की अनेक विद्वान् परिभाषा करते हैं, जीवन को तोलने की कोशिश

करते हैं लेकिन वास्तव में जीवन की परिभाषा परिपूर्ण रूप से क्या है ? **"किं जीवनम्"** जीवन क्या है। कुछ विद्वान् उत्तर देते हैं कि **"दोष विर्वाजितम् यद् तज् जीवनम् ।"**

दोष से विवर्जित है वही जीवन है। जो दोष से रहित है, वह जीवन है इस सामान्य परिभाषा में कुछ दार्शनिक दृष्टि से अति-व्याप्ति दोष की संभावना है । यद्यपि अतिव्याप्ति दोष, अव्याप्ति दोष और असंभव दोष, ये तीनों न्यायिक क्षेत्र के, दर्शन क्षेत्र के लक्षण हैं। यह दार्शनिक सभा नहीं है। यह तो धर्म जिज्ञासु सभा है। यद्यपि धर्म सभाओं के वीच में ये दर्शन सम्वन्धी वातें थोड़ी कठिन पड़ती हैं परन्तु फिर भी आज का जो समाज है, आज का जो मानव है वह इस कठिन तत्व को भी ग्रहण करने का प्रयास करता है। आज मनुष्य के मस्तिष्क का विकास इतना हुआ है कि वह वारीक से वारीक चीज को समझने का प्रयास करता है । इसलिये जव तक आप जीवन की वारीकी को न समझेंगे तव तक उसके निखालिस रूप को नहीं समझ पायेंगे ।

जीवन का लक्षण

आपका प्रश्न, नहीं तो मेरा प्रश्न है "किं जीवनम्" जीवन क्या है ? जव इसका लक्षण वताया जावेगा कि अमुक तरह का जीवन अमुक तरह के जीवन का लक्षण है। तो वह लक्षण यदि दोषयुक्त वन गया तो सही लक्षण नहीं समझा जा सकता। और यदि दोष रहित लक्षण है तो वह सही लक्षण है। उदाहरण स्वरूप जीव का लक्षण लें। यदि कोई पूछे कि जीव का लक्षण क्या है ? तो उसका उत्तर है कि जीव का लक्षण उपयोग है **"जीवो उवओग लक्खणो"** यह शुद्ध लक्षण है, क्योंकि इससे रहित कोई जीव नहीं होता तथा सभी जीवों में उपयोग लक्षण है। इसके विपरीत जीव का लक्षण यह माना जाय कि पञ्चेन्द्रिय हो वह जीव है। तो यह सभी जीवों

में नहीं जा सकता पञ्चेन्द्रिय से आप क्या समझते हैं ? पांच इन्द्रियां ये हैं- कान, आंख, नाक, मुँह और शरीर। यदि हम कहें कि पाँच इन्द्रियों वाला ही जीव है तो जिसके चार इन्द्रियां हैं, तीन इन्द्रियां हैं क्या वह जीव नहीं हैं ? दो इन्द्रियां हैं तो क्या वह जीव नहीं ? एक इन्द्रिय है तो क्या वह जीव नहीं ? अतः जीव मात्र का पंचेन्द्रीयत्व लक्षण बताना यह जिस प्रकार दोषपूर्ण है उसी प्रकार जीवन के विषय में एक विद्वान ने कहा है—**"दोष विवर्जितं यद् तद् जीवनम्"** दोष से रहित है वह जीवन है। यह भी दोषपूर्ण लक्षण है।

मैं यहाँ आपको बतला रहा हूं कि जीवन का सही लक्षण क्या है। इस प्रश्न के उत्तर में जब यह कहा जाय—**"दोष विवर्जितं यद् तज् जीवनम्"** इस पर यदि उपर्युक्त तरीके से विचार करें तो यह लक्षण कहां तक शुद्ध है ? इसकी परिभाषा के साथ आपको थोड़ा सा बारीकी से चिन्तन करा रहा हूं। यह लक्षण शुद्ध नहीं है। **'दोषविवर्जितं यत् तद् जीवनम्'**—दोष रहित जीवन यह लक्षण जा सकता है। पर साथ ही जीवन रहित तत्व में भी यह चला जाता है। इस परिभाषा के अनुसार यदि दोष रहित परमाणु हो तो वह जीवन कहला सकता है।

शास्त्रीय दृष्टि से धर्मास्तिकाय दोष रहित है तो उसको भी जीवन कहना पड़ेगा पर धर्मास्तिकाय में जीवन कहां ? तो यहां पर घोटाला हो जायेगा। इसलिये जीवन की उपरोक्त परिभाषा शुद्ध नहीं कही जा सकती। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय व आकाशास्तिकाय भी अपने आपमें दोष रहित है। जीवन की उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार इन्हें भी जीवन समझ लिया जायगा—पर वे तो जड़ हैं। अतः यह लक्षण अतिव्याप्ति दोषयुक्त बन जाता है। इसमें जीवन के पूरे लक्षण नहीं आ रहे हैं। जीवन के शुद्ध लक्षण को पहिचानने के लिये मैं आपके सामने वह चीज रख रहा हूं—शुद्ध लक्षण को जानने के लिए आपको अपना जीवन संस्कारित करना है,

संस्कारित जीवन के साथ लक्षण को समझने का प्रयास करेंगे तो समझ में आयेगा और बुद्धि का निखालिश रूप सामने आयेगा। इस बारीक बात को समझने का प्रयास कर रहे हैं। संस्कार किस रूप में कर रहे हैं। आप कह दें—महाराज, आदिवासी की तरह हम थोड़े ही हैं। हमारा जीवन तो संस्कृतिमय है। हमारे जीवन की गति तेज है। हम अपनी बुद्धि, से कहां से कहां पहुंच गये हैं, कहां कहां पर दौड़ रहे हैं। कितनी पेनी बुद्धि, सूक्ष्म दृष्टि हमारे पास आ गई है—क्या यह हमारे जीवन का संस्कार नहीं हैं? क्या आप इसको संस्कार नहीं मानेंगे? यह आप तर्क दे सकते हैं। मैं इस तर्क के पीछे आपको चिन्तन देना चाहता हूं। आप स्वयं सोचिये। आज का इन्सान अपनी बुद्धि का परिमार्जन करके चल रहा है, यह अवश्य है कि आदि युग का जो मनुष्य था, उसकी जो प्रतिभा थी, उसका जो चिन्तन था, उसके रहन-सहन की जो पद्धति थी, जिस प्रकार से वह रहता था उसमें और आज में रात दिन का अन्तर आ गया है। कहां आदि युग का मनुष्य और कहाँ आज का मनुष्य।

इसलिये आप गंभीरता से चिन्तन कीजिये। मैं सिर्फ आप लोगों को ही नहीं, बुद्धजीवी वर्ग को, विद्वान लोगों को सम्बोधन कर रहा हूं कि वे अपने दिल-दिमाग से सोचें, चिन्तन करें कि आज का यह जीवन वस्तुतः संस्कारित है। आप चिन्तन करेंगे तो अनुभव होगा कि वास्तव में यह जीवन संस्कारित नहीं है। विज्ञान से भौतिक तत्वों की और बौद्धिक शक्ति की भी वृद्धि हुई है। मानव विद्युत गति से दौड़ रहा है, परन्तु जीवन के इस प्रश्न को ढूंढ़ने के लिये, इस प्रश्न को हल करने का क्या प्रयास किया जा रहा है? इस स्थिति के साथ मैं आज यह बता रहा हूं कि आज जितनी विकास की स्थिति है उस पर आप सोचें कि क्या यह आपके जीवन का संस्कार है? क्या आपके जीवन के अन्दर उससे शान्ति मिलती है। जितना बुद्धि का विकास हुआ है उसके साथ ही साथ आपके जीवन को शान्ति

मिली है, शान्ति बढ़ी है ? नहीं, अशान्ति बढ़ी हैं। बुद्धिजीवी वर्ग का जिस तरह से विकास हुआ है उसमें आप बिलकुल सही तौर पर, अपने अन्तर पर हाथ रख कर पूछिये कि शान्ति मिली है कि अशांति ? अशान्ति। बड़े से बड़े जौहरी से पूछिये ? आपने जवाहरात के अन्दर तरक्की की है लेकिन क्या उससे जीवन के अन्दर शान्ति मिली है ? यदि उससे जीवन के अन्दर शान्ति का संस्कार नहीं है तो समझना चाहिये कि वह जीवन वस्तुतः संस्कारित नहीं हो पाया है। आज जो संस्कार हैं वे कुछ और ही हैं। वास्तविक जीवन के संस्कार कुछ और ही हैं।

संस्कारों का चमत्कार

जिस जीवन में छोटी चिनगारी-सा संस्कार आ जाता है वह जीवन कैसा चमत्कार दिखा सकता है, इसके लिये थोड़ा रूपक कल अधूरा छोड़ गया था। एक तरफ ८० वर्ष की बुढ़िया जिसने बाल बच्चों का पोषण किया, पोते पड़ पोते देखे और उनसे उसका सारा घर भर गया। कितना विकास कर लिया। क्या उसने जीवन का संस्कार किया है ? जीवन में यह सब कुछ किया, घर को परिवार से कितना भरा पर उस बुढ़िया को शान्ति कितनी मिली ? एक तरफ एक तरुणी जो अभी नव विवाहिता है, विवाह करके ससुराल आई है। जब उसके सामने यह जटिल प्रश्न आया, उस प्रश्न को लेकर वह प्रथम आती है और देखती है सासुजी अशान्ति के झूले में झूल रही हैं वे सोचती रही वह बुढ़िया उसके साथ अपशब्दों का प्रयोग करेगी, अमंगलकारी शब्दों का प्रयोग करेगी आदि। तो वह नवविवाहिता कहती है कि सासुजी, आज आप यह क्या सोच रही हैं; कि क्या आपके परिवार के लिए अमंगलकारी शब्दों का प्रयोग कर देने से वह परिवार उसमें परिणित हो जायेगा। यह सोचना आपका गलत है। यदि अमंगल शब्दों से सीधा किसी के ऊपर आक्रमण होता हो तो अमंगल

शब्द आज दुनियां के अन्दर गूँज रहे हैं, गाली गलौज देने वाले दुनियाँ में कितने हैं और कितने गाली गलौज दे रहे हैं। आज विज्ञान ने शब्दों को दुनियाँ के एक कोने से दूसरे कोने पर पहुंचा दिया है और एक कमरे के अन्दर बैठकर दी जाने वाली गाली सारे वायुमण्डल में फैल रही है वह किस मनुष्य से छिपती है। तो क्या हर मनुष्य ऐसे अमंगलकारी शब्द से अमंगल रूप बन जायगा। वह छोटी अवस्था वाली तरुणी सासूजी से कहती है, सासूजो आप इस विषय की चिन्ता मत करिये। ऐसे अमंगलकारी शब्द मेरे जीवन को चिपकने वाले नहीं हैं। ये आपके जीवन और आपके परिवार के लिये अशुभ नहीं वन सकते। किन्तु यदि आप इनको पकड़ने की चेष्टा करेंगे, आप इनको अपने मन में स्थान देंगे तो अमंगलकारी कार्य हो सकते हैं। यदि इनको जीवन में स्थान नहीं देंगे, जीवन के अन्दर इस पर पश्चाताप नहीं करेंगे तो कुछ विगड़ने वाला नहीं है। आप इसके लिये अनुमति दीजिये मैं स्वयं आज उस मातेश्वरी के पास पहुँचती हूं। इस तरह उसने अपनी भावना को व्यक्त किया। सासूजी उससे कहने लगी, वहू रानी अभी-अभी तुम इस घर में प्रवेश कर आई हो तुम्हारा जीवन कोमल है, तुमने दुनियां की ऊँची-नीची स्थिति अभी नहीं देखी है, अभी यह जीवन की कोमल अवस्था है। मेरे सामने इस प्रकार के शब्द कहना सहज है क्योंकि अपने पिता से तुमने यह संस्कार पाया है और उसी दृष्टि से तुम यह यह वोल रही हो, परन्तु जिस वक्त उस बुढ़िया के सामने जाओगी जो एक विकराल रूप लेकर प्रस्तुत होती है तो तुम घवरा जाओगी और तुम कहीं घवरा कर दूसरी स्थिति पैदा न कर दो।

सासुजी के इन शब्दों को सुनकर पुत्र वधू मुस्कराई। कहने लगी, सासूजी, परीक्षण के तौर पर मुझे भेज दीजिये। मैं यह चाहती हूं कि अति स्नेह के साथ मुझे आशीष दें। सासुजी ने आज्ञा दी, और वह घर से बुढ़िया के पास जाने लगी। उसने सोचा, मैं जाकर

निष्क्रय बैठ जाऊँगी तो मेरे मन में व्यर्थ का पाप का कचरा इकट्ठा होगा इसलिये कुछ न कुछ कार्य हाथ में लेकर जाना चाहिये। इस दृष्टि से हाथ का चर्खा, कातने की पूनी, सब साधन लेकर पहुंची। जब बुढ़िया के द्वार पर जाकर यह कन्या खड़ी हुई, तो कुछ बिलम्ब हो गया था। इस बिलम्ब की स्थिति से बुढ़िया तमतमा उठी और बच्ची को देखकर पहले ही स्वर में उस बुढ़िया ने कहा, अरी रांड इतनी देर से आयी। आप सोचिये नवीन पुत्र बधू को कोई रांड शब्द से पुकार ले। मैं समझता हूँ कि बन्दूक की गोली का असर जितना नहीं होता है उतना उसका असर होता है। परन्तु जिसके मन में सुसंस्कार हैं उसके मन को इस प्रकार के शब्द भेदते नहीं हैं किन्तु सुसंस्कार उसके सुरक्षक बन जाते हैं। एक भोडल पत्थर होता है जिसके पट के पट उतरते चले जाते हैं। उस पर बन्दूक की गोली का असर नहीं होता है। क्योंकि वह स्वच्छ भी होता है और उसके पट भी कुछ कठोर होते हैं। जिस जीवन में संस्कारों के पट भोडल के समान हो गये हैं उसके सामने 'रांड' जैसे शब्द भी आ जाय जो बन्दूक की गोली के तुल्य हैं तो भी उसके जीवन पर उनका कोई असर नहीं होता है। बुढ़िया को वह नव युवती मुस्करा कर उत्तर देती है, सासु जी राज! आपका परिचय प्राप्त करने में थोड़ा बिलम्ब हो गया। मुझे क्षमा करिये, अव मैं आपके सामने उपस्थित हो गयी हूँ।" ऐसे कोमल शब्दों से उसने उसको सम्बोधन किया और चर्खा लेकर बैठ गयी। उधर उस बुढ़िया के मुख से गालियों की वर्षा होने लग गयी। लेकिन वह बहन मस्ती से अपना कार्य कर रही है, और अपने मन में एक भी शब्द को स्थान नहीं दे रही है। सोच रही है कि किसी की ऐसी आदत होगी। वह अपना कार्य करती रही। बुढ़िया बहुत देर तक बोलती रही। बीच में बोलने वाला मिल जाता है तो उसको अधिक समय

तक बोलने की और लड़ने की ताकत मिल जाती है। जैसे कहा है :

देते गाली एक हैं, पलटे गाल अनेक,
जो गाली पलटे नहीं तो रहे एक की एक ॥

कोई गाली गलोज दे रहे हैं तो देने दीजिये उसका उत्तर मत दीजिये वह गाली एक की एक रह जावेगी किन्तु यदि उत्तर में पुनः गाली दी गई तो अनेक हो जावेंगीं। उस बहिन ने बुढ़िया की गालियों का कोई उत्तर नहीं दिया। बुढ़िया बोल-बोल कर थक गयी। उस नवीन पुत्र वधू ने सोचा कि आज का कार्यक्रम पूरा हो गया। उसने सरलता के साथ प्रश्न किया— सासुजी ! आपका कार्य पूरा हो गया ? इतना कहते ही तो बुढ़िया फिर बकने लगी और लड़ती रही। दो तीन तरह के प्रसंग आये आज वह बुढ़िया न पानी पी सकी और न शान्ति से अन्न ग्रहण कर सकी। वह बोलती रही। उसके मस्तिष्क में गर्मी चढ़ गयी। मस्तिक की कोशिकाओं पर बड़ा बुरा असर पड़ा। खून की नाड़ियों पर विपरीत असर पड़ा। और वह बेहोश होकर गिर पड़ी। लेकिन संस्कारित जीवन वाली उस तरुणी पर कोई असर नहीं हुआ। वह सोचती है, 'यदि मैं इन शब्दों को ग्रहण करूँगी तो मेरे पर इनका असर होगा। अन्यथा नहीं। उसका सोचना भी तथ्य युक्त है बड़े बड़े बाजारों में दुकानें लगती हैं, हाट लगती है। यहाँ शायद जयपुर में तो न लगती हो ? गाँवों में तो लगती है। मैंने सुना है यहां भी लगती है। तरह तरह के व्यौपारी माल असबाब लेकर जाते हैं। उनमें जूते के व्यापारी भी आते हैं और जोड़े के जोड़े उठा कर जाने वालों को बताते हैं 'एक दूँ या दो दूँ।' कदाचित आप भी उस बाजार मे निकल जाओ तो आपको भी बता देगा। क्या आप उस समय उससे लड़ोगे ? क्या सोचेंगे ? आप यह सोचोगे कि यह इसका व्यापार है। क्या करे बेचारा जो चीज है वह बता रहा हैं। मुझे वह चीज नही च

इन्कार करोगे कि भाई मुझे नही चाहिये। जैसे उस व्यापारी का पैसा व्यापार समझ कर आगे वढ़ जाते हैं उसी तरह मानव समाज का हाट लगा हुआ है और प्रत्येक आदमी कई चीजें लेकर बैठा है। असंस्कारित जीवन है तो उसके पास उस तरह की चीजें हैं वह उनको लेकर बैठा है। कोई आदमी उधर से गुजरता है तो वह उनको वही देता है जो उसके पास है किन्तु जो संस्कारित है वह अपने मस्तिष्क को नियंत्रित रखता है और यह सोच लेता है कि इस भाई के पास इन्हीं चीजों का व्यापार है अतः यही वस्तु देगा। मुझे इनकी आवश्यकता नहीं है। मैं न लूँ वह असंस्कृत व्यक्ति हजार गालियाँ दे तो क्या हजार अपमान सूचक शब्द बोलता है तो क्या। वह व्यक्ति अपने मस्तिष्क को नियन्त्रण में रखता है और किसी प्रकार की विकृति, अपने मस्तिष्क में प्रवेश नहीं करने देता है। मैं समझता हूँ कि आपके मस्तिष्क में उसी प्रकार भी विकृति प्रवेश नहीं करेगी। लेकिन ये तत्त्व अपनाने से आ सकते हैं। विना अपनाये नहीं आ सकते।

हां तो, वह कन्या यह सोचे कि मरे तो मरने दो, अच्छा हुआ। उठाओ मत सहज ही मर रही है, मुझे ऐसी गालियां दीं। किन्तु यह असंस्कृत मन की बात है। जो भाई सुसंस्कारित जीवन वाला है वह यह सोचेगा कि यह भाई मूर्छा मे पड़ा है और मैं सचेष्ट हूं। यदि आप जीवन को समझना चाहते हैं तो सवसे पहले आपका कर्त्तव्य है कि दुश्मन के प्रति भी शान्ति की कामना करें और उसको उठावें।

बुढ़िया गाली वकती-वकती मूर्छा खाकर गिर पड़ी। यह देख कर वह तरुणी उठी। उसके मन में तो अपार करुणा भरी थी उसने चर्खे को एक तरफ रखा और वूढ़ी माजी को गोदी में उठाया, अपने घुटने पर उसके मस्तिष्क को रखा, पानी का छींटा दिया और पवन करके उसको सचेष्ट की। दिन भर की थकी हुई

बुढ़िया ने जैसे ही नेत्र खोले। उसकी दृष्टि उस बालिका की ओर गिरी जिसके नेत्रों से अमृत का झरना बह रहा था, जिसके नेत्रों से आन्तरिक सद्भावना और सद्गुणों की अमृत वर्षा हो रही थी, उस प्रेम मयी वृत्ति को देखकर बुढ़िया चकित हो गयी। सोचने लगी, कहां मेरी ८० वर्ष की जिन्दगी और कहां १६ वर्ष की तरुणी का जीवन। कहां इसका जीवन और कहाँ मेरा जीवन ? किस प्रकार मैंने अपना जीवन खत्म कर दिया। आज मैं किस प्रकार इसके साथ पेश आयी, किस प्रकार मैंने इसको गालियाँ दी और किस प्रकार मैंने इसको अपमानित किया लेकिन इसने अपने मन पर उसका कोई असर नहीं होने दिया। यह देवी है, यह भगवती है। इसको किस प्रकार सम्बोधित करूँ। उस बुढ़िया के मन में परिवर्तन आता है। बड़े बड़े लोगों के प्रयासों से भी परिवर्तन नहीं आया किन्तु इस वहिन के मूक भावों से आज इसमें परिवर्तन आ गया। अन्दर के कलुषित भावों को सद्वृत्ति के द्वारा बाहर फेंकने लगी और अपनी वृत्तियों को प्रकट करने लगी।

"...... कहने लगी हा, हा, अरे देवी ! कैसा मेरा जीवन है। मैंने अपने जीवन में पाप ही पाप कमाया है। मैं कैसे इस जीवन में उत्तीर्ण हो सकती हूं।" बुढ़िया उसके चरणों में लोट पोट हो रही है। उसके चरण पकड़कर सिसकियां भर कर रोती है और पाप की आलोचना करके अपने आपको शुद्ध कर रही है। कौन कर रही है ? वही बुढ़िया। अभी-अभी मैंने एक व्यापारी का उदाहरण दिया था जो कचरे को वाहर फेंकता है और रत्नों की रक्षा करता है। आज वही असंस्कारित बुढ़िया पदम प्रभु के पावन शब्दों के माध्यम से—

किंवा उस बहिन के माध्यम से अपने कर्कट रूप अशुद्ध जीवन का परिमार्जन कर रही है। बुढ़िया ने सदा के लिये गाली गलोज को छोड़ दिया। नगर निवासियों को जब यह ज्ञात हुआ तो चारों ओर एक ही स्वर गूंजने लगा कि यह कैसे संभव हो गया है। हो न हो

इन्कार करोगे कि भाई मुझे नही चाहिये। जैसे उस व्यापारी का पैसा व्यापार समझ कर आगे बढ़ जाते हैं उसी तरह मानव समाज का हाट लगा हुआ है और प्रत्येक आदमी कई चीजें लेकर बैठा है। असंस्कारित जीवन है तो उसके पास उस तरह की चीजें हैं वह उनको लेकर बैठा है। कोई आदमी उधर से गुजरता है तो वह उनको वही देता है जो उसके पास है किन्तु जो संस्कारित है वह अपने मस्तिष्क को नियंत्रित रखता है और यह सोच लेता है कि इस भाई के पास इन्हीं चीजों का व्यापार है अतः यही वस्तु देगा। मुझे इनकी आवश्यकता नहीं है। मैं न लूँ वह असंस्कृत व्यक्ति हजार गालियाँ दे तो क्या हजार अपमान सूचक शब्द बोलता है तो क्या। वह व्यक्ति अपने मस्तिष्क को नियन्त्रण में रखता है और किसी प्रकार की विकृति, अपने मस्तिष्क में प्रवेश नहीं करने देता है। मैं समझता हूँ कि आपके मस्तिष्क में उसी प्रकार भी विकृति प्रवेश नहीं करेगी। लेकिन ये तत्त्व अपनाने से आ सकते हैं। विना अपनाये नहीं आ सकते।

हां तो, वह कन्या यह सोचे कि मरे तो मरने दो, अच्छा हुआ। उठाओ मत सहज ही मर रही है, मुझे ऐसी गालियां दीं। किन्तु यह असंस्कृत मन की बात है। जो भाई सुसंस्कारित जीवन वाला है वह यह सोचेगा कि यह भाई मूर्छा मे पड़ा है और मैं सचेष्ट हूं। यदि आप जीवन को समझना चाहते हैं तो सबसे पहले आपका कर्त्तव्य है कि दुश्मन के प्रति भी शान्ति की कामना करें और उसको उठावें।

बुढ़िया गाली बकती-बकती मूर्छा खाकर गिर पड़ी। यह देख कर वह तरुणी उठी। उसके मन में तो अपार करुणा भरी थी उसने चर्खे को एक तरफ रखा और बूढ़ी माजी को गोदी में उठाया, अपने घुटने पर उसके मस्तिष्क को रखा, पानी का छींटा दिया और पवन करके उसको सचेष्ट की। दिन भर की थकी हुई

बुढ़िया ने जैसे ही नेत्र खोले। उसकी दृष्टि उस वालिका की ओर गिरी जिसके नेत्रों से अमृत का झरना बह रहा था, जिसके नेत्रों से आन्तरिक सद्भावना और सद्गुणों की अमृत वर्षा हो रही थी, उस प्रेम मयी वृत्ति को देखकर बुढ़िया चकित हो गयी। सोचने लगी, कहां मेरी ८० वर्ष की जिन्दगी और कहां १६ वर्ष की तरुणी का जीवन। कहां इसका जीवन और कहाँ मेरा जीवन ? किस प्रकार मैंने अपना जीवन खत्म कर दिया। आज मैं किस प्रकार इसके साथ पेश आयी, किस प्रकार मैंने इसको गालियाँ दी और किस प्रकार मैंने इसको अपमानित किया लेकिन इसने अपने मन पर उसका कोई असर नहीं होने दिया। यह देवी है, यह भगवती है। इसको किस प्रकार सम्वोधित करूँ। उस वुढ़िया के मन में परिवर्तन आता है। वड़े वड़े लोगों के प्रयासों से भी परिवर्तन नहीं आया किन्तु इस बहिन के मूक भावों से आज इसमें परिवर्तन आ गया। अन्दर के कलुषित भावों को सद्वृत्ति के द्वारा बाहर फेंकने लगी और अपनी वृत्तियों को प्रकट करने लगी।

"...... कहने लगी हा, हा, अरे देवी ! कैसा मेरा जीवन है। मैंने अपने जीवन में पाप ही पाप कमाया है। मैं कैसे इस जोवन में उत्तीर्ण हो सकती हूं।" बुढ़िया उसके चरणों में लोट पोट हो रही है। उसके चरण पकड़कर सिसकियां भर कर रोती है और पाप की आलोचना करके अपने आपको शुद्ध कर रही है। कौन कर रही है ? वही बुढ़िया। अभी-अभी मैंने एक व्यापारी का उदाहरण दिया था जो कचरे को बाहर फेंकता है और रत्नों की रक्षा करता है। आज वही असंस्कारित बुढ़िया पदम प्रभु के पावन शब्दों के माध्यम से—

किंवा उस बहिन के माध्यम से अपने कर्कट रूप अशुद्ध जीवन का परिमार्जन कर रही है। बुढ़िया ने सदा के लिये गाली गलोज को छोड़ दिया। नगर निवासियों को जब यह ज्ञात हुआ तो चारों ओर एक ही स्वर गूंजने लगा कि यह कैसे संभव हो गया है। हो न हो

यह वहू हमारे गांव में एक देवी के रूप में आई है। यही स्वर चारों ओर से आने लगा देखिये उस कन्या ने अपने जीवन को पूरी तरह से नहीं थोड़ा सा ही संस्कारित किया फिर भी दुनियां वालों ने उसको अपना पूज्य मान लिया।

मानव यदि अपने जीवन में थोड़ा भी संस्कार को अपना ले और तदनुरूप प्रवृत्ति करता हुआ पदम प्रभु की प्रार्थना में लीन हो जाए तो जीवन की वास्तविक शान्ति उससे दूर नहीं रहेगी आवश्यकता है जीवन के संस्कारित स्वरूप को समझकर चलने की।

लाल भवन,
२२-७-७२

●●

जैसे संस्कार किया हुआ अन्न मधुर व सुपाच्य होता है, वैसे ही संस्कार संपन्न जीवन जगत में सबके लिए स्पृहणीय होता है।

●

प्रमाद और कपाय का त्याग कर अन्तःकरण को ऐसा सुसंस्कारी वनाओ, कि उसमें प्रभु की शिक्षा रूप सिहनी का दूध ठहर सके।

—आचार्य श्री जवाहरलाल जी म०

●●
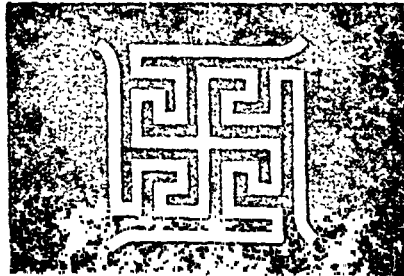
पलियंतं मणुआणजीवियं । —सूत्रकृतांग

मनुष्य का जीवन बहुत ही अल्प एवं अन्त वाला जीवन है ।

तयसं व जहाइ से रयं । —सूत्रकृतांग

जैसे सांप केंचुली को छोड़ देता है वैसे ही दोषों को छोड़ देना चाहिए ।

---

४ | जीवन का आदर्श

श्री जिन राज सुपार्स
पूरो आस हमारी,
प्रतिष्ठसेन नरेश्वर को सुत
पृथ्वी तुम महतारी ।
सुगुण सनेही साहिब सांचौ
सेवक ने सुखकारी ।। श्री जिन राज० ।।
धर्म काम धन मोक्ष इत्यादिक
मनवांछित सुख पूरो
बार बार मुझ यही विनती
भव भव चिन्ता चूरो ।। श्री जिन राज० ।।

बन्धुओ, प्रभु सुपार्श्वनाथ भगवान् की प्रार्थना की कुछ कड़ियों का मैंने उच्चारण किया । प्रार्थना के अभ्यास क्रम के अनुसार प्रभु

वीतराग देव के चरणों में कुछ न कुछ निवेदन कर ही दिया करता हूं फिर चाहे वह विनयचन्दजी की चौवीसी में से हो, आनन्दघन जी की चौबीसी में से हो या देवीचन्दजी अथवा अन्य किसी भी आचार्य एवं संत की चौबीसी में से हो। सन्त कवियों ने प्रभु के प्रति अपनी प्रगाढ़ भक्ति भावना को नाना रूपों में नाना प्रकार से व्यक्त किया है।

आज की प्रार्थना के अन्त में भगवान् सुपार्श्वनाथ के चरणों में सन्त कवि ने कुछ निवेदन किया है। क्या निवेदन किया है? निवेदन किया है कि भगवन्! आप मेरी आशाओं को पूर्ति करें। आशा? प्राणी मात्र के लिये आशा एक सम्बल है जिसके सहारे वे अपने अनेकानेक जीवन गुजार देते हैं। पर सामान्य प्राणी की आशा में और सन्त कवियों की आशा में अन्तर है। उसी अन्तर को समझना है।

जीवन में आशा का स्थान

कभी कभी कुछ तत्वज्ञ बोल उठते हैं कि आशा का तो परित्याग करना चाहिये। आशाओं का त्याग किये बिना तो हम भगवान को प्राप्त नहीं कर सकते, मोक्ष सुख प्राप्त नहीं कर सकते, यहां तक कि आशा का त्याग किये वगैर हम मोक्ष प्राप्ति के मार्ग पर ही अग्रसर नहीं हो सकते। मैं निवेदन कर दूं कि यह सही है कि आशाओं को अन्त में छोड़ना ही होगा, पर अगर तत्वज्ञों का यह कथन सर्वथा एकांगी रूप में हो तो सही नहीं है। अगर इस कथन को अपेक्षादृष्टि से लिया जाय तो यह कथन सही कहा जा सकता है।

प्रभु प्राप्ति के लिये आशा का त्याग करना अनिवार्य है, आवश्यक है। पर साथ ही अपेक्षा दृष्टि से आशा का रहना भी आवश्यक है, अनिवार्य है। आप कहेंगे यह कैसे? आप भ्रम में पड़ सकते हैं। पर ऐसा कुछ नहीं है। मैं इसे थोड़ा स्पष्ट कर देता हूं।

आप कुछ चिन्तन, मनन करेंगे तो यह बात आपको भी स्पष्ट हो जावेगी। आपका मस्तिष्क जो कुछ इधर-उधर के पुस्तकीय ज्ञान से सना हुआ है और जो कुछ तज्जन्यसंस्कार आपके मस्तिष्क में जमे हुए हैं, वे संस्कार एक दृष्टि से काल्पनिक हैं, स्व-अनुभूति के नहीं हैं। अनुभूति के संस्कार जो कि प्रत्यक्ष-बिना पौद्गलिक इन्द्रियों के सहारे स्वानुभव के आधार पर होते हैं वे ही सजीव अनुभूति के संस्कार कहलाते हैं। जो सुनने से, स्मृति से, या कल्पना से वस्तु का अनुभव किया जाता है वह भी सामान्य तौर पर अनुभूति तो कहलाती है, लेकिन वस्तुतः वह साक्षात् अनुभूति नहीं कही जा सकती। मैं उदाहरण देकर इसे थोड़ा स्पष्ट कर दूं। एक व्यक्ति के पैर में कांटा लगा। दूसरा व्यक्ति उसके कांटा लगने का अनुभव करता है, और कल्पना करता है, कि इस कांटा लगने से उस व्यक्ति को कितनी वेदना हो रही होगी और इसके लिये वह अपने पैर में पूर्वकाल में कभी कांटा लगने की वेदना से तुलना करता है, तो एक सीमा तक वह दूसरे पुरुष के लगे कांटे से उत्पन्न वेदना का अनुभव कर लेगा, पर स्वयं के प्रत्यक्ष अनुभव में और उस पूर्व स्मृति या कल्पना से ज्ञात अनुभव में काफी अन्तर रहेगा।

जहां इस जीवन में प्रत्यक्ष अनुभूति या संस्कार होते हैं वे जीवन के वास्तविक तथ्यों के द्योतक होते हैं। जो सुने सुनाये संस्कार होते हैं, वे जब तक प्रत्यक्ष अनुभूति में नहीं उतरते तब तक प्रत्यक्ष की अनुभूति के संस्कार नहीं बन सकते।

आप ध्यान से देखेंगे कि हमारे इस जीवन में आशा का कहां कितना स्थान है? या कतई स्थान है ही नहीं। इसी पर आज विचार करेंगे।

प्रत्यक्ष आत्मिक अनुभव प्राप्त सन्तजन जो जीवन के संस्कारित स्वरूप के साथ जीवन के प्रश्न को हल करने वाले हैं, उनका कथन है कि एकान्ततः आशा का त्याग नहीं हो सकता। अगर इन्सान

की आशाएँ जड़ मूल से नष्ट हो गईं तो उस मनुष्य का जीवन तो समाप्त प्रायः है। कवियों ने कहा है **आशा सर्वोत्तमा ज्योतिः** आशा सर्वोत्तम प्रकाश है। हिन्दी में भी कहावत है—

जब तक श्वासा तब तक आशा—इस कथन को भी आप अपेक्षा दृष्टि से हल करिये। चिन्तकों के बताये मार्ग का अनुसरण करते हुए इस प्रश्न का हल खोजिये।

आशा के सहारे बच्चे बड़े होते हैं, आशा ही के सहारे तरुण अपनी तरुणाई में जो कुछ सोचता है वह कर गुजरता है। आशा के सहारे वृद्ध अपने जीवन के शेष काल का स्वप्न देखता है।

यह तो स्पष्ट है कि आशा आशा में अन्तर है। एक आशा को हम आध्यत्मिक प्रगति का सूचक कह सकते हैं तो दूसरी आशा को सांसारिक, पौद्‌गलिक जीवन की लम्बी परम्परा का कारण कह सकते हैं। तो कवि की आशा क्या है ? वह पुकार उठता है :—

श्री जिनराज सुपास पूरो आस हमारी।
धर्म काम धन मोक्ष इत्यादिक मन वांछित सुख पूरी।

वन्धुओ, मानव चाहे मुंह से भले ही कह दे कि आशा का सर्वथा त्याग करना है। लेकिन अनुभूति के साथ और प्रत्यक्ष आन्तरिक शक्ति के साथ वह नहीं कह सकता। मस्तिष्क के संस्कारों से यदि उसका जीवन संस्कारित है तो उन संस्कारों के सहारे तो वह कह सकता है, लेकिन जीवन के संस्कारों से संस्कारित होकर और "किं जीवनं" इस प्रश्न का समाधान जिसने पा लिया है वह मानव वस्तु स्थिति को ओझल नहीं करेगा। वह सिर्फ हवाई महल नहीं वनायेगा, वह काल्पनिक आकाश में उड़ान नहीं करेगा वरन् संस्कारित जीवन के साथ जमीन पर भी चलना चाहेगा।

जीवन के वर्तमान का जो शाश्वत प्रश्न है, जीवन की वर्तमान स्थिति की जो ज्वलन्त समस्याएं हैं, उन सवको यथार्थवाद के

धरातल पर रखकर, मानव को उनका सही समाधान जब तक नहीं मिलेगा, तब तक मानव अपने जीवन की सही परिभाषा नहीं समझ पावेगा और न वह अपने वर्तमान जीवन में उस पर आचरण ही कर पावेगा। इस विषय में गहराई से चिन्तन करना होगा। इस दृष्टि से व्यक्ति के हृदय गत भावों को यदि आप आंकना चाहेंगे तो वह अपने दिल को खोल कर अपनी आन्तरिक अभिलाषा को व्यक्त कर देगा और व्यक्त करते हुए कहेगा कि अमुक-अमुक आशाएँ मुझे लगी हुई हैं। कोई कहेगा कि मुझे धन चाहिए, कोई वैभव की इच्छा प्रकट करेगा और कोई नाना प्रकार के सांसारिक पौद्गलिक सुखों की अपनी चाह, प्रकट करेगा। इस प्रकार संसार में आशाएँ इच्छाएँ अनेक प्रकार की हैं—**इच्छा बहु विहा लोए** इन्द्रिय पोषण की लालसाएँ और इच्छाएँ ही अधिकतर वह प्रकट करेगा। ऐसी तो कोई बिरल ही आत्मा होगी जो इन भौतिक पौद्गलिक इन्द्रिय जन्य पदार्थों के प्रति अपनी नितान्त अनिच्छा प्रकट करेगी, इनके प्रति उदासीन और अनाशक्त होगी और वस्तुतः आन्तरिक जीवन के लक्ष्य प्राप्ति की अभिलाषा से ओतप्रोत होगी।

तो इस तरह से यह स्पष्ट है कि अधिकतर मानवों को मुख्य तौर पर अर्थ और काम की आशा लगी रहती है। इसके बिना मानव अपने को, अपने वर्तमान जीवन को, एक दयनीय और असहाय अवस्था में अनुभव करता है।

क्या अर्थ और काम का पिंड ही जीवन है ?

इस भौतिक युग में ऐसा कोई विरला व्यक्ति ही मिलेगा जो काम और अर्थ से ऊपर उठ सका हो। इसी धरातल पर रहता हुआ इन्सान अपने एक महत्वपूर्ण भाग की अवेहेलना कर रहा है। वह अवहेलना धर्म और मोक्ष की हो रही है। क्या वर्तमान का जीवन है ? क्या अर्थ और काम का पिण्ड ही जीवन है ? इस स्थिति

को समझना आवश्यक है। अर्थ और काम का पिण्ड जीवन नहीं है। फिर इससे ऊपर के दूसरे शब्दों में कहूं तो जीवन का अर्थ प्राण है लेकिन उस प्राण को हम कब समझ पायेंगे ? तब, जबकि हम वस्तु स्थिति का ज्ञान करेंगे, उसका चिन्तन करेंगे-न आकाश में उड़ेंगे, न आदर्शवाद की कोरी बातें करेंगे। हम आध्यात्मिक जीवन की पृष्ठभूमि में चिन्तन करेंगे तव जाकर हमारे जीवन की वह संस्कारित अवस्था आयेगी तो आप आशाओं की स्थिति के साथ चिन्तन कर रहे हैं। आज काम और अर्थ की आशायें लगी हुई हैं और इसके एकान्तिक स्वरूप में मानव बह रहा है। वास्तविक संस्कारित कहलाने वाला प्राणी भी इस अर्थ और काम को सर्वथा तिरष्कृत नहीं कर सकता। यथास्थान किसी न किसी रूप में उसकी यथार्थता भी समझता है। वह चाहे हेय हो, ज्ञेय हो, अथवा उपादेय हो उसे ठीक रूप में समझता है।

आज का विचारशील मानस कुछ ऐसा बन चुका है कि कोई कोई तो अर्थ और काम को सर्वथा तिरस्कृत करता है और उस आध्यात्मिक दृष्टि से चरम छोर को ही वर्तमान में प्राण की संज्ञा देता है, लेकिन वर्तमान जीवन किस धरातल पर है। इसे वह भूल जाते हैं। यदि उसकी दृष्टि एकान्तिक वन जाती है तो वह भी दूसरे शब्दों में असंस्कारित जीवन कहा जा सकता है। वह वीतराग दृष्टि से संस्कारित जीवन नहीं है। संस्कारित जीवन का मापदण्ड देखें तो वस्तु 'स्थिति का यथार्थ रूप आ सकता है, और वही जीवन की वास्तविक आशाओं की ओर उन्मुख होगा। इस बात का संकेत प्रार्थना की कड़ियों के अन्दर थोड़ा दिया गया है। उसमें अर्थ और काम को भी लिया है लेकिन स्वतन्त्र और स्वच्छन्दता के रूप में नहीं। उसको नियन्त्रित अवस्था में लिया है इसलिए कविता में संकेत है, भगवान् आप मेरी आशा की पूर्ति करो, लेकिन मेरी आशा क्या है ? जो दुनियाँ को काम और अर्थ

की आशा है वह नहीं; मेरी आशा कुछ और ही है। उसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इत्यादि हैं। उन्होंने सबसे पहले धर्म लिया उसके बाद अर्थ और काम को लिया है, और मोक्ष को अन्त में लिया है। आप देखेंगे धर्म और मोक्ष आगे पीछे जुड़ा हुआ है। अनुसन्धान का स्वरूप जुड़ा है—प्रारम्भ में धर्म है, बीच में अर्थ और काम है और अन्त में मोक्ष है। अर्थ और काम को छोड़ा नहीं है। इसको संशोधित किया है। इसको बीच में रखकर स्वतन्त्र छूट नहीं दी है। स्वतन्त्र छूट देने से यह जीवन को आवारा बना देगा। आप देखेंगे जब एक अपराधी सरकार की ओर से पकड़ा जाता है तब वह बीच में चलता है। पीछे सिपाही आगे सिपाही और बीच में किसको रखा जाता है? अपराधी को। जो अत्यन्त उद्दण्ड और स्वच्छन्द होता है तो वह उसमें नियंत्रित पाया जाता है। वैसे ही धर्म और मोक्ष इन दो छोर से रहित जो काम और अर्थ हैं ये अत्यन्त उद्दण्ड इन्सान के समान हैं। मानव इन दोनों की अनियंत्रित स्थिति से हैवान और राक्षसी धर्म पर पहुंच जाता है चाहे वह कितना ही बड़ा अधिकारी या अर्थ सम्पन्न व्यक्ति क्यों न हो। हम पौराणिक रामायण का चिन्तन करें तो यह विषय और भी स्पष्ट हो जायेगा रावण जैसा राजा जिसके पास तीन खन्ड का आधिपत्य था, जिसका जीवन अर्थ से सम्पन्न था लेकिन उसके जीवन के आगे पीछे का छोर नहीं था। धर्म और मोक्ष की मुख्य स्थिति नहीं थी। अर्थ और काम की दिशा थी, इसी स्थिति में वह चलता था। आज इन्सान राम के स्वरूप को कुछ और दृष्टि से देखता है, और रावण के स्वरूप को कुछ और दृष्टि से देखता है। इस प्रकार की पूर्व घटित घटनाएं अनेक आ सकती हैं लेकिन वर्तमान जीवन का परिमार्जन करना है तो उन दोनों तत्त्वों पर नियन्त्रण लगाना होगा।

अर्थ, काम पर धर्म और मोक्ष का नियन्त्रण हो !

धर्म और मोक्ष इन दोनों को आगे पीछे रखता है। ये कविताएं

कवि की बनाई हुई है और कवि ने सांसारिक मनुष्यों की भावनाओं को ध्यान में रखकर धर्म और मोक्ष के साथ काम और अर्थ को भी जोड़ दिया। वीतराग देव ने कहा है—

तहारूवस्स समणस्स माहणस्स वा अन्तिए एगमवि
आयरिए धम्मियं सुवयणं सोच्चा णिसम्म तओ
जायसंवेगे जायसड्ढे तिव्वधम्माणुरागरत्ते से णं
जीवे धम्मकामए पुण्ण कामए सग्ग कामए मोक्ख कामए····

—भगवती सूत्र

—तथारूप श्रमण अर्थात् निर्ग्रन्थ और महान-अर्थात् वीतराग वाणी का अनुसरण करने वाला श्रावक उसके पास से वीतराग देव का धर्म युक्त एक भी सुवचन सुनकर वह संवेग युक्त होता है, श्रद्धा सम्पन्न होता है तो वीतराग देव के कहे हुए धर्म के प्रति तीव्र धर्मानुराग उत्पन्न होता है। और जब तीव्र अनुराग पैदा हुआ तो सम्यग् दृष्टि-हेय,ज्ञेय-उपादेय का ज्ञान भी प्राप्त हो गया, उसने आत्मा परमात्मा का रहस्य समझ लिया, यह भी समझ लिया कि पुण्य जानने योग्य है ? ग्रहण करने योग्य है ? अथवा छोड़ने योग्य है ? और उसके साथ ही काम क्या है, अर्थ क्या है ? मोक्ष क्या है ?

बन्धुओं, अब जरा इन वाक्यों के अर्थ की तरफ ध्यान दीजिए और उस दृष्टि से चिन्तन करिए। जिसमें धर्म के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा होगी, वही धर्म की कामना करता है। कामना अर्थात् एक दृष्टि से धर्म की आशा आकांक्षा करना, आशा करना, अभिलाषा करना यह सब अर्थ इसमें समाहित हैं। यह मेरा कथन नहीं है। कवि का भी वचन नहीं है स्वयं भगवान श्री वीतराग देव की स्पष्ट वाणी है। तब यह कैसे कहा जा सकता है कि सर्वथा सभी कामनाओं से मुक्त रहना चाहिए। मुक्त भी होते हैं, पर व्यवहार में, वह कौन-सी कामना से मुक्त होने की बात है ? यह समझने की आवश्यकता है। उस कामना से हमें मुक्त रहना चाहिए जो मोहजनित हों, जिसमें

एकान्त, रूप से केवल अर्थ और काम की प्राप्ति ही ध्येय रूप में हो। केवल अर्थ और काम को चरम लक्ष्य मानकर जो चलना चाहे तो वह इस तरह की कामना त्याज्य है। पर जो जीवन के ध्येय रूप में परमात्म स्वरूप की प्राप्ति को मानकर चलता है, वास्तविक संस्कारित जीवन को प्राप्त करना चाहते हैं वे इसकी कामना को इसकी आशा को या आकांक्षा को त्याग कर नहीं चल सकते।

जीवन क्या है? इस प्रश्न को हल करने के लिये वह धम्मकामये धर्म की कामना करके चलता है। धम्मकामये शब्द के साथ-साथ आगे जो शास्त्र पाठ आया है पुण्णकामये। वह पुण्य की भी कामना करता है।

कुछ तत्वज्ञ यह भी कहते हैं कि पुण्य की कामना क्यों करता है? तो वीतराग वाणी के उद्घोषक स्पष्ट कहते हैं कि चूंकि मानव आज निखालिस आत्म स्वरूप में नहीं है, इसलिए शुद्ध आत्म-स्वरूप को प्राप्त करने के लिए सहायक रूप में पुण्य की भी कामना करनी होगी। आत्मा आज के मानव के रूप में शुद्ध बुद्ध और मुक्त नहीं है। शरीर का और कर्मों का पिण्ड आज उसके साथ लगा हुआ है। उस शरीर पिण्ड से या कर्मपिण्ड से आधारित आत्मा के शुद्ध स्वरूप को प्रकट करना है तो आपको पुण्य की आशा करनी होगी। अगर आप और चिन्तन करेंगे तो ज्ञात होगा कि जिस अपने शरीर पिण्ड के साथ आत्मा है यह शरीर पिण्ड क्या है? पुण्य का फल ही तो है। तीर्थंकर नाम कर्म की प्रकृति भी पुण्य का उत्कृष्ट फल है। इस प्रकार पुण्य के फल को देखें तो मनुष्य का जन्म मिलना, आर्य क्षेत्र का मिलना, पांच इंद्रियों की निरोगता प्राप्त होना, और वीतराग देव के धर्म को श्रवण करने का अवसर मिलना आदि सब पुण्य प्रकृति रूप कर्म का फल कह सकते हैं। कामना रहित हो सकते है, पर क्या

आप बिना शरीर के द्वारा उद्यम किए, कामना रहित हो सकते हैं? नहीं। बिना शरीर के किसी सांसारिक प्राणी ने अपना पूर्ण विकास प्राप्त नहीं किया। चाहे वे तीर्थंकर ही क्यों न रहे हों। वज्रऋषभनाराच संहनन और समचतुरंस्रसंस्थान तीर्थंकरों के और अन्य पुण्यशाली जीवों के होते हैं और ये सभी पुण्य के फल कहे गये हैं। उस पुण्य प्राप्ति की स्थिति को तीर्थंकर जैसे प्रवल महापुरुष भी साधक अवस्था में नहीं छोड़ सके हैं। शास्त्रकारों ने इस पुण्य के लिए कहा है कि यह जानने योग्य तो है ही, पर साथ ही ग्रहण करने योग्य भी है और त्यागने योग्य भी है।

आप प्रश्न करेंगे कि जब पुण्य ग्रहण करने योग्य है तो मोक्ष क्या है? क्योंकि पुण्य की जब तक कामना होगी परिपूर्ण मोक्ष नहीं हो सकता है?

इस प्रश्न का समाधान शास्त्रकार अपेक्षा दृष्टि से देते हैं जीवन की तीन अवस्थाएँ मानी गई हैं। प्रारम्भिक, मध्यम और अन्तिम। बस तीन अवस्थाओं में से गुजरते हुए प्राणी कव पुण्य को तथा सभी तरह की आक्षांकों को, आशाओं को छोड़े इसका स्पष्ट उल्लेख वीतराग वाणी में है। वीतराग वाणी यथार्थ के धरातल पर चलती है, वह हवाई महल नहीं है।

प्राणी वर्तमान में साधना के धरातल पर चल रहा है। उसे अपने जीवन का निर्वाह भी करना है, अपने परिवार, समाज और देश के प्रति भी उसके कुछ कर्त्तव्य हैं उनका निर्वहन भी करना है। आज की परिस्थितियों से भी प्राणी को निपटना है। राष्ट्र में एक पवित्र वातावरण के निर्माण में भी उसे अपना योगदान देना है। अपने परिवार और समाज के प्रति भी उसके जो कर्तव्य हैं उनको पूरा करते रहना है और यह सब करते हुए अपने जीवन को भी जीना है। किन्तु यह सब कैसे? वही प्रश्न हमारे सामने वार-वार आता है "किं जीवनं" जीवन क्या है, इसे कैसे जीया जाय? कैसे इसे

समता के धरातल पर लाया जाय। समता की पराकाष्ठा तक इसे कैसे पहुंचाया जाय ?

यदि इन प्रश्नों को हल करने के लिए, अपने सभी प्रकार के कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए और जीवन की चरम परिणति, चरम ध्येय को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहना है, तो उसके लिए भी वर्तमान जीवन आवश्यक है। वर्तमान जीवन में रहते हुए, चरम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए पुण्य उपार्जन करना आवश्यक है, उसका एकान्त त्याग करने की बात करना युक्ति संगत नहीं है। यह वीतराग देव के रूप में पहुंचने के लिए संस्कारित भूमिका नहीं है। हां, साधना के चरमविन्दु पर जब प्राणी पहुंच जावे तब यह पुण्य भी त्यागने योग्य हो जावेगा। इससे पहले पुण्य छोड़ने योग्य नहीं है,पुण्य सर्वथा ज्ञेय रूप में नहीं समझा जावे, पर त्यागने योग्य भी समझा जावे। यह हमारा सूत्र है। साधना की पराकाष्ठा पर, चरम परिणति पर जव प्राणी पहुँच जावे तव सभी प्रकार के पुण्य भी त्यागने योग्य हैं। इसका ध्यान रखिए। इसको एक दृष्टान्त देकर मैं स्पष्ट कर दूँ ताकि आपकी समझ में ठीक तरह से यह तत्व आ जाय।

नाव भी आखिर छोड़नी है

किसी ने हमें यह जानकारी दी कि समुद्र के दूसरे किनारे पर एक कोई वहुत सुन्दर नगर है, वड़े भव्य भवन वहां वने हुए हैं जहां कि वहुत उच्च कोटि के मणि-माणिक्य हमें मिल सकते हैं। अव किसी जानकार से हम पूछते हैं कि समुद्र के उस किनारे पर कैसे पहुँचा जाय। जानकार व्यक्ति आपको जानकारी देता है कि देखो भाई, इस किनारे पर जहां हम हैं वहां घाट बने हुए हैं। उन घाटों पर दो प्रकार की नौकाएँ हैं। एक पत्थर की वनी हुई है और दूसरी लकड़ी की। आप यह जानकारी कर लेना कि कौन-सी नाव पत्थर

की है और कौन-सी लकड़ी की। यह जानकारी करने के वाद पत्थर की नाव को तो आप छोड़ देना, और लकड़ी की नाव ले लेना उसमें बैठकर समुद्र के परले किनारे पहुँच जाना वहां जाकर इस लकड़ी की नाव को भी छोड़ देना है, और किनारे पर उतर कर अपने गन्तव्यस्थल पर पहुँच जाना है। लेकिन एक वात है, वीच समुद्र में तरंग नहीं लाना है और कहीं उस तरंग में आप यह मत सोच बैठना कि इस लकड़ी की नाव को जव छोड़ना ही है तो अभी क्यों न छोड़ दिया जाए। किनारे तक पहुंचने तक इस नाव के बोझे को क्यों ढोया जाय। ऐसा मत करना। केवल किनारे पर पहुँचने के वाद ही इसको त्यागना है, यह ध्यान में रखने की वात है। साथ ही यह भी ध्यान में रखना है कि जिसने हमें इस किनारे पहुँचाया उस विचारी नाव को किनारे पहुँच कर कैसे छोड़ें ? यह विचार करके उससे चिपके भी नहीं रहना है। किनारे पर पहुँचते ही उसे तुरन्त छोड़ देना है और अपने लक्ष्य की तरफ वढ़ जाना है। अगर उस किनारे पहुंचकर भी उस नाव में ही बैठे रहे तो आपका जो लक्ष्य है—चरम मोक्ष की प्राप्ति उसे आप प्राप्त नहीं कर सकेंगे जैसे जिस ध्येय से आप वहां जा रहे हैं मणि माणिक्य आदि के लिये उन्हें प्राप्त नहीं कर सकेंगे। क्योंकि मणि माणिक्य या मोक्ष जीवन का परम लक्ष्य प्राप्त करना है इसलिए किनारे पर पहुँचते ही हमें नाव को छोड़ देना है। किनारे पहुंच कर लकड़ी की नाव को छोड़ देंगे तो भव्य भवन रूप मोक्ष में पहुंच जावेंगे।

तो जिस तरह से पत्थर की नाव को तो शाश्वत रूप से त्याग कर देना है और लकड़ी की नाव को ग्रहण कर लेना है। लड़की की नाव को ग्रहण करते हुए भी अन्त में उसे भी छोड़ देना है उसी तरह से हमारे जीवन के ध्येय को हमें प्राप्त करने में सहायक रूप पुण्य को तो ग्रहण करना है और डुवाने रूप पाप को पहले ही सर्वथा छोड़ देना है। ध्येय की प्राप्ति पर पहुंचने पर पुण्य को भी छोड़ कर

अपने गन्तव्य की ओर चल देना है। इससे स्पष्ट है कि पुण्य, मोक्ष प्राप्ति की साधना में सहायक रूप हैं,लक्ष्य नहीं है,वह समर्थ सहकारी कारण सामग्री के अन्तर पेटे में है, उपादान नहीं, केवल निमित्त मानकर उसे ग्रहण करना है। उपादान की प्राप्ति पर निमित्त को छोड़ देना है। पर अगर कोई पुण्य और पाप दोनों को त्याज्य मानकर पुण्य को मार्ग के बीच में ही त्याग दे तरंग आने पर तो क्या होगा ? क्या यह उस प्राणी के लिए उचित होगा ? जिस प्रकार समुद्र के बीच में नाव को नहीं त्यागा जा सकता उसी प्रकार सहायक रूप पुण्य को भी मोक्ष प्राप्ति की साधना की चरम परिणति तक नहीं त्यागा जा सकता।

अगर किसी ने पुण्य को वीच में ही छोड़ दिया जैसे कि नाव को उस आदमी ने तरंग में आकर समुद्र के वीच में त्याग दिया तो आप सोचिए कि उसकी क्या दशा होगी ? स्पष्ट है वह समुद्र के वीच में ही डूब जावेगा। तो विवेकी पुरुष ऐसा कदापि नहीं करेगा। विवेकी पुरुष तो किनारे पर पहुंचने पर ही उसे त्यागेगा। अव किनारे पर भी पहुंच गया पर वहां नौका को पकड़ कर वैठ जाए तो लक्ष्य पर नहीं पहुंच सकेगा, नाव में ही वैठा रहेगा। इस प्रकार जैसी उस नौका की स्थिति है, ठीक वैसी ही पुण्य की स्थिति समझिए। यह स्थिति जानने योग्य है,साधना की अवस्था तक ग्रहण करने योग्य है। यह इसका शास्त्रीय अर्थ है। पुण्य का कूल यानि किनारे पर पहुंचने अर्थात् १४वें गुणस्थान की अवस्था में पहुंचने पर ही त्याग करना है।

तो ये तीन अवस्थाएं वताई हैं। पत्थर की नहीं, लकड़ी की नाव में बैठना है। वीच समुद्र में उसे नहीं छोड़ना है, किनारे पर पहुंचने के बाद उसमें बैठे नहीं रहना है।

स्वर्ग की कामना का अर्थ

एक वात ज्ञानियों ने और वताई है। आप कहेंगे हमारी आत्मा

कर्मयुक्त है उसे कर्म रहित निर्मल और ब्रह्म रूप बनाने के लिए शरीर की स्थिति जो पुण्य की प्रकृति है वह साधन रूप है, यह मान लिया इस प्रकार पुण्य भी साधनरूप हैं, यह भी मान लिया। पर आगे जो ज्ञानियों ने यह कहा कि—

सग्ग कामए

यह स्वर्ग की कामना करने की बात कैसे कही जा रही है? तो मैं बताना चाहता हूं कि इसके पीछे भी एक शास्त्रीय रहस्य है जो हमें समझना है। इसमें भी स्पष्ट कहा है कि स्वर्ग की आकांक्षा मोह दशा के कारण नहीं करनी है। आशक्ति उसमें भी नहीं रखनी है। पर स्वर्ग की कामना एक तरह से इसलिए की जातीं है कि इसमें भी विश्राम लेने की कभी-कभी आवश्यकता पड़ सकती है। विश्राम स्थल के रूप में इसकी कामना की जाती है।

आप इसे इस तरह से समझ लीजिए कि एक व्यक्ति है। उसे कलकत्ता जाना है। वह कलकत्ता हवाई जहाज से उड़ कर जा रहा है। पर एक ही उड़ान में हवाई जहाज कलकत्ता नहीं जा सकता, इसके लिए वह बीच में किसी शहर के हवाई अड्डे पर थोड़े वहुत समय के लिए विश्राम हेतु रुकता है और थोड़े समय विश्राम करके फिर उड़ चलता है और कलकत्ता पहुंचता है।

पर अगर वह यात्री वीच में पड़ने वाले हवाई अड्डे पर पहुंच कर यह सोचने लगे कि यहां वड़े अच्छे विशाल भवन हैं, सभी तरह की सुख सुविधाएं, यहां वड़ा सुन्दर विश्राम गृह सरकार ने वना रखा है, तो ऐसे सुन्दर स्थान को छोड़कर अव क्यों आगे जाऊं, यहीं रह जाऊं तो अच्छा है। यह सोचकर अगर वहीं रह जाता है तो अपने गन्तव्य स्थान पर नहीं पहुँच सकेगा, पर अगर वह यह सोचे कि यह तो केवल विश्राम स्थल है, भले ही वड़े-वड़े विशाल भवन क्यों न हों, सभी तरह की सुख सुविधाएं क्यों न हों, मुझे तो अपने लक्ष्य पर पहुँचना है, कलकत्ता ही पहुँचना है,

यह सोचकर जितनी देर हवाई जहाज ने वहां विश्राम लिया उतनी देर तक ही विश्राम करके हवाई जहाज में बैठकर कलकत्ता के लिये प्रस्थान कर गया तो कलकत्ता पहुंच जावेगा। जितनी देर वह वहां रहता है उतनी देर तक उस भव्य भवन में विश्राम करता है और उसी दृष्टि से उसकी कामना भी करता है तो वह जैसे भवनों की कामना करता हुआ भी कलकत्ता ही पहुंचता है। इसी प्रकार केवल इस विश्राम की दृष्टि से शास्त्रकारों ने कहा है—"सग्ग कामए"

इसका इतना ही अर्थ समझिये कि विश्राम स्थल पर थोड़ा विश्राम ले ले, अपनी यात्रा की थकान उतार ले और फिर अपनी यात्रा अन्तिम लक्ष्य प्राप्ति हेतु शुरू कर दे।

इसी हेतु आगे कहा है—मोक्ष कामये।

मोक्ष की कामना लेकर चलता है और बीच में विश्राम कर लेता है अतः यह आकांक्षा इससे सम्बन्धित है इसलिये त्याज्य नहीं है।

अब कोई यह प्रश्न करे कि मोक्ष की आकांक्षा करने में और अर्थ और काम की आकांक्षा करने में क्या अन्तर है?

जहां मोक्ष की आकांक्षा करना प्रकाश है वहाँ अर्थ और काम की आकाँक्षा करना अन्धकार है अभिलाषा करने का तात्पर्य अराजकता की इच्छा करना नहीं है। मोक्ष की अभिलाषा रखते हुए अर्थ और काम में उलझ जाता है तो वह अपने गन्तव्य स्थल तक कैसे पहुंचेगा? अपने चरम लक्ष्य को कैसे प्राप्त करेगा?

अब कोई आगे चलकर कहे कि यह क्या आकांक्षा वाकांक्षा लगा रखी हैं। हमें कोई किसी तरह की आकांक्षा नहीं रखनी है। तो यह भी कसे हो सकता है? एक व्यक्ति जयपुर जैसे शहर में इधर उधर परिभ्रमण कर रहा है। इधर-उधर पथभ्रष्ट-सा लक्ष्य-हीन होकर भटकता फिर रहा है, उसे कोई पूछता है कि भाई इधर-उधर क्यों भटक रहे हो, यह सारा श्रम क्यों कर रहे हो?

कहाँ जाना चाहते हो ? अगर इसके उत्तर में वह यह कहे कि यह तो मुझे मालूम नहीं। तो उसे आप क्या कहेंगे कि यह तो पागल मालूम होता है।

वैसे ही इस जीवन में रहते हुए आपसे अगर पूछा जावे कि आपका लक्ष्य क्या है, आप कहां जाना चाहते हैं, क्या करना चाहते हैं तो आप तत्काल उत्तर देंगे कि हम अपने जीवन को इस तरह से संस्कारित करना चाहते हैं कि जिससे 'किं जीवनम्' जीवन क्या है इसके हल को ढूँढ सकें और ढूँढ कर उस पर आचरण करते हुए उसके अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर सकें। यह भी आशा है इसको दूसरे शब्दों में कामना कह सकते हैं। जैसा कि तीर्थंकर भगवान के लिए **नमोत्थुणं** में पाठ आया है **सम्पविउओ कामाणं** यानि मोक्ष को प्राप्ति की कामना रखने वाले ऐसे तीर्थंकर भगवान के लिए भी कामना का विशेषण लगा है तो नीचे के साधकों के लिए कोई आपत्ति नहीं है।

पर, इसके विपरीत आप यह कह बैठें कि हमारा तो कोई ध्येय नहीं है, तो क्या विना ध्येय के आप भी पागल की तरह यह सव क्रियाएँ कर रहे हैं ? इस तरह से विना ध्येय की क्रियाएँ करने से क्या लाभ होगा ?

प्राणी अगर निश्चित ध्येय के साथ चलता है और अपना एक व्यवस्थित कार्यक्रम बनाता है तो मोक्ष की भी वह अभिलाषा रख सकता है। आसक्ति के साथ वह अर्थ और काम से ही बंधा नहीं रहता, मोह-जनित लगाव उसका उससे नहीं रहता। वह बीच के समय में कदाचित् वह काम और अर्थ को भी आकांक्षा करता है, तो परिवार के प्रति अपने कर्तव्य निर्वहन आदि के लिये करता है, और मोक्ष और धर्म के अन्तरपुट में उनको रखकर चलता है। गृहस्थ अवस्था में रहते हुए भी मर्यादित जीवन, सुसंस्कारित जीवन विता

रहा है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सही रूप में उपासना आकांक्षा करते हुए अन्तर मन में धर्म और मोक्ष का पुट देता हुआ, सुसंस्कारित जीवन बिता रहा है, तो उसकी यह प्रार्थना सार्थक है। जैसा मैं पूर्व में उच्चारण कर आया हूं कि—"धर्म काम धन मोक्ष इत्यादि मन वांछित सुख पूरो।"

आज की स्थिति पर जब हम विचार करते हैं तो लगता है—आज दुनियाँ में व्यक्ति की स्थिति एक मरीज की स्थिति जैसी बन रही है। इसको एक उदाहरण से स्पष्ट कर लें एक रोगी अत्यन्त पीड़ित था। अन्दर में दाह ज्वर लग रहा था और ऊपर से भी चमड़ी जल रही थी। ऐसा मरीज एक विचक्षण वैद्य के पास पहुँचा। उसने अपनी सारी शारीरिक स्थिति रखते हुये कहा—वैद्यराज जी; ऐसी दवा दीजिये, जिससे मेरा अन्दर का दाह भी समाप्त हो जाय और बाहर की जलन भी समाप्त हो जाय। वैद्यराज जी बड़े अनुभवी थे। उन्होंने चार पुड़ियायें बनाई और उन चार पुड़ियाओं में दो सुबह शाम लेने के लिये कहा—भाई ये दो पुड़िया तो शहद में मिलाकर सुबह शाम में ले लेना और ये दो पुड़ियायें जिसको पानी में घोलकर सुबह भी लेप लगायें और शाम को भी लेप कर लेना। इन चारों पुड़ियाओं को लेने से तुम्हारी बाह्य और आभ्यन्तर पीड़ा समाप्त हो जायेगी। मरीज को विश्वास था। उसने चार पुड़िया ग्रहण की और घर पर पहुंचा। घर पहुंचकर शहद लेने की दृष्टि से वह अन्दर गया और शहद लाया, किन्तु जो पुड़िया शहद में लेने की थी उसको उसने पानी में घोलकर लेप कर लिया और जो पुड़िया पानी में घोलकर लेप करने की थी उसको उसने शहद में मिलाकर पेट में ले लिया। चमड़ी पर लेप करने की और शहद में अन्दर में लेने की पुड़िया को वह भूल गया और विपरीत दशाओं में पुड़िया को ग्रहण किया। इससे जो अन्दर की जलन थी वह और भी बढ़ गई और जो

बाहर की ताप की स्थिति थी वह भी अत्यधिक उग्र हो गई। उसने सोचा शायद एक पुड़िया से ऐसा हो गया है दूसरी पुड़िया और ले लूँ तो इसी तरह शाम को भी विपरीत दशा में पुड़ियायें ले ली— जो खाने की थी उसका लेप कर लिया और जो लेप करने की थी उसको शहद में मिलाकर चाट लिया। इससे इतनी बीमारी बढ़ गई कि रात्रि शान्ति में नहीं बीती। उसने सोचा रात्रि में मैं मनुष्य लोक में हूं या नहीं हूं इतनी वेदना उसको सताने लगी। प्रातःकाल वह फिर वैद्यराज जी के पास पहुंचा और अपना हाल कहने लगा। वैद्यराज जी बड़े अनुभवी थे। बीमारी का हाल सुनकर और सारी स्थिति का अध्ययन कर पूछा—कौन कौनसी पुड़िया किस किस प्रकार ली है? तो उसने बताया कि अमुक अमुक प्रकार ली है। वैद्यराज जी समझ गये कि मरीज ने उल्टी पुड़ियायें ले ली हैं। जो पुड़िया खाने की थी उसका चमड़ी पर लेप कर लिया और जो लेप करने की थी उसको शहद में डालकर खा लिया इसलिये तुम्हारा रोग बढ़ गया है। वैद्यराज जी ने दुबारा उसे चार पुड़ियायें दी और ठीक प्रकार समझा दिया जब वह दुबारा दवा को उचित विधि से यथास्थान लेता है तो उसका रोग मिट जाता है। यह एक रूपक है। आज भी इसी प्रकार प्राणी यतियों और साधुओं के पास अपने जीवन के प्रश्न को हल करने के लिये—धार्मिक जीवन बिताने के लिये, पहुँचता है। सन्त महात्मा भी यही कहते हैं कि दो पुड़िया को अन्दर में लो और दो पुड़ियाओं का बाहर में लेप करो। लेकिन लेने वालें क्या कर रहे हैं? उनको उल्टी-सीधी ले लेते हैं। ये चार पुड़ियायें हमारे पास कौन सी है? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की पुड़ियायें हैं। अब इन चार पुड़ियाओं में से दो पुड़िया जो धर्म और मोक्ष की है वह अन्दर में लो, शहद के साथ जिससे सारा जीवन पवित्र बने और संस्कारित जीवन बने और
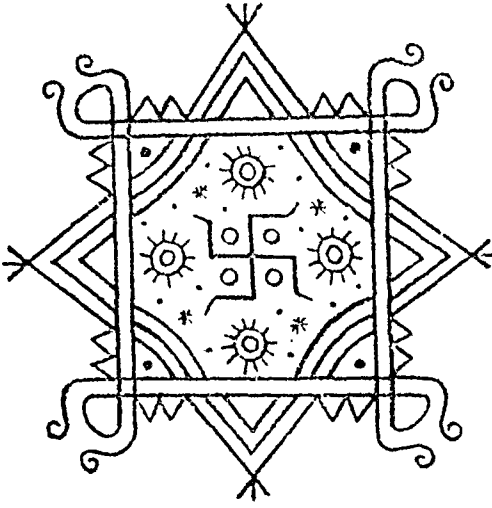
जीवन को सद्संस्कार और सद्विचार

से

पावन करने वाली संत वाणी

सबके लिए सुखद हो !

□

पूनमचंद बोथरा (कपड़े के व्यापारी)

पथारवाडी

(जि. कछार, आसाम)

संस्कारित जीवन बनकर जीवन क्या है इस प्रश्न का हल हो सके। बाकी की जो दो पुडियाएँ हैं—अर्थ और काम की, इनको ऊपर लेप के रूप में लें। परन्तु आज की दुनियां उल्टी चल रही है। काम और अर्थ की पुडियाओं को अन्दर लिया जा रहा है, उसके अन्दर ग्रस्त होते जा रहे हैं और धर्म और मोक्ष की पुडियाओं का लेप लगाया जा रहा है। धार्मिक कहलाने वाले पुरुष भी विचारक वर्ग के लिए आलोचना का विषय बन रहे हैं। इसीलिए आज धर्म भी आलोचना का विषय बन जाता है। आज बड़े आदमी चोर बाजारी करते हैं, चोरी से अपना व्यापार करते हैं। ऊपर से धार्मिक बनते हैं अन्तर में अधार्मिक भावनायें होती हैं। इसलिये हमें यथार्थता की भूमि में जीवन का चिन्तन करना है और जीवन के प्रश्न को हल करना है। कि वास्तव में जीवन क्या, है? यह प्रश्न भी तभी हल होगा जब आप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की वास्तविक विधि को समझेंगे।

लालभवन

२३ जुलाई १९७२

सुयाणं धम्माणं ओगिण्हणयाए उवधारणयाए अब्भुट्ठेयव्वं भवइ। — स्थानांग सूत्र

सुने हुए धर्म को ग्रहण करने, उस पर आचरण करने को तत्पर रहना चाहिए।

---

५ | बंधुत्व भावना

जय जय जगत शिरोमणि, हूँ सेवक नै तू धणी।
अब तौंसु गाढी बणी, प्रभू आशा पूरो हम तणी।
मुझ मेहर करो चन्द्र प्रभु, जगजीवन अन्तर्यामी।
भव दुख हरो सुनिए अर्ज हमारी, ओ त्रिभुवन स्वामी॥

वन्धुओ, यह चन्द्र प्रभु भगवान की प्रार्थना है। आपके सामने प्रार्थना का जो शाब्दिक परिवर्तन आ रहा है,वह कविता का भी परिवर्तन है। लेकिन प्रभु के गुणों का,भगवान की शक्ति का, भगवान के पवित्र स्वरूप का परिवर्तन नहीं है। परमात्मा के चरणों में हम कैसे भी शब्दों से प्रार्थना करें,प्रार्थना की पंक्तियां हिन्दी कविता के रूप में हों, संस्कृत भाषा में हों, प्राकृत, इंग्लिश या अन्य उर्दू फारसी आदि किसी भी भाषा में क्यों न हों, इस भाषा के आवरण के पोछे प्रभु को विस्मरण नहीं करना चाहिए। भाषा के पर्दे को हटा कर परमात्मा के निखालिस स्वरूप को देखने की आवश्यकता है।

जय भगवान की या भक्त की ?

प्रभु के लिए विशेषण दिया गया है कि "जय जय जगत शिरोमणि", हे जगत् के शिरोमणि, यहाँ जगत को एक शरीर माना गया है,उसके सिर की कल्पना की गई और उसके ऊपर मणि के रूप में प्रभु को याद किया गया है। जो जगत् के सिरमोर हैं, जगत के स्वामी हैं उस स्वामी की जय चाही गई है। लेकिन सोचने का विषय है कि क्या कवि प्रभु की जय बोले तब उनकी जय होगी और प्रभु की जय न बोले तो भगवान की जय नहीं होगी। इस कल्पना से यदि कोई सोचता है तो यह सोचना ठीक नहीं है ? भगवान की तो सदा जय है। आपके जय बोलने से उनकी जय होगी और आपके जय नहीं बोलने से उनकी जय नहीं होगी यह बात नहीं है। कवि या भक्त भगवान की जय बोलता है तो वह भगवान की नहीं, बल्कि अपनी जय चाहता है। कभी-कभी हिन्दुस्तान की जनता भारत की जय बोलती है। भारत क्या है ? भारत देश है या भूमण्डल है या भारत के अन्दर रहने वाली जनता है। आप सोचेंगे कि भारत की जय के पीछे भारत सरकार की जय नहीं है लेकिन भारत के अन्दर रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति की जय है। जैसे भारत की जय में भारतवासियों की जय आती है, और पाकिस्तान की जय बोलने से पाकिस्तानवासियों की जय मानी जाती है ऐसे ही अमेरिका, इंग्लैंड आदि विभिन्न देशों की जय विभिन्न सरकारों की जय, वहाँ की जनता की जय समझी जाती है। आप सोचिए यह तो एक एक देश की सरकार की जय है, लेकिन भगवान के राज्य में कौन सा देश है। हिन्दुस्तान है या पाकिस्तान, अमेरिका, इंग्लैंड, रूस, [illegible] क्या है, भगवान के राज्य में समग्र देश है। [illegible] समग्र के अन्दर बैठे हुए हैं। [illegible] है। एक एक देश की, [illegible]

होती है और अन्य देश की पराजय इसमें चाही जाती है, लेकिन भगवान की जय बोलने से समग्र विश्व की जय चाहे और सारे संसार के अन्दर रहने वाले प्राणियों की जय समझें, तभी वह भगवान की जय बोल सकता है। जो व्यक्ति भगवान की जय बोल करके यदि यह चाहे कि प्रभु, मैं आपकी जय बोल रहा हूं, मैं आपका भक्त हूं, आप मेहरबानी करना, मैं पड़ौसी के साथ लड़ रहा हूं इसलिए आप मददगार हो करके पड़ौसी की पराजय करना और मेरी जय करना। इस भावना से अगर जय बोल रहे हैं तो आपने प्रभु के स्वरूप को नहीं समझा है और आपने सांसा रक तौर पर भगवान को अपने साथ घसीट लिया है।

आज के अधिकांश मनुष्य प्रभु को एक तरह का खिलौना समझ रहे हैं। थोड़ी सी कठिन परिस्थितियां सामने आई और झट से भगवान को याद कर लिया। जरा कभी किसी व्यक्ति से टकराहट हो गई, लड़ने लगे कि झट से भगवान को पुकारने लगे—भगवान आइए, आइए, यह मेरे से दुश्मनी कर रहा है, इसको खत्म करिए और कदाचित् दूसरा भी भक्त हो और भगवान को वह भी पुकारे कि भगवान आइए,मुझसे लड़ने वाले को खत्म करिए तो कहिए क्या होगा? दोनों भगवान के भक्त और भगवान रह गया एक, अगर भगवान आए तो किसकी मदद करे। इस तरह से भगवान को घसीट करके मनुष्य राग द्वेष की परिणति में डाल देता है और भगवान का दुरुपयोग करने को तैयार होता है जैसा कि उनका चित्त, मानस वन गया है। वह अपने घर के अन्दर वस्तुओं के टुकड़े करता है,मकान का विभाग करता है और अन्य चीजों को वांटता है, जमीन के साथ साथ मोहल्ले और गांव के टुकड़े करता है और इसमें भी वह संतोप नहीं पाता तो वह भगवान को भी टुकड़ों में वांटना चाहता है। भगवान को भगवान के सही स्वरूप में न समझ करके उनको टुकड़े-टुकड़े के अन्दर वांट कर भगवान को एक पक्ष में लाकर खड़ा

कर देता है वह भक्त नहीं है,वह वस्तुतः भगवान की जय बोलने का अधिकारी नहीं है। भगवान की जय बोलने का अधिकारी वही है कि जिसने समग्र संसार को भगवान के राज्य में माना है और समग्र संसार में रहने वाले प्राणियों के प्रति वह अपना आत्मीय भाव रखता है और उनके साथ भी यथाशक्ति, यथासम्भव समभाव रखने की चेष्टा करता है, और एक परिवार के रूप में सारे संसार को देखने का प्रयास करता है, वही व्यक्ति भगवान की जय बोलने का सच्चा अधिकारी है।

बन्धुओ, यह जो प्रार्थना का प्रसंग चल रहा है, वह हमारे मस्तिष्क के विकारों को सुलझाने के लिए है। प्रार्थना के अन्दर कभी कभी कवि भावावेश में आकरके कविता के प्रसंग से वह अपनी लघुता व्यक्त कर देता है। जैसे कि इसमें कहा है—

जय जय जगत् शिरोमणि, हूँ सेवक नै तूँ धणी।
अब तोसूँ गाढ़ी बणी, प्रभु आशा पूरो हम तणी।
मुझ म्हेर करो, चन्द्र प्रभु जय जीवन अंतरजामी।
भव दुख हरो, सुणिए अर्ज हमारी त्रिभुवन स्वामी।

कवि ने प्रभु के ऊपर उत्तरदायित्व डाल दिया है कि भगवन ! आप सिरमौर हैं, मैं आपकी जय बोल रहा हूं। आप स्वामी हैं और मैं सेवक हूं। इसलिए सेवक का उत्तरदायित्व आप पर है। बहुत मजबूरी के साथ आ गया हूं। सेवक की आशा की पूर्ति करना यह आपका काम है और भवसागर से पार करना भी आप के अधीन हैं। इस कविता के माध्यम से भक्त ने सब कुछ अपना उत्तरदायित्व परमात्मा के चरणों में रख दिया है। लेकिन आज का युग जैसा सोचने का अभ्यासी है वैसे ही उसकी कल्पना भी दौड़ती है। तो उस दृष्टि से यह सोचना होगा कि क्या कोई भी भगवान की सेवा में बैठकर, भगवान के नाम की कुछ कड़ियों का उच्चारण करके भगवान के नाम की माला फेर करके निश्चित होकर बैठ जावे,

भगवान मेरी सब कामनाएं पूरी कर देंगे, तो मैं समझता हूं कि यह बहुत ही सस्ता रास्ता मान लिया गया है। हाथ हिलाने की आवश्यकता नहीं है, पुरुषार्थ करने की जरूरत नहीं, इधर उधर कुछ भी प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है, इस भावना से यदि इन्सान चलेगा तो वह न प्रभु के स्वरूप को ठीक से समझ पाएगा और न अपने जीवन की समस्याओं को ही हल कर पाएगा। इस प्रकार सोचने से मनुष्य का जीवन परतन्त्र बन जाता है और परतन्त्रता के अन्दर वह अपने जीवन के स्वतंत्ररूप को भूल जाता है। यहां इस प्रार्थना की कड़ियों में भी आपको चिन्तन करना है। भगवान को हम स्वामी मान रहे हैं और सेवक की स्थिति से चिंतन कर रहे हैं, इसका इतना ही तात्पर्य लेना है कि, प्रभु, मैं इस वक्त कर्मों से युक्त हूं, कर्मों से आबद्ध हूं, कर्मों की जंजीरों से जकड़ा हुआ हूं, मैं संसार के जेलखाने का कैदी हूं, इस वक्त मैं आपकी तरह से स्वतन्त्र नहीं हूं, आप सदा के लिए स्वतन्त्र बन चुके हैं, इसलिए मैं इस परतन्त्रता के बन्धनों से मुक्त होकर, इस संसार के जेलखाने से निकल कर आपकी बराबरी के यानी आपके तुल्य शक्ति को सम्पादित करूं और अपने जीवन के चरम विकास को प्राप्त करूं। इस भावना से मैं आपके चरणों में इच्छा व्यक्त करता हूं कि मैं आपका सेवक हूँ और इस भव सन्तति से पार होना चाहता हूं। मैं यह नहीं चाहता हूं कि मैं सेवक हूं तो सदा के लिए सेवक ही रहूं। मैं कभी स्वामी नहीं बन सकूंगा, इस भावना का सोचना मनुष्य के लिए हितावह नहीं है। यह भावना मनुष्य के मन में बन जावे कि स्वामी सदा स्वामी ही रहेगा और सेवक सदा सेवक ही रहेगा तो सेवक के लिए कभी भी उन्नति होने का प्रसंग नहीं होगा जब कि उनके मस्तिष्क में यह भाव आवें कि मैं भी स्वामी बन सकता हूँ, बशर्ते कि अपने प्रयत्नों से, अपने जीवन को ठीक तरह से समझ करके उसी ढंग का पुरुपार्थ करूं जिससे कि

स्वामी बना जाय। इस प्रकार मस्तिष्क ऐसी उच्चभावना का बने और इस भावना का संस्कार यदि मनुष्य के मस्तिष्क में हो तो मनुष्य उन्नति पथ पर आगे बढ़ सकता है, किन्तु जब ऐसे संस्कार नहीं रहते हैं तो वह हतोत्साहित होकर मानसिक घुटन का अनुभव करता हुआ सदा के लिए मन मसोस कर बैठा रहेगा और कभी भी उन्नति के शिखर पर नहीं पहुंच पाएगा।

अर्थवादी दृष्टि :

शास्त्रकारों ने यह बतलाया है कि तू भले ही अपनी लघुता व्यक्त कर ले। भले ही सेवक बन जाय लेकिन विश्वास इस प्रकार का दृढ़ रख कि मैं भगवान के तुल्य बन सकता हूं। मेरे अन्दर भी वह भावना है, मेरे अन्दर भी वह शक्ति है, और मैं भी एक दिन उस पद के योग्य बन सकता हूँ। हाँ, इस प्रकार का उत्साह जब मनुष्य के मस्तिष्क में आता है तो पुरुषार्थ के क्षेत्र में अपनी गति तीव्र कर देता है और जब सच्चे पुरुषार्थ की ऐसी स्थिति बने तभी जीवन का सही निर्माण हो सकता है, लेकिन वह जीवन के सही रूप को समझे और सही दिशा का अनुसरण करे तभी वह आगे बढ़ सकता है। लेकिन जब जीवन क्या है इसका भी उसको पता नहीं। किं जीवनम् ? इस प्रश्न का हल उसके पास में नहीं है तो कैसे वह विकास करेगा, किस स्थिति में वह आगे बढ़ेगा ? आज मैं आपके सामने जो प्रश्न उपस्थित कर रहा हूं कि जीवन क्या है इस विषय में आपको, हमको और सबको सोचना है। यह विषय क्या है इसके सोचने के विषय में जब चलते हैं तो आज कुछ मनुष्य जिनका दृष्टिकोण संसार के पदार्थों की ओर लगा हुआ है वह प्रश्न कर बैठता है, वह कहता है—

किं आवश्यकता जीवनस्य ?
'अर्थाधिकार-कर्तव्यानां त्वस्त्येव'

"आप जीवन के प्रश्न को हल करना चाहते हैं लेकिन जीवन की आवश्यकता ही क्या है ? जीवन की कुछ आवश्यकता हो तो हम समझें। आज तो आवश्यकता अर्थ, अधिकार और कर्तव्य की है। अर्थ के बिना संसार नहीं चल सकता है। आप अर्थ की बात करिये कि अर्थ को कैसे बढ़ायें, धन की बात करिये, पैसे की बात करिये, व्यापारिक बात करिये। इसके विषय में हमको समझाइये कि कैसे अधिक से अधिक धनवान बनें। इसकी आवश्यकता को तो हम महसूस करते हैं लेकिन इसको छोड़कर जीवन का प्रश्न सामने ला रहे हैं वह हमारी समझ में नहीं आता है। जीवन का यह व्यर्थ का प्रश्न क्यों सामने आ रहा है ?" ये विचार प्रश्न उन व्यक्तियों के हो सकते हैं जिनकी बुद्धि का विकास आगे नहीं हो रहा है, जिन्होंने धन को ही जीवन समझ लिया है, जिन्होंने पैसे को ही सब कुछ समझ लिया है, और पैसे को जिन्होंने भगवान मानकर अपने आपको पैसे का सेवक समझ लिया है, ऐसे व्यक्तियों के जीवन का वर्णन स्वर्गीय आचार्य श्री कविता में इस प्रकार किया करते थे कि—

पैसा मेरा परमेसर, लुगाई मेरी गुरु,
छोराछोरी सालिगराम सेवा यारी करूँ।

वे व्यक्ति समझते हैं कि इस संसार में यदि कोई सार तत्व है तो वह पैसा ही है, पैसा ही मेरा परमेश्वर है। पैसे से बढ़कर और कोई परमेश्वर नाम का तत्व नहीं है, पैसे से बढ़कर कोई जीवन नहीं है, पैसा ही सब कुछ है। साथ ही अन्य किसी गुरु की भी आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि वह हमारे घर में ही हैं जिनको जग की साक्षी से पत्नी बनाया है वही गुरु है, वह जो कुछ कह दे उसके अनुसार चलना है, और छोरा-छोरी बाल-बच्चे सालिगराम हैं इनकी सेवा करना है।" इस प्रकार का दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्ति क्या यह प्रश्न उठायेंगे ? कि हमारा जीवन क्या है ? और

जीवन की आवश्यकता क्या है ? अर्थ, अधिकार और कर्तव्य की आवश्यकता तो हम महसूस करते हैं, लेकिन जीवन की आवश्यकता महसूस नहीं करते हैं,क्योंकि पैसा मिल जाता है,और पैसे के लिए यदि जीवन की भी कुर्बानी करनी पड़े तो हम तैयार हैं,अर्थ के लिए जीवन को होम देने के लिए हम तैयार हैं। जीवन को समझने की आवश्यकता हमें नहीं है। हम को तो पैसे को समझने की आवश्यकता है। आज उनका दृष्टिकोण अर्थ प्रधान बना हुआ है, सत्ता व सम्पत्ति को ही वे सब कुछ समझ कर चल रहे हैं। यह कथन अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा कि सत्ता और सम्पत्ति के पीछे अगर जीवन होम दिया जाय, जीवन में खून की नदियां वहानी पड़ें तो वे वहाने को तैयार हैं। जीवन की उन्हें परवाह नहीं है। वे सत्ता और सम्पत्ति की परवाह करते हैं। सत्ता और सम्पत्ति का जो यह लक्ष्य बना हुआ है, क्या यह उस लोकोक्ति के तुल्य नहीं है।

इसी दृष्टिकोण के कारण आज संसार के अन्दर त्राहि-त्राहि हो रही है। आज मनुष्य के जीवन को जीवन नहीं समझा जा रहा है। उसे खिलौना समझा जा रहा है चलते हुए मनुष्य का खून कर दिया जाता है, मनुष्य का कत्लेआम होता है। केवल इस सत्ता और सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए अधिकांश देश वड़ी से वड़ी सेना तैयार करके, बड़े से वड़े शस्त्रों का आविष्कार करके, अणु वम फेंक कर एक दूसरे को नष्ट करने के प्रयास में लगे हुए हैं, इस प्रकार की वीभत्स भावना संसार में न मालुम कौन सा तांडव नृत्य उपस्थित करेगी इसका कुछ कहा नहीं जा सकता। आज कुछ ऐसे ही परिणाम दृष्टिगोचर हो रहे हैं। वड़े बड़े शस्त्रों का परीक्षण हो रहा है। इसके पीछे सत्ता और सम्पत्ति का भूत सवार है, जीवन को उन्होंने गौण कर दिया है, चाहे आज अमेरिका को देखिये, चाहे चीन को देखिये और चाहे दूसरे देशों को देखिये, वे चाहते हैं कि हमारे पास जनसंख्या बहुत है,कहीं पर लड़ाई छि

तो जमीन रहने को मिल जाय, उनकी जनसंख्या भी युद्ध आदि के प्रसंग से कम होजाय तो उन्हें परवाह नहीं, लेकिन सत्ता और सम्पत्ति चाहिए। इस दृष्टिकोण को लेकर जो मनुष्य चलते हैं वे क्या जीवन के प्रश्न को समझने की कोशिश करेंगे ? जीवन के महत्व का अंकन करेंगे ? जो जीवन को जीवन नहीं समझते हैं। जीवन को मिट्टी का ढेला मात्र समझते हैं वे जीवन की परिभाषा नहीं समझ सकते हैं। इधर जो ऊपर से आध्यात्मिक जीवन की बातें करते हैं पर अन्दर में उनके भी ऐसे ही विचार रहे तो कह सकते हैं कि वे भी जीवन की वास्तविक परिभाषा को नहीं समझ सकेंगे, पर यादरखिए यदि वे जीवन के स्वरूप को ही नहीं समझ पायेंगे तो सत्ता और सम्पत्ति को भी स्थायी रूप से नहीं पा सकेंगे। क्योंकि कहा गया है—जीवन के बिना अर्थ व्यर्थ है, सत्ता व्यर्थ है, और जीवन के बिना कर्तव्य भी क्या हो सकता है। अतः जीवन का स्वरूप समझना नितान्त आवश्यक बन जाता है।

धन, यहीं धरा रहेगा

सिकन्दर ने अपने जीवन में सत्ता और सम्पत्ति को बटोरने के लिये मनमाने कर्तव्य बनाये और लूट-पाट की। जनता को बहुत पीड़ा पहुँचाई। फिर भी सत्ता और सम्पत्ति से अपने आप को मृत्यु के मुँह से बचा नहीं पाया। मृत्यु के समय वह हाय-हाय करके चिल्लाने लगा। कि कोई मुझे मृत्यु से बचाने वाला मिल जाय तो जितनी सम्पत्ति मैंने एकत्रित की है वह मैं देने के लिए तैयार हूं, लेकिन कोई भी व्यक्ति उसको मृत्यु से नहीं बचा सका। उसको बचाने वाला कोई नहीं मिला। तो आप सोचिये कि जीवन के स्वरूप को उसने नहीं समझा इसलिए दुनिया को तबाह करके जब गया तो खाली हाथ ही गया। तब उसने यह कहावत चरितार्थ कर दी और उसने अपने साथियों से कहा कि जब जनाज़ा निकालो तो आप मेरे दोनों हाथ

वाहर रखना, ताकि दुनिया देखे कि सिकन्दर सब कुछ लेकर आया था लेकिन जब जा रहा है तो खाली हाथ वह जा रहा है, हाथ फैलाकर जा रहा है। यह उसके जीवन से शिक्षा की स्थिति आज प्रत्येक मनुष्य के लिए लागू होती है। मनुष्य जब माता की कुक्षी से बाहर आता है तो किस हालत में आता है? उसकी मुट्ठी बन्द होती है। मुट्ठी वन्द क्या है, यह कुदरत की रचना है, लेकिन शिक्षा के दृष्टिकोण से यह समझना है कि मुट्ठी में कुछ लेकर आया है, पूर्व जन्म में पुण्यवानी अर्जित करके मुट्ठी बाँध कर आया, और इस जन्म में धीरे-धीरे इस पुण्यवानी को खर्च करके मानो मुट्ठी खोल कर हाथ फैलाकर जा रहा है अर्थात् जब मृत्यु का प्रसंग आता है, मरने की घड़ी आती है तो खाली हाथ जाता है। यानी पूर्व जन्म की पुण्यवानी लाया था वह खर्च करके यहां जीवन से हाथ धोकर जा रहा है। आज किसके ऊपर मनुष्य अभिमान करता है। आजकल जो बड़े बड़े किले दिख रहे हैं—उनको आज किस दृष्टि से देखा जा रहा है। उस समय जब कि आचार्य श्री आगरा पधारे थे, जंगल निपटने की दृष्टि से लाल किले के पास से जा रहे थे उनके साथ में जो आदमी मार्ग दर्शक था, कहने लगा आचार्य श्री, यह लाल किला कहलाता है। इसके तीन परकोटे हैं और दो खाइयाँ हैं। तो आचार्य श्री का चिन्तन मुखरित हो उठा। वे कहने लगे जिन्होंने तीन परकोटे और दो खाइयाँ बनाई उस समय उन्होंने यही सोचा होगा कि इन किलों के अन्दर मेरी आल-औलाद, मेरे पीछे की सन्तति बहुत सुरक्षित रहेगी, उनके लिए उस समय उन्होंने मन-माने अन्याय और अत्याचार किये। अब आप देखिये कि किले में कौन सुरक्षित रहा? कहाँ उनकी आल-औलाद है? सत्ता और सम्पत्ति सब कुछ मानने वाले वे स्वयं दुनियां में न रहे, उनकी सन्तान नहीं रही। यह किला आज किसके हाथ में चला गया। आज उस किले का कोई महत्व नहीं है और आज के तो शस्त्र भी

ही वन गये हैं। चाहे कितना ही सुन्दर और ऊँचा किला हो लेकिन हवाई जहाज के जरिये एक बम उस पर फेंक दिया जाए तो वह भस्मीभूत हो जाता है।

आज इन किलों की दशा क्या है? मनुष्य उस समय कितना दानव वन कर सत्ता और सम्पत्ति के लिए अपने जीवन को न्योछावर करने चला, लेकिन उसने इस प्रश्न को हल नहीं किया कि मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है? उन्होंने जीवन की आवश्यकता को महसूस नहीं की। जब ऐसे-ऐसे सत्ताधीशों की भो यह स्थिति है तो आज के मनुष्य की स्थिति उनके सन्मुख क्या है? आज भी करोड़ों की सम्पत्ति है, अरबों-खरबों को संपत्ति है, इससे भी क्या होने वाला है। इससे जोवन का क्या बनने वाला है? यदि जीवन को नहीं समझा गया तो इस अरबों-खरबों की सम्पत्ति से कुछ होने वाला नहों है। यह सम्पत्ति व्यर्थ है। जिस समय आँख बन्द होगी उस समय अरबों की सम्पत्ति भी पास में पड़ी रह जाएगी वह पुनः जीवन नहीं दे सकती। इसी दृष्टि से मनुष्य के लिए कहा गया है कि—

'असंखयं जीविय मा पमायए'

जीवन असंस्कृत है प्रमाद मत करो और जोवन के सच्चे स्वरूप को समझो। क्योंकि वास्तविक जीवन के विना सभी प्रपंच व्यर्थ हैं। जीवन है तो सब कुछ है, जीवन नहीं है तो कुछ भी नहीं है। इस दृष्टि से आपको अपने जोवन का प्रश्न हल करने के लिए अपने आपको देखना पड़ेगा और अपने जीवन की कड़ियों को उस परिभापा के साथ जोड़ना पड़ेगा। अपने जीवन की गुत्थियों को सुलझाना है तो जीवन में आने वालों प्रसंगों पर भी दृष्टिपात करना होगा। यह जीवन परिवार समाज व राष्ट्र से सम्बन्धित है अतः तत्सम्बन्धी कर्तव्य भी हमारे सामने है आज परिवार समाज व राष्ट्र की क्या-क्या प्रमुख समस्याएं हे। उन समस्याओं का

हल भी यथास्थान लेना होगा जहाँ परिवार है वहाँ परिवार की दृष्टि से सोचना होगा और जहाँ समाज, राष्ट्र आदि की दृष्टि है वहाँ उस दृष्टि से सोचने की आवश्यकता है, तथा जहाँ जीवन की समस्या है वहाँ जीवन के धरातल पर हो सोचा जा सकता है। इसी तरह सामाजिक क्षेत्र के भी हमारे कुछ कर्तव्य हैं। समाज में रहने वाले व्यक्तियों के साथ हमारे कैसे व्यवहार हो, उनके प्रत्येक सामाजिक कार्यों में हम किस रूप में उपस्थित हैं क्योंकि व्यक्ति-व्यक्ति से भिन्न समाज नाम का कोई तत्त्व नहीं है अतः प्रति व्यक्ति से भ्रातृत्व भावना का व्यवहार करने का प्रयास किया जाए तो स्व पर जीवन का सही रूप हमारे सामने झलकने लगेगा। भले ही वह सामाजिक सदस्य किसी स्थिति में क्यों न हो, चाहे वह आर्थिक दृष्टि से कितना ही कमजोर क्यों न हो। दुनियां की दृष्टि से भले ही वह गरीव हो पर हमारे सम्मुख पैसे की अपेक्षा उसके जीवन की विशेष कीमत है, इस प्रकार अर्थ दृष्टि को गोणकर जीवन का अंकन करके यदि समाज के छोटे से छोटे व्यक्ति से आप प्रेम करते हैं, छोटे से छोटे व्यक्ति को भाई समझते हैं तो वही वास्तव में जीवन है। लेकिन आज होता क्या है? समाज के अन्दर भी प्रायः वही हिटलरशाही चल रही है। छोटे व्यक्तियों का तिरस्कार करते हैं, पैसे के जोम में, पैसे के आवेश में दूसरे व्यक्ति को कुछ भी नहीं समझते। मैं सोचता हूं कि आज सामाजिक स्थिति में भी मनुष्य को कीमत पैसे से आंकी जा रही है। आज जिसके पास अधिक पैसा है वह समझता है कि मैं ही सब कुछ हूं, वह फूला नहीं समाता हैं प्रसंग आने पर तारीफ भी उसकी ही होगी कि वाह साहव वड़े पैसे वाले हैं किन्तु वह पैसे वाला कम पैसे वाले की कदर करने लग जाय तो आप चिन्तन कीजिये उसकी प्रतिष्ठा बढ़ जाएगी? जन मानस बोल उठेगा इतना पैसे वाला होकर भी बिना पैसे वाले की कदर कर रहे हैं। आज

अगर हमें अपने जीवन की समस्याओं को हल करने के साथ साथ सामाजिक समस्याओं को भी हल करना है तो जीवन के वास्तविक स्वरूप को सामने रख कर ही हल करना होगा। यदि आप अपने यहां किसी भाई को काम पर रखते हैं तो उसकी तरफ भी ध्यान देना होगा कि यह भी मेरे लिए सहायक है। उसके जीवन की कीमत करके, उसको सम्मान देकर, भाई के नाते समान स्थिति में देखने का अभ्यास करना होगा यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि यदि किसी से काम लेना है तो बड़े प्रेम के साथ, स्नेह के साथ लिया जा सकता है तिरस्कार के साथ नहीं। अगर भेद-भाव करे तो उसका परिणाम कभो अच्छा नहीं आ सकता। इसी प्रसंग में मुझे बीकानेर के एक श्रावक मालूजी की बात याद आती है जिनके पास पैसा तो बहुत था लेकिन वे पैसे के पीछे अपने जीवन को नहीं भूल गए थे। वे बीकानेर के अन्दर रहते और जब कभी संतों का प्रसंग होता, चाहे छोटे संत हों या बड़े हों लेकिन नियमित रूप से व्याख्यान में भी उपस्थित होते। वड़े संतों के व्याख्यान में जायं तो समझना चाहिए कि इसमें कोई विशेषता की वात नहीं हैं लेकिन छोटे संतों के व्याख्यान में भी प्रतिदिन उपस्थित होना और वड़े ध्यान से व्याख्यान श्रवण करना इन छोटे संतों को इज्जत देना है। और इसके साथ साथ व्याख्यान श्रवण करने के पश्चात् जव कि व्याख्यान समाप्ति पर सब लोग उठ जाते हैं तो अधिकांशतः यह देखा जाता है कि अपने समान पंक्ति वाले व्यक्ति से मिलते हैं। उन समान पंक्ति वालों में भी वात होती हैं, जयजिनेन्द्र साहव, मुजरा साहब, पधारिए साहव। यह किन से करेंगे, समान पंक्ति वाले से। जो पैसे वाले हैं वे पैसे वालों से ही मिलेंगे।

माया से माया मिले फर फर लम्बे हाथ।
तुलसीदास गरीब की कोई ना पूछे वात।

यह गरीवी भी क्या जीवन के अन्दर एक ग्रह के रूप में आगई

है। इस ग्रह को हटाने के लिए भारत की प्रधानमन्त्री इन्दिराजी कुछ ना·ा लगा रही हैं कि गरीवी हटाओ। लेकिन गरीवी हटाने के लिए नारों से काम चलने वाला नहीं है। इस गरीबी के कारण को समझ कर इसको दूर करने के लिए जव तक मानव जीवन का मूल्यांकन नहीं होगा तव तक गरीवी का प्रश्न हल होना दु:सार सा लग रहा है। इन्सान का जीवन क्या है, जिन्दगी क्या है, इसको समझे बिना गरीवी का प्रश्न हल नहीं होगा। इस प्रश्न को हल करने के लिए जव तक राजनैतिक नेताओं के मस्तिष्क में, समाज के नेताओं के मस्तिष्क में और समाज के वच्चे-वच्चे के मस्तिष्क में यह विचार नहीं आयेगा कि समाज के धरातल पर रहने वाला प्रत्येक मानव अपने अपने जीवन का महत्व अकन करे और मैं भी उनके समान हूँ अत: उसके अनुकूल व्यवहार करूँ तव तक यह प्रश्न हल होने वाला नहीं है। आज की स्थिति तो यह वन रही है कि जहां कोई वड़ा आदमी सामने आया उसको ही महत्व दिया जाता है। बड़ा समझने का भी एक मापदण्ड वन गया है। या तो कोई अधिक पैसे वाला हुआ तो उसको महत्व देंगे, या फिर कोई ऊपरी पोषाकी सज्जा के साथ आ गया तो, भले ही उसका आचरण कैसा भी रहा हो लेकिन स्वच्छ सुन्दर पोषाक पहन कर सभा में आकर बैठ गया तो कहेंगे पधारिए साहव! इधर पधारिए। वह पीछे बैठेगा तो नहीं बैठने देगें, उसको आगे बैठायेंगे। पूछेंगें आप कहाँ से पधारे हैं। आगे बढ़कर उससे हाथ मिलायेंगे। किन्तु यदि उसकी जगह कोई सामान्य वेशभूषा वाला व्यक्ति सादी पोषाक में आ जाता ह तो उसकी ओर सम्भवत: कम ध्यान देंगे और अगर पास में बैठेगा तो उसको कोहनिया मार कर पीछे करने की को·शश करेंगे कि कहां आगे आ गया है।

एक प्रेरक आदर्श

बन्धुओ, मैं मालू जी की वात कह रहा था। मालूजी सभा में

बैठते तो धनवानों की ओर विशेष ध्यान नहीं देते। उनकी दृष्टि में गरीब साधर्मी नजर आ जाता तो उससे जाकर मिलते। जो आर्थिक दृष्टि से कमजोर होता उनकी तरफ बढ़ते, मुजरा करते, उनसे हाथ मिलाते और उनके कन्धे पर हाथ धर देते। वह तो फूला नहीं समाता – अरे सेठ साहब, इतने बड़े आदमी और इतना धर्म करने वाले आज मेरे ऊपर इतने मेहरबान हो गए कि कन्धे पर हाथ धर दिया, इस प्रकार वह फूला नहीं समाता है। वे उनको एकान्त में ले जाते और पूछते कि क्या हाल है। घर के सदस्यों की क्या दशा है। आपके जीवन की क्या परिस्थिति है। जब वे अन्तर्मन से एकान्त में पूछते तो वह दिल खोल कर सेठ साहब के सामने अपनी परिस्थिति रखता कि सेठ साहब यह दशा है। एक कमाने वाला हूँ और दस खानेवाले हैं। सामाजिक कुरीतियों ने चूर-चूर कर दिया है, मैं पिसा जा रहा हूँ। समाज के अन्दर कोई सुनने वाला नहीं है। पैसे वालों के सामने आदमी के जीवन की कीमत नहीं है। मनुष्य मनुष्य को भिन्न समझता है। ऐसी दुर्दशा हो रही है क्या सुनावें। आप आज मेरे बराबरी के बन कर समान स्तर पर पूछ रहे हैं यह आपकी महानता है, पैसेवाले होकर आप मेरे जीवन की चिन्ता कर रहे हैं इसलिए मैंने भी आपके सामने सारी बातें खोल कर रख दी हैं। वे उसको सान्त्वना देते कि ये दिन और यह दशा भी रहने वाली नहीं है। मेरे घर पर बहुत छाछ होती है, गाय भैंसे बहुत हैं तुम अपने बच्चों को छाछ लेने के लिए भेज दिया करो। तो वह कहता—सेठ साहब इतने रोज तो संकोच के कारण नहीं भेजा, गरीब आदमी ठहरे, कहीं बड़े घर में छाछ के लिए भी तिरस्कार हो जाय। धनी लोग गरीबों को छाछ देने में भी आनाकानी करेगें और देंगे भी तो पानी मिला कर दे देंगे। अब तो छाछ का प्रसंग भी नहीं रहा, छाछ आज तो देखने को भी कई स्थानों पर कम ही मिलती है लेकिन प्राचीन काल के अन्दर छाछ मुफ्त में बांटी जाती थी। आज

भारत की वह दशा नहीं रही कि हर जगह छाछ मिल सके, लेकिन उस समय यह बात नहीं थी। वे कहते सेठ साहब, अब तक संकोच वश नहीं भेजा अब आपकी मेहरबानी हो गई है तो भेज देंगे। जब बच्चे को छाछ लेने भेजते तो सेठ साहब नौकर चाकरों के भरोसे नहीं रहते। वह गरीब घर का व्यक्ति आया है, नौकर उनको गरीब घर का समझ छाछ देने में आनाकानी नहीं कर दे, इसलिए स्वयं बैठते, उसे अपना भाई समझते, बल्कि अपने बराबर तुल्य समझ कर स्वयं छाछ अपने हाथ से देते। एक बर्तन लेकर बैठ जाते और उसके साथ ही पैसों की, रुपयों की थैली लेकर भी बैठते और जब कोई बच्चा छाछ लेने के लिए आता तो उसके हाथ से लोटा ले लेते और उस बच्चे को किसी बहाने से अन्दर भेज देते कि देखो अमुक क्या कर रहा है। और उसके बाद थैली में से मुट्ठी भर कर रुपये उसमें डाल देते और फिर छाछ भर देते और कहते कि ले जाओ। यह तुम अपने माता पिता को देना, अन्य को नहीं। वह बच्चा जाकर लोटा अपने माता पिता को देता। वे छाछ खाली करते जब उसमें रुपये निकलते तो वे भागे-भागे जाते, सेठ साहब, सेठ साहब, आपके रुपये इसमें आ गए। सेठ साहब कहते—बोलो मत, ये मेरे नहीं तुम्हारे ही है। यह मेरे साथ चलने वाला नहीं है, तुम भी मेरे साधर्मी भाई हो। इस प्रकार उन्होंने कइयों का उद्धार कर दिया, कइयों को बराबरी का बना दिया। इस प्रकार का उनका जीवन चल रहा था लेकिन आज का जीवन कुछ और है। कोई गरीब आ जावे, गरीब तो दूर कोई साधु सन्त भी आ जावे तो भी शायद सेठ साहब को ध्यान देने की फुरसत नहीं मिले। या तो नीचे से ही आवाज दे देंगे कि महाराज आए हैं और उसमें भी महाराज की अलग-अलग कीमत करेंगे। एक सेठजी के दुकान और मकान एक ही जगह थे। ऊपर मकान और नीचे दुकान थी। वे नीचे ही बैठे रहा करते थे। जब सन्त आते तो वे देखते कि

अमुक सन्त आए हैं तो दासी को नीचे से ही संकेत कर देते, उसको पहले से ही संकेत समझा रखे थे, नीचे से आवाज देते, बाई महाराज आए हैं रोटी देना, फुलका बैराना। वह भी समझती थी कि सेठ साहब ने फुलका बैराने के लिए कहा है अर्थात् सेठ जी जब एक वचन में फुलका बैराने के लिये कहते तो वह एक ही फुलका देती और जब वे बहुवचन में फुलका बैराने के लिये कहते तो व; दो या दो से अधिक फुलके देती। इस प्रकार उनकी मानस की यह भेद पूर्ण स्थिति थी। चाहे घर में कितनी ही सामग्री हो, एक क्या कितने ही फुलके बैरा दे तो भी कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है लेकिन फिर भी इस प्रकार की स्थिति इस युग में चल रही है। आज जो साधु सन्तों के साथ भी ऐसा वर्ताव कर सकते हैं वे अपने सहधर्मी भाइयों के साथ क्या वर्ताव करेंगे। आज नौकर चाकरों के साथ क्या बर्ताव किया जा रहा है। मैं सुनता हूँ, नौकर चाकरों के साथ समता का वर्ताव नहीं होता। वे काम बहुत करते हैं लेकिन फिर भी उनके साथ भेदभाव का बर्ताव होता है, उनके जीवन के साथ खिलवाड़ किया जाता है जिससे उनके मन के अन्दर विद्रोह की भावना पैदा होती है और जिसके भयंकर परिणाम समाज के सामने आ रहे हैं।

वन्धुओ, यह स्थिति क्या है, क्या इससे जीवन का प्रश्न हल हो सकता है। आज भी इस धरातल पर इस प्रकार की चीजें चल रही हैं। मालूजी और दूसरे भी ऐसे सेठ साहूकार हुए हैं जो जीवन में बहुत कुछ ऊँचे उठे हैं और जिन्होंने समाज का और अपना उत्थान किया है। आचार्य श्री श्रीलालजी महाराज साहब के सामने ऐसा प्रसंग आया था। मालूजी आचार्यश्री के पास बैठे हुए थे, उस समय ऐसा जिक्र चल गया कि मालूजी आप तो पैसेवाले हैं फिर भी आपके सामने पैसे की इतनी कीमत नहीं, इन्सानियत को आप अधिक महत्व दे रहे हैं और जीवन का सही अंकन कर रहे हैं।

आचार्यश्री ने कहा कि मालूजी आप तो इस जीवन के अन्दर ही जीवन को सार्थक कर रहें हैं। आप पैसे के पीछे नहीं बह रहे हैं, आप सम्पत्ति का सदुपयोग करके जीवन की कीमत कर रहे हैं। इस प्रकार जब आचार्यश्री ने कहा तो मालूजी ने उत्तर दिया कि अन्नदाता, मैं क्या कर रहा हूं, मैं क्या करने में समर्थ हूं मेरे पास तो कचरा बढ़ रहा है उसको साफ कर रहा हूं। जितना कचरा कम हो जाय उतना ही अच्छा है। वे सम्पत्ति को क्या समझते थे, कचरा! जो सम्पत्ति को कचरा समझ कर चलता है वह कभी भी जीवन के साथ खिलवाड़ नहीं करेगा। इसलिए ज्ञानीजन कहते हैं कि अरे भाई कुछ धर्म की स्थिति को भी ध्यान में रखो। मालूजी जैसे व्यक्ति समाज के अन्दर आदर्श रूप में होते हैं जिन्होंने जीवन को पैसे से ऊँचा समझा है, जीवन को सत्ता, सम्पत्ति और अधिकारों से ऊपर समझा है। वे जीवन की वास्तविक परिभाषा को अच्छी तरह समझ चुके हैं।

विवेक से काम लो

यहाँ एक प्रसंग याद आ गया। एक श्रावक जो भक्त था, भक्त का मतलब यह है कि वह अपने आप में निष्ठा रखता था, जीवन की कीमत को समझता था और ब्लैक मार्केट आदि के कार्य न करके सीधा व्यवसाय करता था अतः अर्थ की दृष्टि से वह बहुत साधारण था। शहर के बाहर एक बगीचे में झोंपड़ी बनाकर रहता था। संयोग-वश उसकी पत्नी का देहान्त हो गया वह अपने पीछे एक पुत्री छोड़ गई। वह पुत्री जब बड़ी होने लगी तो उसे ही संस्कार दिये, और जीवन की कला सिखाई गई। उसने पुत्री से कहा कि हमारा जीवन एक महत्वपूर्ण जीवन है। यह जीवन संसार के विषय भोग के लिए नहीं है, पशु-पक्षियों की तरह से बिताने के लिए नहीं है। हमें साधना करते हुए चलते रहना है आदि। किन्तु समय की स्थिति

उम्र बढ़ती है तो शरीर का भी विकास होता है। जब कन्या बड़ी हुई तो भक्त सोचने लगा कि किसके यहां इसका विवाह किया जाय। किसी के सामने वह विवाह का प्रस्ताव लेकर जाता है, तो पहले पैसे की बात होती है। पैसा कहाँ से लाये ? और कहां उसका विवाह करे ? आखिर में उसने यही तय किया कि मेरी पुत्री को मैंने इतने सारे संस्कार दिये हैं तो बिना विवाह के वह ब्रह्मचारिणी का जीवन क्यों न बिताये। अगर उसका यह निर्णय हो जाय तो मेरा जीवन धन्य होगा। मैं इस पुत्री के लिए कोई सौदेबाजी नहीं करूंगा। जैसी स्थिति है उस स्थिति में कोई ईमानदारी से मेरे जीवन का अंकन करेगा। यदि किसी ने मेरे जीवन को नहीं समझा तो मुझे परवाह नहीं। पिता यह सोचकर निश्चिन्त हो गया। एक रोज एक करोड़पति सेठ घूमने की दृष्टि से बगीचे की ओर को निकला। उसका स्वभाव सुन्दर था उसके जीवन की स्थिति बड़ी पवित्र थी। वह यह जानता था "यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति।" उसने उस कन्या को देखा वह उस कन्या के गुणों का अंकन करता है और उसके जीवन की कीमत करता है। यह सोचकर कि इस झोंपड़ी में कैसी स्थिति है। वह घूमना छोड़कर झोंपड़ी के पास पहुंचा। उसने सारी परिस्थिति जानी, और परिस्थिति समझने के पश्चात् उसके मन में आया कि इसके पिता के पास एक समय के भोजन का भी संग्रह नहीं है लेकिन इसका पिता जीवन के मूल्यांकन को लेकर के चल रहा है और यह सत्ता और सम्पत्ति के पीछे दीवाना नहीं है। मैं संपदा का मालिक हूं। मेरी दृष्टि में अगर जीवन नहीं रहा और केवल संपदा रही तो मेरा जीवन भी बेकार है। इसलिए मुझे तो जीवन की कीमत करना है इस प्रकार विचार किया और मन में दृढ़ विश्वास कर लिया कि इस गुणवान कन्या का सम्बन्ध मेरे पुत्र के साथ हो जाय तो सब प्रकार की सुनिधि प्राप्त हो जाय। इस प्रकार की भावना लेकर अपने स्थान पर पहुंचा और मुनीम से कहा कि उस झोंपड़ी में रहने वाले

के पास जाकर मेरे पुत्र के लिये उसकी कन्या की मांगणी करो। इधर सेठ साहब शाम को घर गये तो सेठानी से बात की कि आज घूमने के लिए गया तो एक सुशिक्षित कन्या के दर्शन किये वह कन्या कन्या-जीवन में शिखर रूप है और अपने पुत्र के लिए उपयुक्त है। इसलिए उस कन्या को इस घर में लाया जाय ताकि इस घर की शोभा बढ़ जाय। सेठानी ने कहा कि सेठ साहब आप किस कन्या को लाना चाहते हैं, वह कहां है? सेठजी ने कहा कि उसका पिता शहर के बाहर बगीचे में झोंपड़ी लगाकर रहता है। वह गरीब व्यक्ति है? सेठानी ने कहा—मेरे पुत्र का सम्बन्ध उसके साथ करना चाहते हैं? क्या संसार में और करोड़पति नहीं हैं और अन्य कन्याएँ नहीं हैं? कुछ तो सोचना विचारना चाहिए। कन्या चाहे कैसी मिले इसकी परवाह नहीं, लेकिन सोना चाहिए। यह भावना किस की थी? सेठानी की। लेकिन उसके मन में न तो जाति का अंकन चल रहा था और न पैसे का। उसकी दृष्टि सीधी जीवन की तरफ थी। सेठ ने कहा कि मुझे पैसा नहीं चाहिए, मुझे जीवन चाहिए, उन्होंने खूब जोर दिया और कहा कि तुम चाहे कुछ करो मैं अपने पुत्र की शादी इसी कन्या से करूंगा। आखिर सेठानी की चली नहीं। उन्होंने जब मुनीम को भेजा तो उस कन्या के पिता ने कहा कि देखिये—आजकल धनवानों और गरीबों की जाति अलग-अलग बनती जा रही है। गरीबों की जाति अलग और धनवानों की जाति अलग। सेठ साहब मेरी कन्या की मँगनी कर रहे हैं, लेकिन मेरे पास देने को कुछ नहीं है, मिजमानी करने के लिए न होटल हैं न दूसरी चीजें। यहां जयपुर में बरात आये तो होटलों में ठहराई जाती है चाहे कितना ही खर्च लगे और जीमने के साथ-साथ बारातियों की कई तरह से और किस प्रकार सार-सम्भाल की जाती है। एक रोज थोड़ा सा मैंने सुना था उस सुनने से मुझे पता चला है कि पैसे वालों के हाल किस प्रकार से चलते हैं, मगर गरीबों के यहां विवाह के समय

उम्र बढ़ती है तो शरीर का भी विकास होता है। जब कन्या बड़ी हुई तो भक्त सोचने लगा कि किसके यहां इसका विवाह किया जाय। किसी के सामने वह विवाह का प्रस्ताव लेकर जाता है, तो पहले पैसे की बात होती है। पैसा कहाँ से लाये ? और कहां उसका विवाह करे ? आखिर में उसने यही तय किया कि मेरी पुत्री को मैंने इतने सारे संस्कार दिये हैं तो बिना विवाह के वह ब्रह्मचारिणी का जीवन क्यों न बिताये। अगर उसका यह निर्णय हो जाय तो मेरा जीवन धन्य होगा। मैं इस पुत्री के लिए कोई सौदेबाजी नहीं करूंगा। जैसी स्थिति है उस स्थिति में कोई ईमानदारी से मेरे जीवन का अंकन करेगा। यदि किसी ने मेरे जीवन को नहीं समझा तो मुझे परवाह नहीं। पिता यह सोचकर निश्चिन्त हो गया। एक रोज एक करोड़पति सेठ घूमने की दृष्टि से बगीचे की ओर को निकला। उसका स्वभाव सुन्दर था उसके जीवन की स्थिति बड़ी पवित्र थी। वह यह जानता था "यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति।" उसने उस कन्या को देखा वह उस कन्या के गुणों का अंकन करता है और उसके जीवन की कीमत करता है। यह सोचकर कि इस झोंपड़ी में कैसी स्थिति है। वह घूमना छोड़कर झोंपड़ी के पास पहुंचा। उसने सारी परिस्थिति जानी, और परिस्थिति समझने के पश्चात् उसके मन में आया कि इसके पिता के पास एक समय के भोजन का भी संग्रह नहीं है लेकिन इसका पिता जीवन के मूल्यांकन को लेकर के चल रहा है और यह सत्ता और सम्पत्ति के पीछे दीवाना नहीं है। मैं संपदा का मालिक हूं। मेरी दृष्टि में अगर जीवन नहीं रहा और केवल संपदा रही तो मेरा जीवन भी बेकार है। इसलिए मुझे तो जीवन की कीमत करना है इस प्रकार विचार किया और मन में दृढ़ विश्वास कर लिया कि इस गुणवान कन्या का सम्बन्ध मेरे पुत्र के साथ हो जाय तो सब प्रकार की सुनिधि प्राप्त हो जाय। इस प्रकार की भावना लेकर अपने स्थान पर पहुंचा और मुनीम से कहा कि उस झोंपड़ी में रहने वाले

के पास जाकर मेरे पुत्र के लिये उसकी कन्या की मांगणी करो। इधर सेठ साहब शाम को घर गये तो सेठानी से बात को कि आज घूमने के लिए गया तो एक सुशिक्षित कन्या के दर्शन किये वह कन्या कन्या-जीवन में शिखर रूप है और अपने पुत्र के लिए उपयुक्त है। इसलिए उस कन्या को इस घर में लाया जाय ताकि इस घर की शोभा वढ़ जाय। सेठानी ने कहा कि सेठ साहब आप किस कन्या को लाना चाहते हैं, वह कहां है ? सेठजी ने कहा कि उसका पिता शहर के बाहर बगीचे में झोंपड़ी लगाकर रहता है। वह गरीब व्यक्ति है ? सेठानी ने कहा—मेरे पुत्र का सम्बन्ध उसके साथ करना चाहते हैं ? क्या संसार में और करोड़पति नहीं हैं और अन्य कन्याएँ नहीं हैं ? कुछ तो सोचना विचारना चाहिए। कन्या चाहे कैसी मिले इसकी परवाह नहीं, लेकिन सोना चाहिए। यह भावना किस की थी ? सेठानी की। लेकिन उसके मन में न तो जाति का अंकन चल रहा था और न पैसे का। उसकी दृष्टि सीधी जीवन की तरफ थी। सेठ ने कहा कि मुझे पैसा नहीं चाहिए, मुझे जीवन चाहिए, उन्होंने खूब जोर दिया और कहा कि तुम चाहे कुछ करो मैं अपने पुत्र की शादी इसी कन्या से करूंगा। आखिर सेठानी की चली नहीं। उन्होंने जब मुनीम को भेजा तो उस कन्या के पिता ने कहा कि देखिये—आजकल धनवानों और गरीबों की जाति अलग-अलग बनती जा रही है। गरीबों की जाति अलग और धनवानों की जाति अलग। सेठ साहब मेरी कन्या की मँगनी कर रहे हैं, लेकिन मेरे पास देने को कुछ नहीं है, मिजमानी करने के लिए न होटल हैं न दूसरी चीजें। यहां जयपुर में बरात आये तो होटलों में ठहराई जाती है चाहे कितना ही खर्च लगे और जीमने के साथ-साथ बारातियों की कई तरह से और किस प्रकार सार-सम्भाल की जाती है। एक रोज थोड़ा सा मैंने सुना था उस सुनने से मुझे पता चला है कि पैसे वालों के हाल किस प्रकार से चलते हैं, मगर गरीबों के यहां विवाह के समय

क्या हालत होगी ? ऐसी हालत में प्रश्न उत्पन्न होता है। "गरीबी हटाओ"। मगर यदि हमारा जीवन उस नारे के अनुरूप नहीं है तो गरीबी हटाने का अवसर जल्दी आना कठिन लगता है। तो उस कन्या के पिता ने भी यही कहा कि मेरे पास तो कुंकू कन्या हाजिर है, मेरे पास देने को एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। साथ ही उसने यह भी कहा कि बरात लेकर आते हैं तो जिमाने के लिए भी मेरे पास कुछ नहीं है। मैं तो पान सुपारी भी नहीं दे सकता हूं। आप इस तरह की स्थिति से गरीब कन्या के साथ विवाह के लिए आयें तो खुशी है। सेठ ने उसी ढंग से विवाह किया। कुछ भी लेने की परवाह नहीं रखी। सेठ ने जीवन की कीमत की थी, पैसे की कीमत नहीं की। आज इस प्रकार का कोई भाई है जो जीवन की कीमत करे और पैसे की नहीं करे ? बन्धुओं, ऐसी दशा के अन्दर हम जीवन का अंकन कहां करते हैं ? कैसी समाज की स्थिति बन रही है, आज गुणवान कन्याओं की स्थिति कैसी हो रही है। इसका गहराई से चिंतन करना है। उस गरीब कन्या के घर से जाने का जब प्रसंग आया तो पिता ने विदाई देते हुए पुत्री को शिक्षा दी कि पुत्री मेरे पास पैसा तो नहीं है, लेकिन मैं गुणों की शिक्षा देना चाहता हूं। जब सुसराल जाय तो वहां जाने के बाद अपनी इस अवस्था को भूलना मत। सुसराल में मेरी संपदा को पास में रखना। जितने भी उस घर में मनुष्य हों, चाहे नौकर चाकर हो उनके साथ में भाईचारे का बर्ताव करना, पैसे के मद में किसी का तिरस्कार मत करना, पैसे के पीछे उनकी जिन्दगी की कीमत मत करना लेकिन जीवन के पीछे उनकी कीमत करना। उस कन्या ने हाथ जोड़कर कहा,' 'पिता श्री, आपके वचन शिरोधार्य हैं। मुझे और संपदा नहीं चाहिए, आपकी सुशिक्षा रूपी संपदा ही चाहिए। उसने कहा, "पुत्री तू वहां जा रही है। वे करोड़पति लोग हैं उनकी दशा को देखकर वहां पर जो गरीव लोग आयें तो तिरस्कार मत करना, मीठे वचन वोलना, जीवन में अपने

चरित्र को ऊँचा रखना और मनुष्य को मनुष्य समझकर आत्मकल्याण का रास्ता प्रस्तुत करना। जब इस शिक्षा को लेकर वह करोड़पति के घर में पहुंची तो पैसे का अभिमान उसके मस्तिष्क में नहीं आया। वह पैसे की दृष्टि से इन्सान की कीमत नहीं करती—वह सारे जीवन की दृष्टि से उनका मूल्यांकन करने लगी, और आनन्द के साथ सेवा करते करते ऐसा कुछ बर्ताव किया कि उस घर में जितने भी लोग थे उनको अपने वश में कर लिया। अड़ोस-पड़ौस के अन्दर रहने वाले जितने प्राणी थे सब के सब आकर्षित हो गये। धीरे-धीरे उसकी कीर्ति फैलने लगी कि गरीब घराने की कन्या करोड़पति के घर में पहुंचकर किस प्रकार से मनुष्य जीवन का अंकन करती है। तारीफ के पुल इधर-उधर से आने लगे। सास-सुसर अत्यंत प्रसन्न थे। गरीबी और अमीरी का भेद मिटाते हुए उसने अपने जीवन के सौरभ से आस-पास के अधिकांश व्यक्तियों को आकर्षित कर लिया। इन सब बातों को लेकर एक रोज उसकी सासू जी प्रसन्न होकर उससे कहने लगी कि पुत्री ये चाबियां अब तुम सम्हालो। उस वक्त उस पुत्र वधू ने कहा—सासूजीराज,चाबियां तो आपके पास ही रखें। मुझे तो इन चाबियों की आवश्यकता नहीं, जीवन की चाबियां चाहिए। आजकल की पुत्रबधुएं यह बात बोलेगीं कि सासूजी, अब आपका बुढ़ापा हो गया है अब तिजोरियों की चाबी न रखें। खोलकर उसको सोंप देंगी तो ठीक और नहीं सोंपेंगी तो लड़ाई झगड़ा होगा। आज अधिकांश घरों की यही स्थिति है। सास-वहू लड़ रहे हैं, बाप-बेटे लड़ रहे हैं, भाई भाई लड़ रहे हैं। वहीं सासू तिजोरियों की चाबियां सोंपने लगीं तो उसने नहीं लीं। सासू जी ने आग्रह किया कि मैं वृद्ध हो गई हूं और आगे के जीवन के लिए कुछ करूं मुझे तो तुम ऐसी शिक्षा दो कि मैं जीवन की कीमत करूं और जीवन क्या है इसको समझने का प्रयास करूं। यह सासू जी बोलने लगीं। उसने कहा कि तिजौरी की चाबियां तो आप मुझे सौंप रही हैं लेकिन मेरी

जो बचपन की आदत है उस आदत के साथ मैं बरताव करूंगी वह शायद आपको पसन्द आयेगा या नहीं आयेगा। क्या बरताव है तुम्हारा ? सासू जी ने पूछा ! बरताव क्या है, यही है कि मैं अपने पिता के यहां बचपन से बड़ी हुई हूँ, तब तक मैंने अतिथि-सत्कार को नहीं भुलाया है। कोई भी व्यक्ति आया है उसका स्वागत के साथ में सत्कार किया है। दान देने की आदत भी है। जब आप मुझे तिजौरी की चाबियां सौंप रही हैं, और घर का अधिकार सम्हला रही हैं तो कोई व्यक्ति आयेगा तो मेरा हाथ उदार रहेगा। उसमें आपको नागवार तो नहीं गुजरेगा ? सासू जी को यह ख्याल आया और कहा कि दान देने लगी तो सारी सम्पदा चली जायेगी। उसने कहा कि सासूजीराज, आपने जीवन को नहीं समझा है और अपनी भौतिक सम्पदा को ही सब कुछ समझा है। सम्पदा यदि लुटा भी दूंगी तो मेरा जीवन तो रहेगा, मुझे जीवन चाहिए सम्पदा नहीं चाहिए। सेठानी कहने लगी नहीं-नहीं मैं इन बातों में आने वाली नहीं हूं। इसके लिए थोड़े ही चाबियां सम्हला रही हूं। किसी को देना मत, शर्माशर्मी उसने चाबियां सम्हाल लीं, लेकिन वह एक अच्छी चीज नहीं थी।

एक रोज कुछ ऐसा अवसर बना कि सासूजी कमरे में बैठी हुई अपने घर का कार्य कर रही थी। एक भिक्षुक साधू की पोशाक में भिक्षा के लिये उपस्थित हुआ। उस भिक्षुक की दृष्टि उस मकान पर गई। करोड़पति का घर था। सासू का कथन भी उसके ध्यान में था लेकिन पिछले जीवन में उसने जो शिक्षा ली वह महत्वपूर्ण शिक्षा थी जो कि उसने अपने पिता के यहां प्राप्त की थी। उसके अनुसार उससे रहा नहीं गया, आखिर अन्दर जो मिष्ठान्न आदि सामग्री थी वह पर्याप्त मात्रा में लेकर साधू को दे दी। वह यह जानती थी कि साधू को जीने के लिए थोड़ा भोजन चाहिए और मर्यादित वस्त्र चाहिए। साधू पैसा लेता है तो वह साधु नहीं है

आचार्य प्रवर के चरणों में
हम कोटि-कोटि वन्दन करते !

ताराचन्द गैलड़ा ट्रस्ट

नं० ५ नागेश्वरराव रोड

मद्रास-१७

परम श्रद्धेय

आचार्य श्री नानालालजी म० सा०

की

पीयूष-वर्षिणी प्रवचन गंगा

जन-मन के पातक धो डाले !

चम्पालाल सुभाषचन्द कोठारी

C/o ग्रेट मेडिसिन स्टोर

बुलढाना (महाराष्ट्र)

क्योंकि पैसा हराम सिखाता है। इसलिए पैसा कौड़ी तो नही दिया, अत: साधू ने वह अन्न ग्रहण कर लिया। उसकी पोशाक तो साधुकी थी किन्तु उसके मन और नेत्र चंचल थे, तदनुसार वह उस हवेली को देखने लगा। वह जब इधर-उधर देख रहा था तो उस पुत्रवधू से रहा नहीं गया और उस पुत्रवधू ने स्पष्ट रूप से साधू को संकेत में कहा कि साधूजी तुम्हारा एक गया, तो साधू भी थोड़ा-सा बुद्धिमान था, उसने देखा कि मुझे संकेत से शिक्षा दी गई है तो उसने भी वापिस उत्तर दिया कि तुम्हारे दो ही गए। तो उस पुत्रवधू ने पुन: उत्तर दिया कि तुम्हारे तो तीनों ही चले गए। आपस में संकेतों में ही उनकी बातें हुई। सासू जी कमरे में बैठी हुई थी। पुत्रवधू को दान देते हुए देख लिया था आगबबूला हो रही थी कि मैंने पहले ही बहू को कह दिया था, कि दान नहीं देना और आज इसने इस साधूड़े को दान दे दिया और दान देने के साथ ही साथ संकेत में गुप्त बातें भी कर रही है, हाय-हाय यह तो बहुत बड़ा अकाज हो गया। मैंने पतिदेव को पहले ही कहा था कि ऐसी गरीब घराने की छोकरी नहीं लाना चाहिए किन्तु पतिदेव नहीं माने और ऐसी छोकरी को ले आए। सेठानी का मन और मस्तिष्क सारा का सारा दूसरे रूप में घूम गया। वह सोचने लगी कि अब क्या करना चाहिए, ऐसी पुत्रवधु के विना तो मेरा पुत्र बिना शादी के ही रहता तो कोई बात नहीं थी। ऐसी बहू को मैं कैसे रख सकती हूँ इस प्रकार की अनेक तरह की कल्पनाएं करती है किन्तु यह नहीं सोच पाती है कि इसका निर्णय कर लूं, कि उसका संकेत क्या था। साधू जी ने संकेत से क्या कहा और बहू ने क्या संकेत दिया, इसमें क्या भेद है, संकेत का वस्तुत: क्या अर्थ है, बिना इसका निर्णय किए ही उसने मन में निर्णय कर लिया और उसके मन में पुत्रवधु के बारे में भावना दूसरे रूप में बन गई और मन में सोच लिया कि किसी प्रकार से इसको समाप्त करना चाहिए। लेकिन समाप्त करने से पहले सेठ

साहब की अनुमति लेनी चाहिए। सेठ साहब को बुलवा लिये। सेठ साहब के आते ही उनको आडे हाथों लिया, कहने लगी देखा, मैंने पहले ही कहा था कि ऐसे घर की छोकरी हमारे घर के योग्य नहीं है। इसने तो सारे घर का दिवाला निकाल दिया, एक साधु को कुछ दान दिया और साथ ही साथ गुप्त बातें की। तो सेठजी ने कहा कि अब क्या करना चाहिए? सेठाणी कहने लगी कि इसको घर में नहीं रखना चाहिए। सेठजी ने कहा कि इसको पीहर भेज दें। तो बोली कि पीहर भेज देंगे तो वहाँ वह सारो बातें खोल देगी और इससे इज्जत खत्म हो जाएगी। तो क्या करना? क्यों नहीं इसको समाप्त ही कर दें। सेठ ने कहा कि समाप्त करना तो मेरे हाथ की बात नहीं है। जब तक पुत्र सहयोग नहीं दे तब तक इस विषय में अपन क्या कर सकते हैं। तो कहा पुत्र को भी बुला लिया जाए अपन तीनों एकमत हो जावें। पुत्र को बुलाने के लिए भेजा गया वह भी उपस्थित हो गया। सम्पूर्ण वृतान्त सुना तो वह भी आश्चर्य में पड़ गया। कुछ कह नहीं पाया, मौन होकर खड़ा हो गया और मनन चिंतन करने लगा कि भगवन्! मेरे पर कौन-सा धर्म संकट आ गया, पतिव्रता के रूप में इसको मैंने देखा, सीता सती की उपमा दी, और आज भी दे रहा हूं ऐसी कन्या के विषय में इस प्रकार की बात क्यों कर सम्भावित हो रहीं है। मैं प्रभु के चरणों में हाथ जोड़ कर इस विषय में मार्ग दर्शन चाहता हूं। वह कुछ समय के लिए स्थिर हुआ। कुछ चिंतन करके अपनी मातेश्वरी और पिताजी से कहा कि आप भी कुछ चिंतन करिए और इस बात की ताकीद मत करिए। आप इस बात का चिंतन करिए कि क्या बात है, किस तरह से यह बात बनी है और उसने जो कुछ कहा तो क्या कहा। सारी बात का निर्णय निकाले विना सहसा कदम नहीं उठाना है। तो उन्होंने कहा कि हमने सब कुछ निर्णय कर लिया। है तब पत्र ने कहा कि मैं भी कह रहा हूँ, मुझे भी थोड़ी देर

सोचने दीजिए। वह सोचने की स्थिति में खड़ा हो गया। माता-पिता ने सोचा कि पुत्र गुणवान है, उसकी सहमति के बिना हम कोई कार्य नहीं कर सकेंगे, आखिर यह सहमत होगा तभी काम बनेगा यह समझ कर चुप हो गए।

उधर चिंतन चल रहा है और इधर आपका दस बजे का समय हो गया है। यहाँ भी अभी जीवन का प्रश्न चल रहा है, आप चाहते हैं कि यह प्रश्न जल्दी हल हो जाय और मैं भी चाहता हूँ कि जल्दी हल हो जाय, लेकिन जीवन को समझने के लिए, कुछ प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार की स्थिति आपके धैर्य के साथ बंध गई है। देखिए उस बहिन की स्थिति क्या वनती है, पति क्या सोचता है और सास और ससुर क्या सोचते हैं यह भविष्य के गर्भ में रहने दीजिए। अभी जो वर्तमान में प्रश्न यहाँ चल रहा है, वह है आज के युग में जीवन की क्या आवश्यकता है। सत्ता, सम्पत्ति और कर्तव्य जीवन के बिना बेकार हैं और जीवन की कीमत करने के लिए, जीवन के स्वरूप को समझने के लिए, जीवन की परिभाषा करने के लिए जब आप आगे बढ़ोगे तो ही ये सत्ता, सम्पत्ति और कर्तव्य हितावह हो सकते हैं, नहीं तो ये उल्टा मार्ग धारण कर सकते हैं, उन्हीं भावनों के साथ कहा—

जय जय जगत शिरोमणि, हूँ सेवक नै तू धणी,
अव तोसूँ गाढी बणी, प्रभू आशा पूरो हम तणी।
मुझ मेहर करो चन्द्र प्रभू जगत जीवन अन्तर्यामी,
भव दुख हरो सुनिए अर्ज हमारी, ओ त्रिभुवन स्वामी ॥

ऐसी भावना के साथ जब हम अपने जीवन को समझ जायेंगे, जीवन के स्वरूप को समझ जायेंगे, सुन्दर जीवन जी सकेंगे. इसी भावना के साथ इस प्रसंग को समाप्त करता हूं।

पन्ना समिक्खए धम्मं —उत्तराध्ययन

अपनी निर्मल बुद्धि-प्रज्ञा से धर्म की परीक्षा-समीक्षा करनी चाहिए।

---

६ | सम्यग् निर्णय कीजिए

श्री सुविधि जिनेश्वर वंदिये हो,
प्रभुता त्यागी राजनी हो,
लीधो संजम भार।
निज आतम अनुभव थकी हो,
पाम्या पद अविकार।....श्री....

बन्धुओ,

यह हम श्री सुविधिनाथ भगवान् की प्रार्थना कर रहे हैं। भगवान् के नाम का संकलन भी किस ढंग से बना है कि जिसमें यथार्थ अर्थ का द्योतन हो रहा है।

भगवान् सुविधि अथवा सु-विधि— इन शब्दों के साथ यदि सम्बन्ध जुड़ता है तो उससे प्रभु के अनुरूप अर्थ का द्योतन होता है। सुविधि यानिः **सुष्टु सुन्दराविधिर्यस्य स सुविधिः**। इसका दूसरा अर्थ है सुन्दर विधि, अगर यह सुन्दर विधि हमारे जीवन में प्रवेश कर जावे तो इस जीवन की तमाम समस्याएँ हल हो जावें। आज का मानव चल

अवश्य रहा है, गति उसकी रुकती नहीं है, प्रयत्न जरूर, चालू है लेकिन वह विधि के साथ है या अविधि के साथ है यह सोचना है ।

अगर विधिपूर्वक मनुष्य के सारे प्रयत्न चल रहे हैं, विधि के साथ वह पुरुषार्थ कर रहा है, विधि के साथ ही जीवन की तमाम क्रियाएँ कर रहा है, तो उसके जीवन की समग्र शक्तियाँ विकसित हो सकती हैं ।

जब विधि के अन्दर भी वह शक्ति है तो जिस व्यक्ति के जीवन में सुविधि आ जाए उसका तो कहना ही क्या ? उसका जीवन परमात्मा शक्ति के रूप में परिलक्षित हो इसमें कोई भी आश्चर्य नहीं।

अब हमें यह सोचना है कि इस साधनाकाल में अपने जीवन को परिमार्जित करने के लिये सुविधिनाथ भगवान की प्रार्थना के प्रसंग में हम किस तरह से तत्पर हो सकते हैं ? किस तरह से हम अपने जीवन को सुसंस्कारित कर सकते हैं जिसका कि संकेत आपको कुछ समय से मिल रहा है । और यह संकेत अपुट्ठवागरणा-उत्तराध्ययन सूत्र चतुर्थ अध्ययन की जो प्रथम गाथा है उसकी व्याख्या के रूप में कुछ दिनों से मैं आपके सम्मुख कर रहा हूं। प्रभु की इन उद्घोषणाओं को सुनने और समझने का प्रयास आप कर रहे हैं ।

भगवान ने फरमाया कि **"असंखयं जीविय मा पमायए"** मानव, तुम्हारा जीवन असंस्कृत है, तुम प्रमाद मत करो । वीतराग देव ने अपने केवलज्ञान के उस दिव्य सूर्य के प्रकाश में मनुष्य का जो जीवन देखा है उसके अनुरूप ही उन्होंने मानव को सम्बोधित करते हुए उक्त वचन फरमाये हैं ।

अन्तर में झाँको

यह सम्बोधन समुच्चय है चार तीर्थ के लिए है इसमें साधु, साध्वी भी आ जाते हैं और तो क्या महान—प्रतिभा

आध्यात्मिक दृष्टि के महान् ज्ञाता गणधरों को भी भगवान् इस तरह से सम्बोधन करते हैं कि प्रमाद मत करो ! क्योंकि तुम्हारा यह जीवन असंस्कृत है तो इससे सहज ही साधारण साधु साध्वियों का चिन्तन तो मुखरित होना ही चाहिए। उन्हें अपने जीवन के लिये यह चिन्तन करना चाहिये कि हम साधु साध्वी के रूप में चल रहे हैं। हमने घर बार का त्याग किया है, परिवार, स्त्री, पुत्र, पति, सम्पत्ति सब को विधि के साथ बोसराया हैं, और इसके साथ ही साथ हम साधना के क्षेत्र में प्रवेश करके चल रहे हैं, लेकिन जिस रोज हमने यह वेष ग्रहण किया उस दिन से कहीं हमारे मन में लापरवाही के संस्कार तो नहीं आ गये हैं ? हमने यह तो नहीं समझ लिया है कि अब हम मुनि बन गये हैं; पोशाक पहन ली है, अब तो हम भगवान् के तुल्य हो गये, कृत-कृत्य हो गये, अब हमें कुछ करना धरना नहीं है। इस तरह के संस्कार या विचार अगर साधु साध्वी के मन में प्रवेश कर गये हों तो उन संस्कारों को भी असंस्कृत रूप में देखते हुए उनको भी निकालने का निरन्तर प्रयत्न करने का सम्बोधन वीतराग देव की वाणी से स्पष्ट झलक रहा है।

मैं उचित सम्बोधन की बात को जितना ही अधिक ध्यान में लाता हूं उतना ही अधिक अन्तर में अनेक तरह की तरंगें उठती हैं। मस्तिष्क नाना रूपों से चिन्तन करने को तत्पर हो जाता है। सोचता हूं, कि वीतराग देव ने समुच्चय रूप से यह जो सम्बोधन किया है उससे गणधरों को भी सावधान किया तो साधारण साधु साध्वी और श्रावक-श्राविकाओं को भी सावधान होने की आवश्यकता का प्रतिपादन किया है।

हम थोड़ा सा ज्ञान सम्पादन कर लें, उस ज्ञान के माध्यम से थोड़ा सा हमें बोलना आ जावे और हम अपने आपको कुछ औरों से ऊपर समझने लग जावें कि बस अब हमारे से बढ़कर ज्ञानी कोई

नहीं है। अब हमारे से बढ़कर कोई वक्ता नहीं है, अब हमारे से बढ़कर कोई विद्वान् नहीं है, मैं तो सब कुछ बन गया हूं, अब कुछ करना धरना नहीं है तो उसके लिये भी भगवान का यह सम्बोधन है कि हे साधु, हे साधक, तू चार ज्ञान के धारक उस महाज्ञानी गणधर के तुल्य तो नहीं बन गया है अभी! उसको भी जब भगवान् ने यह कहा है कि—

असंखयं जीविय मा पमायए, तू तो उससे बहुत नीचे की साधना के स्तर पर है, तू क्यों अभिमान करने लग गया है, अभी तेरा जीवन भी असंस्कारित है, इसे संस्कारमय बनाने में प्रमाद मत कर! लापरवाह मत बन!

तो इस तरह अहंकार की भावनाएँ मानव में आना सहज है। ये भावनायें मानव स्वभाव के अनुसार साधक के अन्दर भी प्रवेश कर सकती हैं क्योंकि वह भी मानव है। जो श्रेष्ठ साधक हैं, उसमें सहसा भले ही प्रवेश न करें किन्तु उनके भी अज्ञात मस्तिष्क में ये संस्कार किसी न किसी रूप में अपना प्रभाव डालही देते हैं अतः उस अज्ञात मस्तिष्क के संस्कारों को संस्कारित करने के लिए सम्बोधन है क्योंकि जीवन में अहंकार के अनेक प्रवेश द्वार होते हैं। कभी तपश्चर्या के प्रसंग पर साधु तपश्चर्या करता है तथा कभी मासखमण करने वाले या अधिक तपश्चर्या करने वाले तपश्चरण करते हैं उस समय भी अभिमान की मात्रा आना स्वाभाविक है, ऐसी स्थिति में वह भी यह सोच ले कि मेरे समान कोई तपस्वी नहीं है, मैं सबसे बड़ा तपस्वी हूं, मेरे सामने कोई बोल नहीं सकता, बस बोलो मत, मैं कहूं जिस तरह से करो, इस तरह की धमकी का प्रयोग साधारण लोगों पर करता है जो वीतराग की वाणी के अनुसार वह चाहे साधु है, तपस्वी है, लेकिन जीवन में संस्कार पूरे नहीं हुए हैं, उसको भी असंस्कारित जीवन की श्रेणी में रखा जा सकता है। वैसे ही [illegible]

लेकर चल रहे हैं, अपने-अपने क्षत्र के अनुरूप, अपनी-अपनी शक्ति के साथ वे धार्मिक कार्य भी करते हैं। दान, शील, तप, भावना का प्रसंग भी उपस्थित करते हैं,लेकिन दान देते समय कभी मन के अन्दर अहंकार की प्रवृत्ति आ गयी, कि मैं बड़ा दानी हूं, मेरे समान कौन दान दे सकता है? मैं इतना उदार हूं— अगर ये भावनायें प्रवेश कर गयीं तो वह भले ही श्रावक की भूमिका में हो, लेकिन वहां भी असंस्कारित जीवन का प्रवेश हो गया। और उसका भी जीवन संस्कारित होने की दिशा में आगे बढ़ने से रुक गया।

शील की दृष्टि से भी शीलव्रत ग्रहण करता है कि वा ब्रह्मचर्य की मर्यादा करता है, लेकिन उसमें भी बड़ी सावधानी रखने की आवश्यकता है। उसमें भी यदि अहंकारी वृत्ति का प्रवेश हो गया तो हम विधि से भटक जायंगे क्योंकि शील व्रत अत्यधिक महत्वपूर्ण बताया है उसमें अहं आना स्वाभाविक है। तलवार की धार पर चलना सहज है लेकिन वीतराग देव की बताई विधि के साथ शील की धार पर चलना कठिन है। इसीलिए कभी कभी आध्यात्मिक रस में बहने वाले कवि कुछ कविताओं के प्रसंग से अपने अन्तर नाद को व्यक्त कर देते हैं—

"धार तलवार नी सोहिली
दोहिली चौदवां जिन तणी चरण सेवा"

ये चौदहवें भगवान की प्रार्थना की कड़ियां है। चौदहवें भगवान की बात कहो, नौवें भगवान की बात कहो या चौबीस तीर्थंकरों की बात कहो, उनका एक ही स्वर है और एक ही विधि है। उनका मौलिक दृष्टि से मौलिक तत्वों का एक ही तरह का विश्लेषण है। यह दूसरी बात है कि साधक, युग को देखकर साधना के नियमों में कुछ कमीबेशी या कुछ बढ़ोतरी कर सकते हैं, लेकिन मौलिक तत्वों के विषय में कोई अन्तर नहीं आता। ऐसे उन परमात्मा के विधि विधान के ऊपर चलना और शीलव्रत की धार पर चलना यह तलवार की धार से भी कठिन

है। तलवार की धार पर प्रत्येक मनुष्य नहीं चल सकता, लेकिन कदाचित् बाजीगर अपना प्रयत्न करके कुछ चल सकने की कोशिश करे, किन्तु उस तपश्चर्या की धार पर चलना उससे भी मुश्किल है। ठीक वैसे ही परमात्मा की विधि पर चलना, भगवान के मार्ग पर चलना और वह भी संयम के साथ, तलवार की धार से भी अधिक कठिन है। इस प्रकार की दुष्कर वृत्तियों में सुविधि के साथ गमन करना तथा अपने में अहंकारी वृत्ति का प्रवेश नहीं होने देना ही साधक की साधना है, वही संस्कारित जोवन है।

तप केवल आत्मशुद्धि के लिए

शील का अर्थ स्वभाव से भी है। जहां स्वभाव का प्रसंग आता है, उसे आजकल की भाषा में हम नेचर किंवा प्रकृति कहते हैं अपना स्वभाव अन्य व्यक्तियों के लिये कैसा वने इस विषय में आज इन्सान को अपने जीवन को मोड़ देने की आवश्यकता है। उसका स्वभाव सुन्दरतम वने, स्नेह मय बने, वह मधुर बने, वह रसयुक्त बने, सवके दिलों को खींचने वाला बने—ऐसा स्वभाव जिसका बनता है वह भी शील की स्थिति में आता है। दानशील और तप—इन तीनों में से दो का विवेचन आपके सामने आया। तप करने की दृष्टि से तपश्चर्या जहां चतुर्मास लगता है वहां पर चालू होती है, लेकिन इस विषय में जयपुर का नाम अधिक श्रवण करने को मिलता है। इन वर्षों में जयपुर के अन्दर शायद ही कोई चातुर्मास ऐसा बीता हो जिसमें मासखमण नहीं हुए हों जैसा कि अभी श्रवण करने को कुछ मिल रहा है, आज ही कोई मासखमण नहीं हो रहा है वल्कि मासखमण की तपश्चर्या कुछ वर्षों से सुन रहे हैं, कभी ज्यादा हो गयी कभी कम हो गयी यह अलग बात है। तो तप की स्थिति भी चलती। लूणावत जी की माताजी ने शायद शेष काल में २६ दिन की तपश्चर्या कर ली। तो इस प्रकार तपश्चर्या

का काम भी चालू हो सकता है किन्तु उस तप के पीछे यदि किसी प्रकार की कामना चल पड़े तो वह कामना विधि की नहीं होगी। प्रभु के वचन हैं—

नो इह लोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा
नो परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा
नो कित्ति-वण्ण-सद्द सिलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा
नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा

इह लोक के लिए तप न करें, परलोक के लिए भी तप न करें, यश-कीर्ति की कामना से भी तप न करें, किन्तु सिर्फ कर्म निर्जरा-आत्म शुद्धि के लिए तप करें।

मैं कभी कभी सुनता हूँ–इधर का मुझे पता नहीं, लेकिन मारवाड़ के अन्दर बोलते हैं कि महाराज धमक तेला किया। मैंने एक दिन धमक तेले की व्याख्या पूछी कि धमक तेला क्या है ? तो वे कहने लगे कि जो बहिन तेला करती हैं वह घर वालों को धमकाती है कि इतना रुपया दो तो पारणा करूँ, अमुक जेवर बनवाओ तो पारणा करूँ। इस तरह से रुपया माँगने के लिए अगर धमक तेला करते हैं तो वह तेला भगवान की विधि के अन्दर नहीं है।

इसी प्रकार "मैं यदि अधिक तप करूँ तो मुझे अधिक स्वर्गीय आनन्द मिलेगा" इस भावना से भी तप नहीं करे।

मेरी कीर्ति होगी, लोग मुझे धन्यवाद देंगे, चारों तरफ से तारीफ होगी—इस भावना से भी तप की स्थिति का प्रसंग उपस्थित नहीं करें अपने मन में भी ऐसी भावना न करें। यदि तपस्वी की तारीफ अन्य लोग कर रहे हैं तो वे अपने जीवन में सम्यग्दृष्टि जीवन के लक्षण का पालन कर रहे हैं वह तो उनका स्वभाव है तथा मौलिक दृष्टि से धन्यवाद देना उनके लिए आवश्यक है, लेकिन तप करने वाले को कोई कामना नहीं करनी चाहिए कि लोग मुझे धन्यवाद

दें और मेरी यशोगाथा चारों तरफ फैले। इस भावना से तप नहीं करे। तो किसके लिए करे? प्रभु का शब्द है कि **नन्नत्थ निज्जर ट्ठयाए**"......एकान्त निर्जरा के लिए तप किया जाये। इसका मतलब यह है कि जो अनादिकाल से आत्मा के साथ कर्म बन्धन हैं, उनको हटाने के लिए, तप करें। बद्ध कर्म-दलिकों को देश से हटाना निर्जरा है। तो उस निर्जरा के लिए दूसरा शब्द मैं कहूं—"आत्म शुद्धि के लिए" अगर आपके व्यवहार के लिए समझें तो जीवन की शुद्धि के लिए जीवन को संस्कारित करने के लिए तप की स्थिति रहे। इस प्रकार जीवन के लक्ष्य के मोड़ को लेकर इस चातुर्मास के अन्दर अपने जीवन का हमें अवलोकन करना है और इस जीवन को समझना है कि हम किस ओर जा रहे हैं। हमारे जीवन में पवित्र संस्कार आये या नहीं? क्या हम अभी तक उस अनादिकाल के संस्कारों के साथ बह रहे हैं। क्या हमारे जीवन में असंस्कार ही चल रहे हैं, या कुछ सुन्दर संस्कार पनप रहे हैं— इसका निरन्तर ध्यान रखना, चिन्तन करना, यह चातुर्मास का सुन्दरतम उपयोग है।

चातुर्मास में कर्तव्य

चातुर्मास में क्या करना चाहिए, और क्या नहीं इसका कुछ संकेत आपको सन्त दे रहे थे और शायद उस संकेत में रात्रि भोजन नहीं करने का संकेत भी मिला होगा। या नहीं मिला? मिला। जो अपने जीवन को पवित्र बनाना चाहते हैं, सुन्दरतम और संस्कारित करना चाहते हैं वे तो रात्रि भोजन की वृत्ति को अपने जीवन में रख ही नहीं सकते। यदि रात्रि भोजन चलता है तो समझना चाहिए कि अभी हम प्रभु की सुविधि के अन्तर पेटे में नहीं आये। एक दृष्टि से देखा जाये तो जैनियों के बच्चे बच्चे को रात्रि भोजन नहीं करना चाहिए। क्योंकि आप भी रात्रि भोजन करेंगे तो फिर जो असंस्कारित

जीवन वाले व्यक्ति हैं उनमें और आपमें क्या अन्तर रह जायेगा ? रात में कितने जन्तु, कितने प्राणी और फिर बिजली के प्रकाश के कारण कितने पतंगे इकट्ठे होते हैं किस तरह खाने में आते हैं। मैं समझता हूँ कि रात्रि भोजन करने वाले भाई भोजन की तरफ शायद ही ख्याल रखते हैं। हाँ ! प्रायः ध्यान तो इधर उधर देखने में रहता है और भोजन के साथ न मालूम कितने चलते फिरते जीवों को पेट में डाल देते हैं, और उनका क्या परिणाम होता है, उससे असंस्कारित जीवन का कुछ प्रदर्शन तो होता ही है लेकिन साथ ही साथ उसका वर्तमान जीवन भी खतरे में पड़ सकता है। आज जितनी बीमारियाँ हो रही हैं और डाक्टरों को तरह तरह के इलाज करने की दृष्टि से सोचना पड़ रहा है इसके अनेक कारण हो सकते हैं लेकिन एक कारण यह भी है कि रात्रि भोजन के समय जहरीले जन्तुओं का पेट में प्रवेश होने की संभावना रहती है और उससे अनेक रोगों की उत्पत्ति की भी संभावना रहती है। यदि वर्तमान जीवन को सुन्दरतम रखना चाहते हैं तो रात्रि भोजन के लिए बहुत ज्यादा ध्यान रखने की आवश्यकता है। जहाँ तक पूरे समाज का प्रश्न है उसकी दृष्टि से दिगम्बर समाज के भाइयों के अन्दर यह संस्कार ज्यादा सुनने में आते हैं। उनमें रात्रि भोजन का प्रसंग प्रायः नहीं पाया जाता है। वहां उन्हें इस विषय के प्रारम्भ से ही संस्कार दिये जाते हैं।

छोटे बच्चे भी इसका खयाल रखते हैं। जब कि मैं छोटा था, स्कूल में पढ़ रहा था, उस समय एक पाटनी गोत्र का विद्यार्थी मेरे साथ पढ़ता था। शुरु में सूर्यास्त होने के भय से वह स्कूल से जल्दी छुट्टी लेकर भाग कर घर जाने लगा तब मैंने उससे पूछा कि इतनी जल्दी छुट्टी लेकर घर क्यों जा रहे हो ? उसने उत्तर दिया कि भोजन करने के लिये जा रहा हूं। फिर मैंने पूछा, अभी क्यों जा रहे हो, अभी तो स्कूल का समय है। उसने उत्तर दिया—दिन

थोड़ा है, सूर्यास्त से पहले भोजन कर लेना है। मैं जैनी हूं न।

देखिये—एक तो वह जैनी था और एक मैं जैनकुल में जन्म लेने वाला था, अजैनी जैसा था, क्योंकि उन गाँवों में इस तरह के संस्कारों की प्राप्ति थी नहीं। क्या कर्तव्य है जैनियों का इसकी भी जानकारी नहीं थी। मैंने उसे पूछा—रात में भोजन क्यों नहीं करते? उसने उत्तर दिया "मेरी मां ने कहा है कि रात्रि भोजन करूँगा तो मेरे सींगड़े उग जावेंगे।"

बच्चे को माँ ने इसी तरह से समझा रखा था। छोटे बच्चे भी इतना ध्यान रखते हैं इस समाज में, सूर्यास्त से पहले ही भोजन करने के लिए दौड़ कर जाते हैं, और एक आप हैं इतने वृद्ध और नौजवान होकर भी इसका विचार इने-गिने ही रखते होंगे!

आप मनुष्य की बात छोड़िये। जो अनजान हैं, जिनको हम अपने से कहीं बहुत कम ज्ञानवाला मानते हैं, उन पक्षियों को ही लीजिये। चिड़ियां हैं, कबूतर हैं ये रात में चुग्गा नहीं चुगते।

तो यह रात्रि भोजन नहीं करने का प्रसंग आप लोगों के सामने उपस्थित कर रहा हूं जो और किसी छोटे मोटे ठिकाने में नहीं रहते, गांवों में नहीं रहते, बल्कि राजस्थान की राजधानी में रहते हैं, जयपुर जैसे नगर में रहते हैं। जहाँ मेरा जन्म हुआ वहाँ के गांवों के लोग भले ही न समझें, पर राजधानी के नागरिक तो समझते हैं और उसमें भी जयपुर के जौहरी घरानों के जैनी, जवाहरात का परीक्षण करने वाले। फिर क्या आपने जीवन का परीक्षण नहीं किया? यह कैसे सम्भव हो सकता है?

तो मैं यह सोच रहा हूं कि राजधानी के भाई और बहन बड़े समझदार और तेजस्वी हैं। धर्म ध्यान और चिन्तन मनन में काफी रुचि रखने वाले हैं। यहां का युवावर्ग भी बहुत जागृत और लगनशील है। इन सब बातों को देखते हुए इस प्रसंग पर क्या मैं यह मान कर चलूं कि कम से कम आप सब भाई बहन अभ्यास

के तौर पर ही सही, १२ महीने के लिये रात्रि भोजन नहीं करेंगे ऐसी प्रतिज्ञा करने को तत्पर होंगे ? अगर आप ऐसा कर लेते हैं तो चातुर्मास काल में बीच-बीच में आवश्यकता हो तो मुझे यह कहने का भी बड़ा अच्छा अवसर मिल जावेगा कि जयपुर के भाई बहुत जागृत हैं उन्होंने एक वर्ष के लिये ही सही, रात्रि भोजन न करने की प्रतिज्ञा कर ली है। फिर भी कदाचित किसी को कुछ कमजोरी अनुभव हो रही हो तो, कम से कम आज चातुर्मास के प्रारम्भ का दिवस है, आज से लेकर चातुर्मास समाप्ति काल तक के लिये तो रात्रि भोजन नहीं करना, ऐसी प्रतिज्ञा आप करेंगे, क्या ऐसा विश्वास रक्खूं ?

तो मैं दानशील तप और भावना की बात कह रहा था। चार महीनों में आप ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें, रात्रि भोजन का त्याग करें, किसी भी प्राणी को दुख: न दें, कालावाजारी न करें। झूठ न बोलें, किसी प्रकार की चोरी न करें और इन चार महीनों में कुछ परिग्रह ममत्वको भी कम करें। इस तरह से अगर कुल मिलाकर १८ ही पापों के त्याग की भी भावना जगेगी तो इस चातुर्मास का रूप कुछ और ही बन जावेगा। यह संकेत चतुर्विध संघ के अंग के रूप में आपको मिल रहा है। यह संकेत केवल मेरा ही नहीं है, भगवान महावीर का है। भगवान् ने स्पष्ट संकेत दिया है :—

असंखयं जीविय मा पमायए।

मैं भी निरन्तर वही बात कहता आ रहा हूं, बार-बार दोहराता जा रहा हूं कि तुम्हारा जोवन, असंस्कृत है, इस असंस्कृत जीवन में प्रमाद मत करो। इस स्थिति को हटाने के लिये यह संकेत दिया जा रहा है, इस स्थिति को आप स्वयं अपनी बुद्धिमत्ता से चिन्तन करके, इन संस्कारों को परिमार्जित करेंगे तो जीवन की स्थिति को समझने का अभ्यास कर पावेंगे।

सम्यग् निर्णायक जीवन है

यदि आप अपने जीवन की अन्तरतम परिभाषा को समझने का प्रयास करें और परिभाषा के साथ जीवन को माँजने की कोशिश करें, तो कृतकृत्य हो सकते हैं। मैं जीवन की परिभाषा की दृष्टि से कथन कर रहा हूं। इस जीवन को समझने के लिये एक और परिभाषा के द्वारा इसे स्पष्ट कर दू :

सम्यग् निर्णायकं समतामयं च यत् तज् जीवनम्

जो सम्यग् निर्णायक, अर्थात् सम्यग् प्रकार से निर्णय करने वाला है, और समतामय है, वह जीवन है। यह तो हुई शब्दार्थ की स्थिति। अब इसकी व्याख्या करें तो प्रश्न होता है, सम्यग् निर्णायक का क्या तात्पर्य ? और सम्यग् निर्णय किसका किया जावे ? इस शब्दार्थ को भी संस्कारित जीवन के साथ समझना है। निर्णय किये विना उस वस्तु का स्वरूप सामने नहीं आता।

जब निर्णय का अभाव रहता है तो मनुष्य पथभ्रान्त बन जाता है और अज्ञानवश क्या क्या कर गुजरता है, और करते करते उसकी स्थिति कहां तक पहुंच जाती है, उसका एक रूपक पहले मैं रख गया था और उसमें बताया गया था कि जहां उस सेठानी ने अपनी पुत्र वधू को एक साधु को दान देते हुए देखा और दान देते हुए देखने के साथ ही साथ जब उस पुत्रवधू के मुँह से साधु को संकेत मिला और साधु को उसने यह कहा कि तुम्हारा एक चला गया तो उत्तर में उस साधु ने कहा कि तुम्हारे दो गये। पुनः बहन ने कहा तुम्हारे तीन गये।

इस बात को लेकर सेठानी के मन में भ्रान्ति उत्पन्न हो गई। अपनी पूत्रवधू के प्रति अविश्वास करके वह उसको मृत्यु तक के मुँह में पहुँचाने का प्रयास कर रही है।

उसने विना निर्णय किये ही अपने पुत्र को बुलवा [illegible]

उसके सामने भी यह घटना रक्खी। पुत्र भी असमंजस में पड़ गया। वह सोचने लगा कि मेरी माता क्या कह रही है ? जिसको मैंने इतने दिनों से समझा हैं, जिसके जीवन को मैंने परखा है। आज वह मेरी धर्मपत्नी क्या इस प्रकार बुरे आचरण वाली बन सकती है ? यह मेरी समझ में नहीं आता। लेकिन उधर मां जिस पर मैं श्रद्धा रखता हूं तो क्या वह झूठ बोल सकती है ? मैंने इस माता की कुक्षी से जन्म लिया हैं, इसी माता की गोदी में पला, पोसा और बड़ा हुआ हूं। माता ने मुझे हर तरह की अच्छी शिक्षा दी और आज तक मैं माता का बड़ा आदर करता आया हूं। आज क्या वह माता मुझे धोखा दे सकती है ? या झूठी बात कह सकती है ? यह भी बात मेरी समझ में नहीं आती। वह कि कर्त्तव्य विमूढ़ सा हो गया। कुछ सोच नहीं पा रहा था। कुछ क्षण मौन खड़ा रहा।

तब माता ने अपने पतिदेव को सम्बोधित किया कि सेठजी ! अपने पुत्र का मुँह खुलवाइये। यह मौन क्यों खड़ा है ?

सेठ ने पुत्र को सम्बोधन किया : गोविन्द, क्या बात है ?

किस उलझन में उलझ गया है ? तुम्हारी माता ने जो निर्णय लिया है वह निर्णय ठीक है अतः तू उसके अनुसार काम करने को तत्पर है कि नहीं ?

पुत्र कहने लगा—पिताश्री, मैंने आज दिन तक आपकी आज्ञा शिरोधार्य की है लेकिन आज मेरे मन में न मालूम किस प्रकार की उलझन पैदा हो गई है ? उसको सुलझा नहीं पा रहा हूं। किसी निर्णय और निश्चय पर नहीं पहुँच पा रहा हूँ, और बिना निर्णय के मैं कैसे क्या करूँ ? आप आज्ञा दे रहे हैं और इसके अन्दर सहमति प्रकट करूँ यह भी मेरे गले नहीं उतर रही है, मेरा दिल नहीं मान रहा है और मैं इन्कार करूँ कि आपकी पुत्रवधू ऐसा नहीं कर सकती तो भी मेरा दिल नहीं मानता ? अब कैसे करूँ ? और क्या करूँ ? आप ही बताइये।

तब फिर सेठ ने कहा—कि देखो भाई मैंने अपनी समझ के अनुसार सोच समझ कर तुम्हारा विवाह किया। इस कन्या को मैंने सुलक्षणा और देवी के रूप में देखा, सुशील समझा, पवित्र आचार वाली समझा, तब तो तुम्हारी माता से विरोध मोल लेकर भी और पैसे का लालच भी छोड़कर तुम्हारे साथ इसका विवाह किया। और मुझे आज दिन से पहले तक किसी भी प्रकार का विचार नहीं था, लेकिन जब कि तुम्हारी माता कह रही है कि मैंने प्रत्यक्ष देखा और प्रत्यक्ष कान से सुना, कि इसने साधु को पहले तो माल बहराया और साथ ही साथ ऐसे सांकेतिक शब्दों में वार्तालाप कर रही थी इस वार्तालाप की स्थिति को जब सुना तो मेरा मन भी साक्षी देने लगा। कि हो सकता है यह स्त्री कुछ इस तरह की हो अन्दर से कुछ और हो और ऊपर से कुछ और दिखती हो। इसलिये जो तुम्हारी माता कह रही है उसे करना तुम्हारा कर्त्तव्य है।

बन्धुओ, बहिनों पर लान्छन लगाना सहज है लेकिन बहनों के गुणों को लेकर जीवन को विकास करना दुश्वार है। इस बहन के ऊपर जो कुछ लांछन की स्थिति बन रही है। यह सिर्फ भ्रान्ति के कारण वन रही है। इस बहन के जीवन में कुछ भी मलिनता के भाव नहीं हैं फिर भी सासूजी का मस्तिष्क दान देने से भटक गया उन्होंने इन्कारी कर रखी थी कि तू किसी को दान मत देना। पर वह अपने जीवन के संस्कारों के कारण, दानशील तप और भावना के महत्व को समझती थी इसलिये उसने साधु को सात्विक दान दे दिया। इसके कारण उसकी सासूजी गरम हो गई और उस गरमी से तनतना कर वहू और साधूजी के बीच हुए सांकेतिक शब्दों को वह पकड़ लेती है। इसके मन में विचार गहराई से घर कर लेते है कि इसने साधु के साथ गुप्त वात की इस गुप्त बात में क्या अर्थ छिपा है ?

सभी का कर्तव्य तो यह था कि इसका निर्णय करते। सासूजी खुले रूप से तत्काल बहू से पूछती कि तुम बताओ साधु के साथ तुमने सांकेतिक शब्दों में क्या बात की ? क्या एक गया और क्या दो गया और क्या तीन गया ?। इसका खुलासा करो। अगर सासू यह खुलासा उसी समय मांग लेती तो इस तरह का उपद्रव नहीं होता। पर उस सासूजी की बुद्धि गुस्से में और दूसरी स्थिति में परिणत हो जाने से निर्णय न कर पाई। उसका जीवन असंस्कारित था। जिसके मस्तिष्क में कुछ संस्कार आते हैं। किसी की कभी बात हो तो खुले दिल से पूछ लेते हैं, निर्णय कर लेते हैं। कोई बात किसी भी रूप में हो, किसी भी व्यक्ति ने किसी भी रूप में कही हो, चाहे पक्ष में कही हो या विपक्ष में चाहे इस विषय में अमुक के मार्फत बात आई हो, पर निर्णायक बुद्धि रखने वाले प्रामाणिक व्यक्ति का काम होता है कि वह उसका खुलासा सम्बन्धित व्यक्ति से सीधे पूछ कर ले। अमुक व्यक्ति जिसकी मार्फत बात आई हो वह कितना ही प्रामाणिक हो उसकी बात पर भी ध्यान न देकर सीधे उसी व्यक्ति से स्पष्टीकरण कर लेते हैं कि क्या आपने अमुक बात मेरे बारे में कही है ?

जिससे पूछा जाय उसका भी कर्तव्य होता है कि वह भी बिल्कुल निःसंकोच भाव से स्पष्ट कहे, नग्न सत्य के रूप में कहे तो दोनों संस्कारित कहे जा सकते हैं लेकिन ऐसा नहीं होता है और असंस्कार के वशीभूत होकर और विद्वेष करने वालों के साथ ऐसी भावना पैदा कर लेते हैं जिससे रात दिन कर्मबंधन होता रहे—यह मेरा विरोधी है, यह मेरे प्रति ऐसी भावना रखता है, चाहे रखे या नहीं रखे जिसके ऊपर शंका हो जाती है, वह किसी से बात कर रहा हो तो भी यही शंका रहती है कि यह मेरे ही विषय में बात कर रहा है। इस प्रकार इन बातों में पड़कर अपने जीवन को असंस्कार से असंस्कार-तम दशा में ले जाता है लेकिन जीवन का परिमार्जन नहीं कर पाता

है तो बन्धुओ इसकी प्रत्येक व्यक्तियों को सावधानी रखनी चाहिए, यह प्रत्येक व्यक्ति का प्रसंग है, प्रत्येक समाज का प्रसंग है, राष्ट्र का प्रसंग है। आजकल कई व्यक्तियों को इसी में मजा आता है कि किस को कितना भिड़ा सकते हैं, कितना लड़ाई झगड़ा करा सकते हैं। जिनके जीवन में संस्कार होते हैं वे निर्भयता के साथ उसकी जांच करते हैं और जांच करके उसका निर्णय निकालते हैं। नहीं तो कभी भी लापसी का जहर बन जाता है। एक सेठ जी ने वैद्यराज की दवा ले रखी थी और उस शहर में प्राचीन प्रथा की दृष्टि से एक बड़ा जीमनवार का प्रोग्राम था। जीमनवार करने वाले व्यक्ति के परिवार ने पंचों को बुलाया और उनकी सलाह से सब कुछ तय किया। मन में सोलह सेर घी डलवाया। उस सेठ ने भी खुली तरह से परिवार के सारे सदस्यों को न्योता दिया जिसे सिगरी न्यौता कहते हैं। तो वे सेठ साहब जिन्होंने बैद्यराज की दवा ले रखी थी उनका भी मन ठिकाने नहीं रहा और सोचा कि ऐसी लापसी खाने को कब मिलेगी ? इसलिए हमें भी आज लापसी जीमने के लिए जाना है। जाना तो है लेकिन वैद्यराज की राय इस बारे में ले लेनी चाहिए। इस भावना से कपड़ों से सजकर वैद्यराज जी से पूछने के के लिए दरवाजे में खड़े हो गये संयोग से उसी रास्ते से वैद्यराज जी शीघ्रगति से जा रहे थे। सेठ साहब ने वैद्यराज को देखकर उनको कहा कि ठहरो, ठहरो आज गाँव में जीमनवार है। और गुड़की लापसी है। मैं जाऊँ या नहीं। वैद्यराज जी बड़े जरूरी कार्य से जा रहे थे इसलिए उन्होंने जाते जाते कहा कि लापसी तो जहर है। सेठ साहव ने सोचा कि लापसी जहर है और जहर की लापसी खाने से तो मनुष्य मर जाता है, तो लापसी जब मेरे लिए जहर है तो मेरे परिवार वाले खायेंगे तो उनके लिए भी जहर ही होगी। सेठ साहव पीछे लौट कर घर में आये और अपने परिवार के सदस्यों से कहा कि लापसी तो जहर है अतः जीमने मत जाओ। तब

परिवार के सदस्यों ने कहा कि पिताजी जब आप हमको लापसी जीमने के लिए रोक रहे हैं तो इस गांव के अन्दर हमारे अन्य संबंधी भी बहुत हैं, वे चले जायेंगे तो मर जायेंगे इसलिए आपकी आज्ञा हो तो उनको भी बता आयें। तो सेठ ने अनुमति दे दी। बाल-बच्चे भागे और कहा कि लापसी जहर है इसलिए जीमने मत जाना। वे परिवार वाले रुके उन्होंने सोचा कि हमारे और भी तो परिवार हैं, तो उन्होंने अन्यों को सूचित किया। इस तरह से सारे शहर में सन्नाटा छा गया और जो सबके सब तैयार हुए वे सबके सब रुक गये। बेचारे जिस व्यक्ति ने सारा माल बनवाया वह व्यक्ति अपने परिवार के सदस्यों को लेकर द्वार-द्वार घूमता है और लोगों से कहता है पधारिये, पधारिये तो कोई कुछ नहीं कहता सिर्फ हां साहब, हां साहब कह देते हैं और इसके अलावा कुछ नहीं कहते और जाता भी कोई नहीं। इस प्रकार वे परिवार के सदस्य हैरान हो गए और सोचने लगे कि क्या करना चाहिए। पंचायत बुलाई और कहा कि देखिए साहब आपके कहने से सब तैयारी की, सब कुछ माल तैयार हो गया परन्तु कोई नहीं आ रहा है और कोई उत्तर भी नहीं दे रहा है सब कह रहे हैं हां साहब, हां साहब—इसका निर्णय तो कीजिये कि जीमने के लिए क्यों नहीं आ रहे हैं? तो पंच भी एकत्रित हो गये लेकिन किसी भी पंच में पूरा निर्णय करने की शक्ति नहीं। पंच भी कई तरह के होते हैं। आजकल तो पंचायतें प्रायः समाप्त हो गयी हैं। गावों में कहीं-कहीं बाकी रही हैं। आचार्य श्री कहते थे कि निर्णय करने वाले पंच भी कई तरह के होते हैं। जो सभी सही निर्णायक नहीं होते। जो एक तरफा निर्णय करते हैं। तो वे सभी एकत्रित पंच सोचे जा रहे हैं निर्णय कोई नहीं कर पा रहा है, बेचारा वह माल बनाने वाला हैरान हो रहा है। किसी ने कोई निर्णय नहीं दिया और सारे इधर-उधर देख रहे थे। उनमें से एक निर्णायक व्यक्ति निकला और उसने सच्चाई के साथ कहा कि

भाई ! देखिये हमने पंचायत करके आपको जीमनवार करने की दृष्टि से सब कुछ तैयारी करने के लिए कहा और तुमने वैसी तैयारी भी की लेकिन बात यह है कि हमने लापसी में जहर डालने के लिए नहीं कहा और आपने लापसी में जहर डाला है। वह व्यक्ति आवाक् रह गया और कहने लगा कि आप क्या कह रहे हैं, मैं स्वप्न में भी नहीं जानता कि लापसी में जहर डाला है। उसमें कतई जहर नहीं है और जैसा आप पंचों ने कहा वैसा ही सामान डाला है उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। तो इस पर सबकी जुवान खुल गयी और कहा कि अच्छा तुमने जहर नहीं डलवाया तो ऐसा करो कि आप पहले जीमो ! और तुमको घण्टे दो घण्टे तक कुछ नहीं होगा तो हम सारे गांव वाले जीम लेंगे। वह जीमनवार करने वाला व्यक्ति सोचने लगा कि मैंने तो जहर नहीं डलवाया लेकिन कौन जाने बाबा नौकर चाकरों ने जहर डाल दिया होगा या किसी दुश्मन ने डाल दिया होगा। यदि पहले पहल मैं जींम लूँगा तो मर जाऊँगा। उसने कहा कि मैं तो पहले नहीं जीमूँगा। तो पंचों ने देखा यह बात और भी मजबूत हो गयी कि लापसी में जहर है तभी तो यह नहीं जीमता। उसने कहा कि देखो साहब मैं सच्ची बात बतला देता हूं कि मैंने तो जहर नहीं डलवाया लेकिन कदाचित् कोई दुश्मन आ गया हो या रसोइये के मन में खराबी आ गयी हो और उन्होंने जहर डाल दिया हो तो उनको पूछने से पता लग जायेगा। फिर उस जीमनवार करने वाले व्यक्ति ने उन रसोइयों से पूछा कि इस लापसी में जहर है ? तो उन्होंने कहा कि नहीं। हम सौगन्द खाकर कहते हैं कि इसमें जहर नहीं है। तो पंचों ने कहा कि यदि ऐसी बात है तो पहले तुम जीम लो और घण्टे दो घण्टे तुम्हें कुछ नहीं हुआ और तुम जिन्दे रहोगे तो हम जीम लेंगे। इतनी वात सुनकर रसोइये सोचने लगे कि कौन जाने क्या हुआ हो, कहीं हम इधर उधर रह गये हों और किसी ने दुश्मनी से जहर डाल दिया हो, हम खा लेंगे तो मर जायेंगे इसलिए पहले

हम तो नहीं जीमते। पंचों ने कहा कि बात तो बिगड़ी लेकिन यह मालूम करना चाहिए कि यह बात कहां से उठी। तो फिर इसकी खोज करने के लिए सोचा और एक दूसरे से पूछताछ करने लगे तो सगे सम्बन्धियों से पता लगाते लगाते वहां तक पहुँचे कि सेठजी ने कहा था कि लापसी में जहर है। सेठ ने कहा कि देखिये मैं गलत नहीं कहता और मुझे तो वैद्यराज जी कहा। मैंने उनसे पूछा कि मैं लापसी खा लूँ तो उन्होंने कहा कि लापसी में तो जहर है। वहां पर वैद्यराज जी को बुलाया गया और पंचों ने सोचा कि यदि जहर की पुड़िया जायेगी तो वैद्यराज जी के यहां से ही जायेगी, उन्हें बुलाकर पूछें कि आपके यहां से कितने ज़हर की पुड़िया गयी। वैद्यराज जी ने कहा कि मेरे यहां से तो एक भी जहर की पुड़ियाँ नहीं गई। उनसे कहा गया कि फिर आपने कैसे कहा कि लापसी में जहर है। वैद्यराज ने कहा सेठजी को तो मैंने दवा दे रखी थी और उसके लिए पथ्य बता रखा था कि तेल और गुड़ नहीं खाना। इसलिए यह लापसी सेठजी के लिए जहर है, लेकिन गांव वालों के लिए जहर थोड़े ही है। पंचों ने कहा कि जब आपके यहां से पुड़िया नहीं गयी और आपने पथ्य की दृष्टि से बताया तो फिर आप ही इस लापसी को पहले जीम लो। वैद्यराज जी निर्भय थे और निश्चित थे, वे आगे चले और जाकर अच्छी तरह से लापसी खा ली और बैठ गये, दो तीन घन्टे कुछ नहीं हुआ तो सारे गांव वाले बिना बुलाये जीम गये।

बन्धुओ, देखिये किसी भी चीज का निर्णय किये बिना किसी बात में पड़ जायें तो लापसी में जहर के समान हो जाता है और इस प्रकार अनेक बन्धु कर्मबन्ध करके अपने जीवन को न जाने कैसे असंस्कारित बना लेते हैं। जीवन को संस्कारित करने के लिये चातुर्मास का काल अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

इन चार महीनों में वस्तु स्थिति का निर्णय करें। निर्णय अनेकों चीजों का होता है। सब चीजों का निर्णय सम्यग् दृष्टि से कर लेते हैं तो वहाँ वास्तविक विकास का प्रसंग ही आ जावेगा।

आप अपने मनों में यह दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि हमें किसी बात का निर्णय करने में पूरी तरह से तत्पर रहना है और निर्णय भी उसी व्यक्ति से मिलकर करेंगे जिससे सीधा सम्बन्ध है। वह निर्णय नग्न सत्य के रूप में होगा और उसी से जीवन संस्कारित हो जाएगा।

घड़ी सवा दस बजा रही है। चौदस की स्थिति अवश्य है। पर चौदस होने पर भी अधिक देर तक सुनाने पर थोड़ा ब्रेक लगा हुआ है। इस स्थिति से इस विषय को गौण कर रहा हूं। इधर मेरे सामने और भी प्रश्न आ रहे हैं कि स्थायी कथा भाग भी व्याख्यान में रखा जावे; जिससे साधारण जन मानस भी कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकें और यह ठीक भी है। भगवान महावीर ने जीवन की पुष्टि के लिये चार तरह के अनुयोग फरमाये हैं। पहला है द्रव्यानुयोग जिसमें द्रव्य सम्बन्धी पदार्थों का विषद् विवरण है। दूसरा है, गणितानुयोग जिसमें गणित सम्बन्धी विवरण है, तीसरा है, चरण करणानुयोग, जिसमें आचार सम्बन्धी बातों का वर्णन है, और चौथा है, धर्म कथानुयोग।

तो धर्म कथानुयोग भी शास्त्रों का एक अंग माना गया है। इसका कथन करते हुए प्रभु ने फरमाया कि जो साधक गहन साहित्य को नहीं समझ सकते उनको कथाभाग के प्रसंग से साधना के उन गहन सूत्रों को समझाया जा सकता है। चरित्र चित्रण के के रूप में उनको तत्व का वोध हो जाता है। रंग की डिबिया में क्या क्या चीजें रखी हुई हैं? वच्चों को यह तात्विक दृष्टि से वताने जावें कि हाथी, घोड़ा, रथ आदि सभी इस रंग की डिबिया में हैं पर वच्चे समझ नहीं पाते। जव उसी रंग को दीवार पर हाथी, घोड़ा के रूप में चित्रित करके वता दिया जाता है तो जल्दी समझ जाते हैं।

इसलिये वीतराग देव ने चार अनुयोग वताये हैं। इन सवके साथ वीतराग वाणी का सम्वन्ध जुड़ा हुआ है। जीवन के निर्माण करने में जितना योग अन्य अनुयोगों का है कथानुयोग का भी

उतना ही योगदान है। इससे सरलता से समझकर हर भाई बहन अपने जीवन की तुलना उन चरितनायकों से कर सकता है। इसी प्रसंग से सोच रहा हूं कि महाभारत के बीच का प्रसंग कथा रूप में कहता चलूँ। इसमें कमलसेन नामक एक तरुण का जीवन है। उसमें उस तरुण ने कैसी निष्ठा रखी है उसने अपना-जीवन कैसा बनाया, और जीवन के प्रश्न को किस तरह से हल किया, इसका दिग्दर्शन होगा। इसमें कुछ माताओं का भी प्रसंग आता है जो सती रूप में प्रख्यापित हुई हैं। समय का अवकाश नहीं है पर उसकी एक कड़ी उच्चारण के रूप में रख ही देता हूं क्योंकि वह आन्तरिक जीवन को परिमार्जन करने वाली है।

निज गुण सुखकामी, ध्याता है आत्म राम को।

कहा है निज गुण सुखकामी, जो अपने सुख की कामना रखता है अर्थात् अपने जीवन को समझने की भावना रखता है। उसे विकसित रूप में देखना चाहता है और जीवन की कलुषताओं का उन्मूलन करके जीवन के वास्तविक रूप को निखारना चाहता है। वह आत्माराम में रमण करता है। आत्माराम के ध्येय के बिना जीवन निर्णायक समतामय नहीं बन सकता है। इसलिये इस मंगलाचरण की कड़ी के साथ भी थोड़ा सम्वध जोड़ें।

तीन व्यक्ति माता-पिता और पुत्र तीनों अपने विचारों में मस्त हो रहे हैं और बहन को खतम करने का विचार कर रहे हैं। वह भी कन्या गरीब घराने से निकल कर करोड़पति के घर पहुंची है। पर उसकी वह तमन्ना नहीं है कि सत्ता और सम्पत्ति में डूबी रहे। वह तो यह समझती है कि यह सत्ता और सम्पत्ति और साहिबी मेरे जीवन के लिए महत्वपूर्ण नहीं है मेरे जीवन के लिये महत्वपूर्ण है तो जीवन का स्वरूप है। मैं अपने उस सही स्वरूप को कैसे प्राप्त करूँ और कैसे समझूँ इस चिन्तन को लेकर वह अपने हाल में मस्त है।

इन चार प्राणियों के बीच में क्या प्रसंग बनता है, और
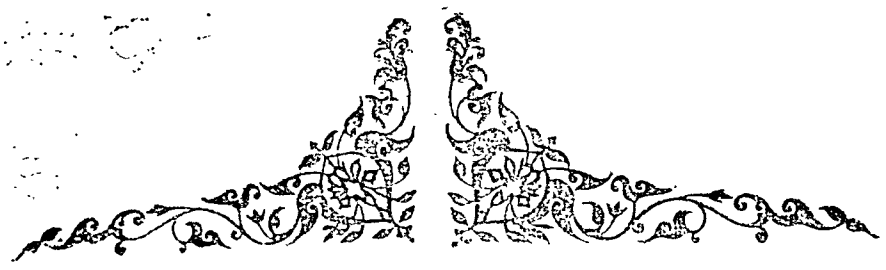
सौम्य-रश्मि शशि से परम शीतल

नवनीत से कोमल

चारित्र-चूड़ामणि

महामहिम आचार्य श्री नानालालजी म० सा०

के

चरण कमलों में

शत-शत अभिवंदन ।

केसरीचंद माणकचंद सेठिया

बापूजी का कटरा, बीकानेर

परम श्रद्धेय, प्रातःस्मरणीय

आचार्य प्रवर श्री नानालालजी म. सा.

के

ज्ञान-भक्ति एवं वैराग्य रस से ओत-प्रोत

'पावस-प्रवचन'

हम सबके जीवन में नया प्रकाश देने वाले हों।

□

दीपचन्द उत्तमचन्द

(कपड़े के व्यापारी)

गंगाशहर (बीकानेर)

पति क्या निर्णय लेता है और उस बहन पर क्या बीतती है ! यह कल के लिये रख देता हूं। इच्छा तो थी कि पूरा कर दूँ, पर समय अधिक आ जाने से इसे आगे के लिये छोड़ देता हूं। फिर प्रसंग आवेगा तो सुनाऊँगा।

आपको अन्त में इतना ही सम्बोधन करना चाहता हूं कि आप इस राजधानी के नागरिक हैं, बुद्धिमान् हैं। जीवन की स्थिति को समझने के लिए वाणी को शुद्ध करिए और कर्तव्यशील बनकर जीवन को संस्कारित करने की राह पर चल पड़िए। स्वाध्याय, सामायिक प्रतिक्रमण रात्रि भोजन त्याग व्रत पच्चखाण विधिपूर्वक करिए और इतना करते हुए ध्यान यह रहे कि जीवन के वास्तविक रूप को समझें। इसकी तैयारी चातुर्मास में निरन्तर करते रहें और इस भावना के साथ चलते रहेंगे तो आप अपने कल्याण के मार्ग को प्रशस्त बना सकेंगे।

लाल भवन
२५ जुलाई १९७२

●●

ण याणंति अप्पणो वि किन्नु अण्णेसिं।

—आ० चू० १।३।३

जो अपने को ही नहीं जानता वह दूसरों को क्या जानेगा।

---

७ | आत्मिक शान्ति

"श्री दृढ़ रथ" नृप तो पिता, "नन्दा" थारी माय।
रोम-रोम प्रभु मो भणी, शीतल नाम सुहाय॥
जय-जय जिन त्रिभुवन धणी, करुणा निधि करतार।
सेव्या सुरतरु जेहवो, वांछित सुख दातार॥

यह प्रभु शीतलनाथ परमात्मा की प्रार्थना है। प्रतिदिन प्रभु का नाम विभिन्न रूपों में आ रहा है। आज प्रभु शीतलनाथ का नाम आया। आज संसार को शीतलता की आवश्यकता है। जब तक जीवन में शीतलता का संचार नहीं होता है, तब तक मानव का मन संतप्त रहता है। कितना ही वैभव मिल जाय, कितने ही अधिकार प्राप्त हो जायं, कितनी ही डिग्रियां मिल जायं, लेकिन इन सबके मिलने पर भी शांति न मिले, शीतलता न आये तो उस व्यक्ति का जीवन, जीवन नहीं रहता। वह मनुष्य भले ही कहलाता हो, वह अपनी स्थिति से कुछ मानवीय कार्य भी करता हो लेकिन वास्तविक जीवन का जो आनन्द है, वह उसे नहीं ले पाता। इसलिए प्रभु शीतलनाथ के चरणों की उपासना का संकेत दिया गया है। हम

शीतलनाथ के स्वरूप को समझने की कोशिश करें। कवि ने प्रभु के स्वरूप का वर्णन करते हुए उपमा दी है कि—

शीतल चन्दन नी परे जपता निश दिन जाप।
विषय कषाय थी ऊपनी मेटो भव दुःख ताप ॥

भगवन् ! आप चन्दन के समान शीतल हैं शीतलता प्रदान करें, अधिकांशतः आज के मानव का हृदय विषय और कषाय की आग से जल रहा है। एक भी प्राणी ऐसा दृष्टिगत नहीं होता, जो सांसारिक अवस्था में रहते हुए विषय और कषाय की ज्वाला में न झुलस रहा हो। अधिकांश प्राणियों की स्थिति यह है कि वे मनुष्य रूप में रहते हुए भी विषय और कषाय की आग से संतप्त हो रहे हैं। उस गर्मी को शांत करने के लिए तदनुरूप किसी शीतल पदार्थ की आवश्यकता है।

बाहर से भीतर की ओर

जिस प्रकार शरीर में जब गर्मी लगने लगती है, और कुछ फुंसियां भी निकल आतीं हैं उस समय चन्दन का लेप किया जाता है। नमिराज ऋषि के वर्णन को आपने सुना होगा। उनके शरीर में दाह ज्वर की व्याधि हो गई। वे उस दाह ज्वर से जलने लगे। हाय ! हाय !! करने लगे। परिवार के सदस्यों में अशांति का वातावरण बन गया क्योंकि सब सोच रहे थे, ये हमारे स्वामी हैं, जो हम सबका संरक्षण करने वाले हैं, भरण पोषण करने वाले हैं, आज उनके शरीर में दाह ज्वर लग रहा है, हम कैसे शांति की सांस लें ? जब उन्हें ज्ञात हुआ कि वैद्य ने बावना चन्दन का लेप बताया है तो फिर उस चन्दन का लेप करने में कौन पीछे रहे, अनेक नौकर चाकर चन्दन घिसने के लिए तत्पर थे—किन्तु अंतःपुर में रहने वाली महारानियों ने विचार किया कि इस प्रकार के सेवा के लाभ से हम वंचित रहें ? स्वामी के शरीर में दाह ज्वर लग रहा है, एक ७५

व्यक्ति, एक नौकर, दो नौकर चन्दन घिसेंगे तो कितना घिसेंगे ? अतः हम सबको मिल करके यह कार्य करना है— ऐसा सोच कर महारानियां भी चन्दन घिसने में जुट गईं। जब वे चन्दन घिसने लगीं तो उनके हाथ के कंकणों की आवाज होने लगी। वह आवाज महाराजा को अच्छी नहीं लगी। महाराज कहने लगे। मेरे इस दाह ज्वर के अन्दर यह आवाज नमक का काम कर रही है, पीड़ा और भी तेज हो रही है, मेरी अशांति बढ़ रही है, हालांकि मन पर उसका असर नहीं होता, लेकिन शरीर पर असर हो रहा है। चतुर व्यक्तियों ने राणियों को सूचना दी। उन्होंने सब कंकण निकाल लिये, सौभाग्य की दृष्टि से केवल एक-एक ही कंकण रखा। फिर वे चन्दन घिसने लगीं। चन्दन घिसा गया, कुछ लेप हुआ तो महाराजा को शांति मिली। महाराजा ने पूछा—वह आवाज किसकी थी और अब बन्द कैसे हो गई ? तब उनको यह बात बताई गई, कि रानियों के हाथ में जो कंकण थे, वे आपस में टकराते थे, इसलिए आवाज हो रही थी। बाद में एक ही कंकण रख लिया गया और बाकी के सब उतार दिये गये इसलिए आवाज बन्द हो गई। महाराजा उस समय विचार करते हैं, चिंतन करते हैं, यह बावना चन्दन मेरे शरीर पर लगाया जा रहा है, लेकिन मुझे इस चन्दन के लेप के साथ-साथ सोचना यह है कि यह दाह ज्वर व्याधि आई कहां से ? किसी बाहर के व्यक्ति ने मेरे शरीर के ऊपर कोई दाह ज्वर की शक्ति छोड़ दी ? ऐसा नहीं हुआ है। अनादिकाल से लगे हुए कर्मों के संयोग से यह व्याधि हुई है। कर्मों के कारण संसार अवस्था में, परिवार, विषय और कषाय का जब तक संयोग रहता है तब तक ये सभी बीमारियाँ हैं, और इसी से यह दाह ज्वर हो रहा है। आज रानियों के हाथ के कंकड़ निकाल दिये गये तो खट खट बन्द हो गई। जब बहुत थे तब खट-खट पैदा कर रहे थे, एक रह गया तब खटखट का सवाल ही नहीं

रहा। इस निमित्त से राजर्षि आत्मचिंतन की ओर उन्मुख हुए और सोचने लगे कि आत्मा का स्वरूप परमात्मा के तुल्य है। परमात्मा इन विषय कषाय और परिवार के संयोग से सर्वथा परे हैं, जैसे वे परे हैं वैसे ही मेरी आत्मा भी प्रभु के तुल्य होने के नाते इन सबसे परे है, तो मैं इस संयोग के साथ क्यों चिपट बैठा हूं और इस अमूल्य जिन्दगी को इन विषय और कषाय की आग में क्यों जला रहा हूं। जब उनमें इस प्रकार की आत्म-जाग्रति हुई तो वे भव्य अन्तःपुर का परित्याग करके विषय और कषाय का सर्वथा नाश करने के लिए चल पड़े और उन्होंने तन मन की शीतलता के अनुभव के साथ आत्मिक शान्ति भी प्राप्त की। वन्धुओ ! आज मानव क्यों संतप्त हो रहा है। उसके मन में जो दाह ज्वर से भी भयंकर एक सन्ताप है वह संताप शारीरिक संताप की दृष्टि से नहीं है, लेकिन विषय और कषाय का संताप है। उस विषय और कषाय के संताप को समाप्त करने के लिए हम भगवान के स्वरूप का चिन्तन करें और सोचें कि हमारी आत्मा निखालिस परमात्मा का स्वरूप है, जितने वाहरी संयोग इसके साथ लगे हुए हैं, वे कंकण की तरह ही खटखट पैदा कर रहे हैं। मनुष्य जितने जितने वाहरी पदार्थ पकड़ने की कोशिश करता है, वह उनके बँधन में बँधता चला जाता है। जितनी अधिक विषयों की लालसा रखता है उतना ही वह अन्तर ताप को वढ़ाता है, वेचैनी वढ़ाता है—चाहे भव्य भवन हो, सुन्दर शय्या हो, लेकिन विषय और कषाय की आग उसके मन में लग रही है तो उसको निद्रा नहीं आयेगी, वह हाय हाय करता हुआ शय्या पर करवटें वदलता रहेगा। रावण राजा के सोने के लिए कोमल फूलों की शैय्या विछी हुई है लेकिन उसे निद्रा नहीं आ रही है, वह करवटें ले रहा है, उसे शारीरिक दुख नहीं था। लेकिन विषय और कषाय की आग में वह जल रहा था। वह सोचता है कि मैं परिश्रम करके राम की रानी को वगीचे में ले आया हूं, लेकिन वह मेरे नियन्त्रण में

आ रही है। रावण इस प्रकार के भव्य भवन में रह कर रावण जैसे व्यक्ति भी जब संतप्त हो सके हैं, तो आप सोचिये कि संसार के मनुष्यों की क्या दशा होगी,आज दुनियां में अशांति है,गर्मी है,ताप है—इसके कारण को सोचा जाय तो विषय कषाय की ज्वाला ही उसका कारण परिलक्षित होगा। यह भयंकर ज्वाला है, इस ज्वाला से छुटकारा पाना सहज काम नहीं है। इससे छुटकारा तभी हो सकता है, जब इन्सान आत्मिक तत्व के विषय में स्थाई रूप से सोचे, और समझे—मेरी आत्मा अखण्ड है, मेरी आत्मा इन विषय कषायों से परे है—इस प्रकार के निर्णय की एक निर्णायक शक्ति जिस व्यक्ति में आती है वह विषय कषाय की ज्वाला से ऊपर उठ सकता है। यह शक्ति कब आयेगी ? जब जीवन का निर्णय करेगा, जीवन का स्वरूप समझेगा।

सम्यग्र परिभाषा

मैंने कल जीवन की परिभाषा की थी, एक परिभाषा पहले भी रखी थी, जहां प्रश्न उठा था—किं जोवनम् ? जीवन क्या है ? इसको समझने का प्रयास करना है। जो जीवन का स्वरूप है, जीवन की परिभाषा है, वह परिभाषा इस प्रकार है।

सम्यग् निर्णायक्कं समता मयंञ्च यत् तज्जीवनम्

जो सम्यक् निर्णायक है, जो समतामय है—वही जीवन है। सम्यक् निर्णय किस बात का ? इस विषय की कल बात अधूरी रह गई थी, लेकिन निर्णय करना आवश्यक है। जब तक मन में सम्यग् निर्णय नहीं होगा। तब तक आधि व्याधि, बाहरी ताप नही हटेगा। जिन्होने आत्म-निर्णय किया, संसार का निर्णय किया—वे निर्णय करके गंतव्य मार्ग पर आगे बढ़े। आज के मानव को शीतल नाथ भगवान के चरणों में बैठ कर जीवन का निर्णय करना है, जीवन को समझना है। जीवन वह है, जो स्व-पर का निर्णायक हो। निर्णायक

होने के नाते निर्णय की शक्ति को पहले समझना है। जहाँ आत्मा का स्वरूप आता है, आत्मा की शक्ति का विश्लेषण आता है—वहां कुछ मतभेद है। कुछ दार्शनिकों का कथन है कि आत्मा नाम का तत्व कहां है, जो कि निर्णय करें ? आत्मा हमको दिखती नहीं है। जो पांच इन्द्रियों से नहीं दिखती है उसको कैसे मानें ? इन्द्रियों से परे दुनियां की बहुत चीजें हैं, लेकिन हम मानने को तैयार नहीं हैं। आज विज्ञान बढ़ा चढ़ा हुआ है। वैज्ञानिक दृष्टि से लोग परीक्षण कर रहे हैं। लोग सोचते हैं, बस, विज्ञान की तुला पर जो चीज ठीक उतर जाय वही सही तत्व है। विज्ञान की तुला पर सही नहीं उतरे तो वह सही नहीं है। इस प्रकार जब विज्ञान प्रत्यक्ष वस्तु का प्रमाण देता है, प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मान कर चलता है तो हम अप्रत्यक्ष को कैसे मानें ? इस प्रकार की विचाराधारा चलती है। जब उनसे कहा जाता है कि भाई ! तुम सोचो, जब आत्मा नाम का तत्व नहीं है, तो जीवन क्या है ? बिना जीवन के शुभ-अशुभ का निर्णय कैसे हो ? जैसा कि आप सोच रहे हो प्रत्यक्ष जो दिखता है वह सब सही है तो यह भी एक प्रकार का निर्णय ही है। तो बताइये यह निर्णय लेने वाला कौन है ? उनका उत्तर आता है, यह निर्णय लेने वाला यह शरीर है ? शरीर के अतिरिक्त कोई तत्व नहीं है। **"शरीरमेव निर्णायकम्।"** शरीर ही निर्णायक है। वे ऐसा तर्क देते हैं। वह तर्क इस रूप में देते हैं—शरीर को निर्णायक मानते हैं क्योंकि यह पांच भूतों से बना है, पांच भूतों से शरीर बनने के बाद इसमें निर्णायक शक्ति तैयार हो गई। हम उस शक्ति से निर्णय लेते हैं, अतः हम प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हैं। वे इस तर्क के साथ अपनी बात का पोषण करते हुए यह उदाहरण देते हैं कि जैसे अलग-अलग महुवा आदि द्रव्यों में मादकता नहीं है किंतु उनके संयोग में मादकता उत्पन्न हो जाती है। वैसे ही इन पांच भूतों के सम्मेलन से निर्णायक शक्ति का सर्जन हो जाता है।

क्या शरीर निर्णायक है ?

अपनी निर्णायक शक्ति का पता लगाना बड़ा ही कठिन काम है। अपना ज्ञान होने पर ही अपने निर्णायक का विश्वास जागता है। अपना ज्ञान और अपना निर्णायक, शाब्दिक दृष्टि से पृथक-२ दो शब्द अवश्य हैं। किन्तु जहां लक्ष्य का समाधान होता है दोनों एक ही भाव के प्रतीक हो जाते हैं! इस विषय में अनेक लोगों के अनेक विचार हैं अनेक धारणाएँ हैं। कुछ यह कहते हैं कि–आपके सामने घड़ी है। वह टाइम बताती है। लेकिन जव इसके पुर्जे अलग-अलग थे तब तक वह घड़ी बोलती नहीं थी, आवाज नहीं देती थी जैसे ही पुर्जे एकत्रित हो गये वैसे ही इसमें खटखट की आवाज आने लगी, वह बोलने लगी, अब घड़ी इतना टाइम बता रही है। जैसे घड़ी में टाइम देने की स्थिति आ गई वैसे ही शरीर में पांच तत्वों के मिलने से आवाज आ गई। यह घड़ी इस कथन की पुष्टि करती है। इस प्रकार के चिन्तन वाले कुछ भारतीय भी हैं और कुछ पाश्चात्य विद्वान भी हैं। जो जड़वादी हैं। उनमें थैलिस और एनाक्सीमान्डर, तथा ऐनाक्सीमेनेश आदि मुख्य हैं। वे अपनी मान्यता की दृष्टि से यह चिन्तन करते हैं। इस विषय में आपको भी चिन्तन करना है क्या इन जड़वादियों का जो कथन है वह वस्तुतः सत्य है? आपके सामने भी ऐसे कुछ विचारक व्यक्ति आ सकते हैं और कुछ ऐसे सम्भावित प्रश्न खड़े कर सकते हैं। यदि आप अपने जीवन के निर्णायक स्वरूप को समझे हुए नहीं होंगे तो आप उसका उत्तर नहीं दे पायेंगे और आप लड़खड़ा जायेंगे। इस तरह आप शान्ति के मार्ग से भटककर मानसिक अशांति में उलझ जायेंगे। निर्णायक शक्ति शरीर ही नहीं है यह जो कथन है कि "शरीर मेव निर्णायकम्" इस पर कोई विचारवान् व्यक्ति पूछ सकता है यदि शरीर ही निर्णायक है तो मुर्दा शरीर भी निर्णय करेगा। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो उसकी निर्णय करने की शक्ति कहां चली

गई ? पांच भौतिक तत्व तो उसमें विद्यमान हैं ही। इससे यह स्पष्ट होता है कि पांच भौतिक तत्वों के अतिरिक्त स्वतन्त्र निर्णायक शक्ति है। यदि कोई कहे कि वह दिखती क्यों नहीं है तो उसका यह सोचना उस आदि युग की तरह का है। आज तो वैज्ञानिक युग भी चल रहा है जो वैज्ञानिक युग का प्रमाण देते हैं वे सिर्फ आँखों से दिखे उसी को तत्व मानते हैं, ऐसा नहीं है। उनकी दृष्टि लम्बी चौड़ी जा रही है। वे प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अनुभवों को भी मानते हैं। अतः शरीर ही निर्णायक है और वही जीवन है यह युक्तिसंगत नहीं है। पूर्व में जो महुवा आदि का उदाहरण दिया गया था वह यहाँ पूणरूप से घटित नहीं होता है। क्योंकि महुवा आदि जिन पदार्थों से मदिरा बनती है उनमें किसी न किसी रूप में मादकता पहिले ही विद्यमान होती है वही संकलित रूप में 'मदिरा' कहलाती है। जैसे प्रत्येक तिल में पृथक-पृथक थोड़ा-थोड़ा तेल रहता है। उन तिलों को एकत्रित करके पेर दिया जाय तो उसमें से अधिक तेल निकल आयेगा। यद्यपि पहले उसमें तेल नहीं दिखता था किन्तु अधिक तिलों को पेर दिया तव तेल संग्रहित हो गया। वह तेल कोई नई चीज पैदा हो गई ऐसा नहीं है। वह तो तिलों में, पहिले था ही लेकिन उस प्रकार का अंश वालु में नहीं है। रेत को कितना ही इकट्ठा किया जाय उसमें कुछ भी निकलने वाला नहीं है। पाँच भूतों में प्रत्येक में चैतन्य नहीं है अतः उनके मिलने पर भी चैतन्य उत्पन्न नहीं हो सकता। यथा: वालु रेत। अतः मदिरा का रूपक यहां युक्ति संगत नहीं है। यदि यह कहा जाय कि कुछ तत्वों के मिलने से निर्णायक शक्ति उत्पन्न हो जाती है, तो यह सामने घड़ी लगी हुई है, इसमें अनेक पुर्जे लगे हुए हैं, यह आवाज भी कर रही है, क्या इतने मात्र से इसमें निर्णायक शक्ति मान ली जाय ? किन्तु ऐसा नहीं है, घड़ी अपना स्वयं निर्णय नहीं दे सकती, उसका निर्णय करने वाला तो कोई और ही है, और वह है घड़ी साज ! यह घड़ी है इसमें घड़ी साज और घड़ी अलग २ तत्व है। घड़ी साज के बिना घड़ी में

कोई कार्यवाही नहीं वनती है—घड़ी साज के विना उसमें आवाज नहीं होती। घड़ी साज समझता है कि यह घड़ी है। घड़ी के पुर्जे और कांटे को वह यथास्थान रखता है। यह निर्णायक शक्ति उस घड़ी से भिन्न उस घड़ीसाज में है इसलिये निर्णायक अलग है। इसी प्रकार घड़ी के समान यह शरीर बना है लेकिन इसका बनाने वाला घड़ी साज की तरह वह निर्णायक आत्मा है। वह इस शरीर से भिन्न है। और वर्तमान में वह दूध पानी की तरह शरीर से ओत-प्रोत होकर चल रहा है। अतः शरीर मेव निर्णायकम् यह सिद्धान्त नितान्त हास्यास्पद है। साथ ही दूसरा जो यह कहा गया था कि "प्रत्यक्ष ही प्रमाण है" उनसे मैं पूछना चाहूंगा कि आपके १० पीढ़ी के दादाजी थे कि नहीं ? प्रत्यक्ष तो हैं नहीं, तथा आपने उन्हें आंखों से भी नहीं देखा है फिर आप कैसे मानते हैं कि हमारे दादाजी थे; किन्तु आपको बाध्य होकर अनुमान से ऐसा मानना ही पड़ता है। उस समय आप प्रत्यक्ष पर ही स्थिर नहीं रह सकेंगे। आप यह कहेंगे कि वर्तमान में जो हम अपना शरीर देख रहे हैं इस शरीर का सम्बन्ध हमारे पिता के साथ है, और वे हमारे सामने मौजूद हैं इससे स्पष्ट है कि पिताजी के पिताजी भी थे और उससे आगे उनके भी पिताजी थे। इस प्रकार दादाजी तक सम्बन्ध का तारतम्य जुड़ जाता है। यह अनुमान का विषय है। जव आप वैज्ञानिक स्थिति से चिन्तन करते हैं तो वैज्ञानिक भी जहां अदृष्ट की खोज करते हैं तो वे भी अनुमान का सहारा लेते हैं। वैज्ञानिकों का यह विश्वास है कि इस विश्व में कोई ऐसी शक्ति अवश्य है जो सृष्टि के लिये रहस्य बनी हुई है, जिसे खोजना है, इसके लिए उनकी दौड़ धूप चल रही है और अनेक वैज्ञानिक इस रहस्य को जानने के लिये अपनी जिन्दगी तक समाप्त कर चुके हैं। तब कहीं जाकर कोई नया आविष्कार होता है, अतः विज्ञान भी अनुमान के आधार पर ही नई-नई खोजें करता है। इसलिये प्रत्यक्ष जो इन्द्रियों का विषय है वह इन्द्रियों तक ही सीमित है। इन्द्रियों के

सम्मुख जो पदार्थ हैं उनको भी हम पूरा नहीं देख पाते हैं। अभी आप यहां बैठे हुये हैं, इस लाल भवन में आप क्या-क्या देख रहे हैं? आपसे अलग अलग प्रश्न किया जाय कि आपको क्या-क्या दृष्टिगत हो रहा है? आपकी आँखें क्या देख रहीं हैं? तो उत्तर आयेगा दीवार को देख रही हैं, खम्भे देख रही हैं, दीवार पर टंगी घड़ी देख रही हैं, और जो भाई बहिन यहां बैठे हुये हैं, उन्हे भी देख रही है, लेकिन इसके अतिरिक्त एक पोलार है, क्या इसमें कुछ देख पा रहे हैं। क्या इस पोलार में कोई तत्व नहीं है। आप ऐसा न सोचें, क्योंकि इसमें भी एक तत्व है। इसमें ठसाठस पुद्गल भरे हुये हैं और वे भी असंख्य हैं। शास्त्र की दृष्टि से और वीतराग की दृष्टि से इसका आप थोड़ा सा अनुमान कर सकते हैं। ऊपर देखें तो आपको इस छोटे से छेद में से आकाश दिखाई देता होगा। इसमें से सूर्य की किरणें आ रही हैं, इन किरणों में आपको असंख्य तूतड़े उड़ते हुए दिखेंगे ये तूतड़े इतने सूक्ष्म हैं कि दुग्धादि पदार्थों में पड़ते समय आपको उनका भान नहीं हो पाता है। ये तूतड़े सारे कमरे में विद्यमान हैं वे आपको केवल सूर्य की किरणों में ही दीख पड़ रहे हैं। छाया में उन्हें आप नहीं देख पाते। आगे की स्थिति लीजिये, आप बादल देख रहे हैं, आप दूसरी चीजें देख रहे हैं। कुछ आंख से नहीं दिखने वाली चीजें हैं, उनके लिए शक्तिशाली दूर वीक्षण (माइक्रोस्कोप) यंत्र का प्रयोग होता है उससे आकाश में विद्यमान तत्वों को देखा जाय तो बहुतेरे तत्व आपको दिखने लग जायेंगे।

पानी में भी जीव हैं?

वीतराग देव ने आध्यात्मिक जीवन दृष्टि से यह बतलाया है कि पानी की एक बूंद में असंख्य जीव हैं, लेकिन एक बूंद पानी में असंख्य जीव हैं—इस बात का प्रमाण प्रत्यक्ष नहीं है। नास्तिक लोग इसे 'गप्प' मान सकते हैं। क्योंकि पानी के जीव उन्हें प्रत्यक्ष नहीं

दीखते हैं, उनका कहना है कि पानी जड़ है, उसमें जीव कहां हैं। नास्तिक व्यक्ति के साथ कुछ विवेकी व्यक्ति होते हैं, जो आस्तिक कहलाते हैं वे भी कह देते हैं, हाँ साहब? यह तो गप्प ही है, हम इसे नहीं मानते हैं। वह कहते हैं, शास्त्र में यदि कोई बात गलत आ गई हैं तो उसको कैसे मानें? हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं, पानी की बूंद हाथ में लेते हैं तो उसमें कुछ भी नहीं दिखता है। जो मानते हैं वह रूढ़िवादी हैं। किन्तु उस समय श्रद्धालु व्यक्ति, जो शरीर को निर्णायक नहीं मानने वाला है, शरोर से भिन्न आत्म तत्व को स्वीकार करने वाला, यही कहेगा नहीं, वीतराग देव ने जो कहा है, वह भले ही हमारी समझ में न आये भले ही आंख से दृष्टिगत नहीं होता हो, किन्तु वह सत्य है, तथ्ययुक्त है। ये दोनों कल्पनाएं पूर्व में चला करती थीं किन्तु आज वैज्ञानिकों ने ऐसे यंत्र तैयार कर लिए हैं, जिनसे एक बूंद पानी मेंचलते फिरते अनेक जीव दिखाई देते हैं। जो व्यक्ति कच्चा पानी पीते हैं, बिना छना पानी पीते हैं, न मालूम कितने जीवों को हजम कर जाते होंगे,इसीलिए कहा जाता है कि बिना छना पानी नहीं पीना चाहिए। जो अज्ञानी हैं, जो नहीं समझते हैं, जो जीवन को संस्कारित करना नहीं चाहते हैं, जिनका जीवन निर्णय करने में असमर्थ है—ऐसे व्यक्ति भले ही बिना छना पानी पीते हों लेकिन जिनके मन में यह है कि हम निर्णायक हैं, हम समझते हैं, वे तो संभवतः बिना छाना पानी नहीं पीते होंगे। तो मैं बता रहा था कि कुछ दृष्टि से परे भी तत्त्व है, जिनमें से कुछ को वैज्ञानिक साधनों से देखा जा सकता है, चींटियाँ जब चलती हैं तो उनको पहले सुगन्ध आती है, वे उसके सहारे चल कर किसी चीज को खाने की कोशिश करती हैं। चींटी यह सोचती है, जितना खाना खा रही हूं, जितनी सुगन्ध आ रही है, इतनी ही दुनियाँ है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं है। यह चींटियों का अज्ञान जो इस तरह सीमित है, वह समग्र दृष्टि से नहीं सोच पाती हैं। दयालु उन्हें परे हटा देता है,

लेकिन उसके पास सोचने का मस्तिष्क नहीं है जिससे कि जान सके, मेरे को हटाने वाला और है वह मुझ से भिन्न है। जो चींटियों की दशा है, वैसी ही करीब-करीब कुछ विकारी के साथ मक्खी-मच्छर, और पशु की है। पशु भी सोचता है, सिर्फ पशु जगत है, उससे आगे कुछ नहीं। इसी प्रकार मनुष्य भी यही समझले कि मेरे सामने जितनी सृष्टि है वही सब कुछ है उसके आगे सृष्टि नहीं है। उन्हें उन चींटियों के समान माना जा सकता है, उनके पास दृष्टि अवश्य है, बुद्धि भी है लेकिन कितना सोच पाते हैं। उन्होंने ज्ञान का क्या विकास किया है। जिन्हें जीवन का लम्बा चौड़ा स्वरूप ज्ञात नहीं। उन्हें मैं क्या हूं? जीवन क्या है? निर्णायक शक्ति क्या है? यह पता नहीं है। वे इन्सान अदृष्यगृह्य शक्ति को कैसे जान सकते हैं। किन्तु आज के वैज्ञानिक ऐसा नहीं करते हैं, वे सोचते हैं, जितनी खोज हमने की है उतनी ही काफी नहीं है। उसके परे भी है। वे सोचते हैं, अभी हम बचपन की स्थिति में चल रहे हैं। इससे आगे और चीजें हैं जो कि महत्वपूर्ण हैं। उनका जीवन और दिमाग खुला हुआ है। लेकिन विज्ञान का अध्ययन करने वाले, अखबार में पढ़ने वाले, इधर उधर की पुस्तकों का अध्ययन करने वाले—वे सब यह समझ कर नहीं चलते हैं। वैज्ञानिक तो समझते हैं कि हमारा अभी बचपन है लेकिन पाठक समझते हैं, वैज्ञानिक देवता बन गये हैं, वैज्ञानिक जो कहते हैं वही सब कुछ है। इस प्रकार का निर्णय करना जीवन का निर्णय नहीं है। जीवन की शक्ति का निर्णय नहीं है। जो एक प्रश्न चल रहा है—मेरा है— कि जीवनम्? जीवन क्या है? पहले इसकी एक अधूरी परिभाषा रखी थी, अब एक दूसरी परिभाषा चल रही है।

अनिर्णय से निर्णय बोला

मैं जीवन की समग्र परिभाषा के विषय में आपसे कुछ कह रहा था। आप जीवन में निर्णय शक्ति को जीवित कर लें, उसको

की कोशिश कर लें तो जीवन के शिखर तक पहुंच सकते हैं,जीवन के प्रश्न को हल कर सकते हैं। जोवन क्या है ? इस स्थिति को जिसने समझा है वह व्यक्ति ठीक तरह से चल पड़ा है। जिसने नहीं समझा है वह भौतिकवाद पर चला, जीवन के झंझावात में फँसा और विषय और कषाय को आग ने उसे जलाने की कोशिश की। कल मैं एक रूपक रख रहा था। उसमें प्रसंग चल रहा था कि इधर सासू, ससुर और पतिदेव इन तीनों की निर्णय शक्ति गायब है, सबकी निर्णायक शक्ति योग्यता की दृष्टि से विद्यमान है, लेकिन मन असंस्कारित है। हीन दृष्टि से उन्होंने सोच लिया, एक व्यक्ति ने अर्थात् सासु ने जो कह दिया, वही ठीक है। वही गोविन्द करे। माता पिता जोर देकर कह रहे थे, गोविन्द, तुम्हें हमारी बात माननी पड़ेगी। तुम इस प्रकार हमारे से अलग नहीं रह सकते। तुम सोचते हो, यह कन्या तुम्हें बहुत प्रेम करती है, तुम्हारे प्रति स्नेह दिखाती है लेकिन यह इसका कपटयुक्त चलन है। इसके जीवन पर तुम्हें विश्वास नहीं करना चाहिए। तुम बिना स्त्री के रह जाओ तो भी कोई बात नहीं। तुम्हें और कन्या मिल जायेंगी, तुम फिक्र मत करो। हमारी बात को समझ कर निर्णय शीघ्र करो। आखिर वह तरुण विनयशीलता के साथ दबा हुआ माता पिता के समक्ष बोल नहीं सकता, उसने दबे स्वर से कहा, पिता श्री, आप और मातु श्री जो बोल रहे हैं। मैं इसको तथ्य-युक्त समझ लूँ लेकिन तथ्ययुक्त समझने के पश्चात् मुझे क्या करना है। आगे तो समझा दीजिये। तो माता बोल उठी, पुत्र क्या करना है ? इसको समाप्त करना है। माता मनुष्य की हत्या, और वह भी पत्नी की हत्या, उसको समाप्त करने का यह संकल्प अटपटा सा लग रहा है। अगर वह अशिष्ट है, और आपकी दृष्टि में ठीक नहीं है तो उसको क्यों नहीं उसके पिता के यहां भेज दिया जाय। पुत्र का उत्तर सुनकर माता कहने लगी, पुत्र तू नहीं समझता है। यह बद-चलन स्त्री है, यह अभी अपने परिवार वालों को मालूम नहीं हुआ है,

सम्बन्धियों को भी ज्ञात नहीं हुआ है, लेकिन जब इसको वहां भेज देंगे और कुछ दिन तक नहीं लायेंगे तो वाद में लोगों में चर्चा का विषय बनेगा। इससे हमारा मुँह काला हो जायगा इसलिए पिता के यहां छोड़ना ठीक नहीं है। इसका तत्काल इलाज करना है। आज सूर्य अस्त हो उसके पहले पहले। गोविन्द ने कहा, माता श्री ! मैं नहीं समझ पा रहा हूं। कैसे इलाज हो। इतने में पिता चिन्तन करके कहता है, पुत्र मेरे मस्तिष्क में एक उपाय आ गया है। जंगल के बीच में एक अपनी बगीची है, उस बगीची अन्दर पेड़ों के बीच में एक भयंकर कुआ है। इसको तुस बगीची की हवाखोरी करने की दृष्टि से वहां ले जाओ और कुए के नजदीक ले जाकर कुए में धक्का दे देना। जब कुए में गिर जाय तब कुछ देर तक तो मत बोलना। थोड़ी देर के बाद हल्ला करना। कुछ रोना, हाय यह क्या हो गया, मेरी पत्नी कुए में गिर गई। जितने प्राणी वहां होंगे उन तक तुम्हारी पुकार पहुंच जायगी। बगीची के जो रक्षक हैं वे हमारे पास पहुंचेंगे। हमारे पास समाचार आयेगा तो हम भी पहुंच जायेंगे। और सब कार्य ठीक हो जायगा। यह उपाय ठीक लगा। आप देखिये, यह निर्णय हो रहा है। यह कैसा निर्णय हो रहा है ? यह संस्कारित जीवन का निर्णय है ? यह जीवन का निर्णय है या अंधकार का निर्णय है ? आप सोचेंगे, ऐसा कृत्य नहीं हुआ होगा। आज के जमाने में ऐसे कृत्य नहीं होते हैं ? मैं क्या वताऊँ, मेरे कानों में ऐसे कुछ कुछ शब्द आ जाते हैं। वैसे कृत्य नहीं होते हैं, लेकिन चाँदी के टुकड़ों के लिये इससे भी भयंकर कृत्य होते हैं। सुनने को मिला, एक कन्या का विवाह हुआ। उसके वाद ससुराल वालों के मन में आया, इस कन्या के साथ पैसा कम आया है। इसको खत्म करो। दूसरी कन्या के साथ विवाह करेंगे तो और पैसा आयेगा। इस कारण उस कन्या को जला दिया है या दूसरे तरीके से खत्म कर दिया जाता है। ये ऐसे अन्याय और अत्याचार कभी कभी कर्णगोचर होते हैं। आप

कहेंगे, महाराज, कहानी बहुत होती हैं। कहानी का जिक्र मैं कर रहा हूं, वह मैं इसलिए कर रहा हूं, जीवन अंधकार में पड़ा हुआ है, आप कहेंगे अंधकार क्या है ? अंधकार ऐसी वृत्तियां हैं, इस प्रकार की मानसिक भावना है जिनके कारण मानव जीवन को नहीं समझ पा रहा है, ठीक तरह से निर्णय नहीं कर पा रहा हैं। ऐसी अवस्था में मैं धर्म समझाऊँगा तो किसको समझाऊँ। जो अज्ञानी हैं जिनका अज्ञान का पर्दा नहीं हटा है वे जीवन को क्या समझेंगें।

और जो कुछ होगा धर्म पर आयेगा और धर्म पर आयेगा तो वास्तविक दृष्टि के रूप में होगा। फिर भी मैं धर्म की परिभाषा को सरल करने की कोशिश कर रहा हूं। वह निर्णायक शक्ति आपके मस्तिष्क में तभी आयेगी जब आप अज्ञान से रहित होंगे। जब आप समझ जायेंगे कि अब ब्लेक मनी कमाने की आवश्यकता नहीं है, काला बाजारी करने की आवश्यकता नहीं है, आदि पर शान्ति के क्षणों में जब इस प्रकार की भावना बनेगी तब कार्य बन सकेगा। इस भावना से ही सन्त भी कहते हैं पर उसका असर सुनने तक ही रहता है उसके बाद वही दौड़ धूप उसी ढंग से चल पड़ती है। और उसी वातावरण में रहते हैं। आप यह कहें कि ऐसी बातें नहीं कहूं तो फिर कौनसी बातें कहूं। ऊंची ऊंची बाते कहूं तो आप सुनेंगे नहीं। क्योंकि वे बातें आपके दिमाग में बैठती नहीं है कारण स्पष्ट है कि दिमाग में अन्यान्य बातें भरी रहती हैं। आप यह जानते हैं जिस मकान में बैठना है उसमें पहले झाडू देते हैं। उस मकान को साफ करते हैं। फिर उसमें बैठते हैं उसी तरह आप अपने दिमाग को भी झाडू देकर बैठें। आपको इस बात पर कुछ चिन्तन करना है। आज का मानव अपने आप में दरिद्री बना हुआ है। कैसे निम्नस्तर की भावनायें उसके दिमाग में घर कर रही हैं, जो किसी तरह कन्याओं को जलाकर स्त्रियों को मारकर पैसा कमाने के लिए नये-नये विवाह करें—क्या आप उनको मनुष्य कहेंगे। न जाने आप तो

सर्टिफिकेट देंगे या नहीं, लेकिन ज्ञानी जन तो देंगे। ज्ञानी जन कहेंगे यह जीवन का निर्णायक स्वरूप समझने वाला नहीं है।

सत्य सिहर उठा :

मैं अब आपके सामने उन तीन प्राणियों माता, पिता और पुत्र की बात रख रहा हूं। पिता ने निर्णय लिया और पुत्र को कहा कि पुत्र वधू को दूर जंगल में ले जाना है और वहां जाकर इसकी हत्या करनी है। उन्होंने चरित्र की शंका के कारण यह कार्य किया, पैसों के लिये नहीं किया। पुत्र ने दबे मन से पिता की बात स्वीकार की और अपनी पत्नी के कमरे में गया। ऊपर से कृत्रिम मुस्कराहट को लेता हुआ अपनी पत्नी से कहता है कि प्रिये, बगीचे में घूमने को गये वहुत दिन हो गए चलो आज बगीचे में घूम आयें। वह पवित्र हृदय वाली जिसके मन में कपट नहीं है, छल नहीं है और अपने पति देव को ही सर्वस्व समझने वाली है। कहती है प्राण नाथ, जैसी आपकी आज्ञा। मैं सदैव आपकी आज्ञा के लिये हाजिर हूं। पति देव ने कहा—चलो तैयार हो जावो। वह वस्त्र पहिन कर चट से साथ हो गई। घर से बाहर निकलकर तांगा लिया और दोनों उसमें बैठ गये। पतिदेव कुछ कृत्रिम बातें करते हुए जा रहे थे और मन में उथल-पुथल मची हुई थी लेकिन उनकी प्रिया के मन में न तो किसी प्रकार की उथल-पुथल थी और न किसी प्रकार की घवराहट थी। वह गंभीरता से बैठी हुई थी। चिन्तन कर रही थी, मेरा सौभाग्य है जो मुझे ऐसे पतिदेव मिले हैं। बगीचे में जाकर दोनों घूमने लगे लेकिन गोविन्द के मन में तो उथल-पुथल मची हुई थी। वह अलग ढंग से चल रहा था। कभी कुछ चिन्तन करता है तो कभी कुछ सोचता है। यह अवोध वाला आज मेरे साथ किस प्रकार का वर्ताव कर रही है और मैं आज कैसा निष्ठुर वन रहा हूं। मैं पत्थर का वन कर माता-पिता की आज्ञा को स्वीकार करके

इसके जीवन को समाप्त करने को तैयार हो रहा हूं। वह अपने आप में सोचता है हाय गोविन्द क्या तू मानव है? या दानव है—वह अपने आपको कोस रहा है, लेकिन उसके दिमाग का पर्दा नहीं हट रहा है। ऊपर से मुस्कराहट की वात करता रहता है। वह अपनी प्रिया से कहता है कि प्रिये, वहाँ पानी से भरा हुआ एक कुआ है, वहां चले। वह अपने पैर लड़खड़ाता हुआ पत्नी को लेकर उस कुए की पाल पर पहुंचता है। पाल पर पहुंच कर वह अपनी पत्नी की ओर देखता है और मन में विचार करता है हाय आज तू हत्यारा बनकर अपनी पत्नी को कुए में धक्का देकर उसका प्राणघात करेगा। पत्नी कहती है यह कितना भयावह दृश्य है, कितना बियावान जंगल है किन्तु आप मेरे साथ हैं इसलिये मुझे किसी बात का भय नहीं है, बाकी एकाकी आ जायँ तो हार्ट फेल हो जाय लेकिन मुझे निश्चिन्तता है क्योंकि मैं पतिदेव के चरणों में हूं। भयानक से भयानक जंगल भी हो तो मेरा कल्याण है। इन बातों को सुनकर उसका दिल दहल गया और सोचता है कि जिस पत्नी के साथ मैं इतने दिन तक रहा, कभी दुर्लक्षण नहीं देखा। कदाचित कुछ होता तो कुछ संकेत मिलते। कुछ समझ में नहीं आ रहा है। यह तो मेरे प्रति इतना विश्वास लेकर चल रही है, मुझे परमेश्वर के तुल्य समझ कर चल रही है, फिर यह सारा प्रसंग कैसे बन रहा है, इस प्रकार के कुछ शब्द सहसा उसके मुँह से निकल पड़े तो वह कहने लगी प्राण नाथ, यह विश्वास आज का नहीं है बहुत पहले का है जबकि मैं अपने घर पर पिता के पास रहती थी उस वक्त मुझे माता का संस्कार तो पूरा नहीं मिल पाया लेकिन पिता श्री मुझे सत्संग में ले जाते थे और कभी कभी सन्तों से प्रश्न किया करते थे। प्रश्नों के साथ-साथ कभी यह प्रश्न भी रख देते थे कि महात्मन्? यह वतायें पुरुष तो अनेक तरह की धर्म क्रियायें करके अपने जीवन

का उद्धार कर सकते हैं लेकिन यह अबला ! जाति अपने जीवन का उद्धार किस प्रकार कर सकती है ?

अबला, नहीं सबला है ।

साधारण भाषा में नारी को 'अबला' भी कहा जाता है। जहां तक विशुद्ध आत्मिक दृष्टि का प्रश्न है, यह शब्द उपयुक्त नहीं लगता ! हां, जब आत्मा अपनी शक्ति को भूल बैठती है, ऐसी स्थिति में उसे 'निर्बल' संज्ञा मिल जाती है। किन्तु यह संज्ञा उसकी वास्तविक संज्ञा नहीं है ! यही तथ्य अबला के विषय में जान लेना उपयुक्त रहेगा। संत पुरुषों का कथन है कि—नारी जाति में भी वह शक्ति है, जिसके द्वारा वह जीवन के सही रूप को पाकर अपना उद्धार कर सकती है। साध्वी बनकर, तपचर्या करके अपने जीवन का उद्धार कर सकती है। पिता श्री यह कहते नारी जाति किस प्रकार अपने जीवन को रखे ? तब महात्मा जी ने कहा—नैतिकता की दृष्टि से हर बात को सोचे—विचारे और गृहस्थ धर्म में रहते हुये भी पूर्ण पतिव्रत धर्म का पालन करना चाहिये और एक पतिदेव को ही अपने जीवन का सर्वस्व समझना चाहिये। जो स्त्री अपने धर्म का पालन करती हुई अपने जीवन को पतिनिष्ठ होकर रखती है वह आध्यात्मिक शक्ति को प्रवाहित करती है। वह धर्म पत्नी के रूप में रहे, पाप पत्नी के रूप में नहीं हो और उस पत्नी का यह कर्तव्य होता है कि मेरे पतिदेव गैर रास्ते पर न चले जायँ मेरे पति कोई बुरा काम न करें। ऐसा आध्यात्मिक जीवन का उत्तरदायित्व वह धर्मपत्नी लेकर चलती है। इसलिये शास्त्रों में उसे धर्मपत्नी कहा गया है-धर्म सहायक कहा गया है। परिवार के सारे संस्कार एक अच्छी पत्नी पर आश्रित होते हैं इसलिये ग्रहस्थाश्रम में रहते हुए भी अपने जीवन की शक्ति को सम्पादित करना चाहिये, तभी वह जीवन के वास्तविक

स्वरूप को समझ सकती है। ये सब बातें मैंने सत्संग में सुनी, जो आज कुछ मेरे जीवन में आ गई है। बचपन के अन्दर बच्चों में जो संस्कार बन जाते हैं वे दीर्घकाल तक रहते हैं। आज तक मेरे मन में भी वे संस्कार पड़े हुए हैं। इसलिए बार-बार कहा जाता है कि बाल बच्चों को प्रारम्भ से ही धार्मिक शिक्षण देना चाहिए, जितना आध्यात्मिक जीवन का शिक्षण दिया जाए उतना ही उनका जीवन आगे जाकर सुन्दर बन सकता है। वह शिक्षण आज कितनी मात्रा में हो रहा है? मां-बाप कितना अपने बच्चों को सम्भाल रहे हैं? आज कितना धार्मिक शिक्षण दिया जा रहा है। यह तो एक-एक व्यक्ति से हिसाब लिया जाय तो पता लगे। इन्सान की निर्णायक शक्ति जिस रूप में और जिस रफ्तार से चल रही है वह बेढंगी है। मैं इस विषय पर ज्यादा नहीं कह रहा हूं सिर्फ यह कहना चाहता हूं कि धार्मिक संस्कारों से उस बहिन का जीवन कितना ऊपर आया। अब गोविन्द अपनी प्रिया से पूछता है जब तुम बचपन से ही ऐसे संस्कार को लेकर चल रही हो, और पतिव्रत निष्ठा को लेकर चल रही हो तो मेरे सामने तुम, सच-सच बातें करोगी या कुछ छिपाकर रखोगी। पतिदेव आप क्या सोच रहे हैं मैंने जिन्दगी में कभी आपसे कोई रहस्य नहीं छिपाया। जब मैंने आपको अपना सर्वस्व ही अर्पण कर दिया तो फिर छिपाकर रखने की ऐसी कौनसी बात आ गई। आप जो कुछ पूछना चाहते हैं, पूछिए। मैं खुले दिल से उत्तर देने को तैयार हूं। गोविन्द सोचता है कम से कम इसको खत्म करने से पहले मैं निर्णय कर लूँ कि वस्तुतः बात क्या है? उसने प्रश्न किया प्रिये, आज प्रातःकाल अपनी हवेली में साधु आया था। पत्नी ने जवाब दिया हां, प्राणनाथ आया था। तो तुमने क्या किया। पत्नी कहती है मैंने उसको भिक्षा वहराई। गोविन्द पुनः पूछता है और क्या-क्या, किया? क्या-क्या बोले? तो पत्नी ने कहा बोला क्या।

उसको मैंने संकेत किया वह भिक्षा लेने के बाद हवेली को देखने लगा तो मैंने संकेत में कहा तुम्हारा एक गया तो उसने इशारे में कहा तुम्हारे दो गए तो फिर मैंने उत्तर दिया तुम्हारे तीन गए— यह बात हुई थी। गोविन्द ने कहा प्रिये, यह तो तुमने सच सच कहा लेकिन यह क्या एक गया, दो गया, तीन गया इसको समझा दें— उसके दिल की खुलने लगी और उसने सोचा वस्तुतः निर्णयः करना चाहिए। मनुष्य के जीवन में निर्णायक शक्ति नहीं आई तो वह मनुष्य वेकार है। इस भावना से गोविन्द कुए के पाल से हटकर एक पत्थर की चौकी पर आकर बैठ गया और तीनों बातों के रहस्य को समझने के लिए कहा। अब वहिन तीनों बातों को बताना चाह रही हैं और गोविन्द भी सुनना चाहता है लेकिन आपकी घड़ी टाइम बता रही है। उस दृष्टि से, शहर का मामला है, जौहरी लोगों का क्षेत्र है, अतः टाइम से काम किया जाय तो ठीक है। यह आज का प्रश्न नहीं है। टाइम आएगा तो फिर आपको बतायेंगे। इस जीवन के प्रश्न पर आपको भी विचार करना है और मुझे भी विचार करना है। जो जीवन को परिभाषा की है उसमें आप चिन्तन करिये। वह निर्णायक शक्ति आप में आई है या नहीं और अगर निर्णायक शक्ति आप में आ गई तो आप शीतल चन्दन का लेप करके जीवन की तमाम शक्तियों का विकास करते हुए, शान्ति के मार्ग का प्रचार करते हुए शान्ति के अग्रदूत बन सकेगें।

लाल भवन,
२६जुलाई ७२

●●

मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।

—उत्तराध्ययन २३।५८

यह साहसिक भीम मन, दुष्ट अश्व के समान सदा दौड़ता रहता है।

---

८ | मन का मनका

चेतन जान कल्याण करन को, आन मिल्यो अवसर रे!
शास्त्र प्रमाण पिछाण प्रभू गुण मन चंचल थिर कर रे!!
श्रेयांस जिनन्द सुमर रे!!!
सास उसास विलास भजन को, दृढ़ विश्वास पकर रे!
अजपाभ्यास प्रकाश हिये विच सो सुमरन जिनवर रे!!
श्रेयांस जिनन्द सुमर वे!!!

यह प्रभु श्रेयांस देव को प्रार्थना है। प्रार्थना को इन कड़ियों में चेतन को सम्बोधन किया है, चेतना एक आत्मिक शक्ति है, इस शक्ति से मनुष्य को समग्र जीवन का और समग्र संसार का ज्ञान होता है। चेतना शक्ति के बल से ही हित और अहित को पहिचाना जा सकता है। चेतना शक्ति के दृढ़ संकल्प से ही इन्सान अपने कार्य में सफल होता है। ऐसी चेतना शक्ति को संबोधित करके कवि ने संकेत दिया है कि—

चेतन जान कल्याण करन को आन मिल्यो अवसर रे।
शास्त्र प्रमाण पिछाण प्रभू गुण मन चंचल थिर कर रे।

हे चेजन, यह कल्याण करने का सुन्दर अवसर मिला है। इस में जो मनुष्य जन्म मिला है तो यथा सम्भव शान्ति से शास्त्रों का श्रवण कर। शास्त्र श्रवण का प्रसंग है, ऐसे अवसर पर हे चेतन, तू प्रमाद में मत रहे। कदाचित कोई यह कल्पना करें कि मैं इस समय प्रभु के स्वरूप को कैसे पहिचानू ? क्योंकि परमात्मा मेरी इन चमड़ी की आंखों से नहीं दीखता है। मैं अपनी इन्द्रियों से प्रभु का सही ज्ञान नहीं कर सकता हूं। तो यह कल्पना असंगत है क्योंकि यह इन्द्रिय जन्य ज्ञान सीमित है। उनका दायरा छोटा है। इन्द्रियां अमुक सीमा तक ही वस्तु का ज्ञान कर सकती है। आगे उनकी गति नहीं है। मन की स्थिति का भी चिन्तन करूं तो मन की गति भी ऐसे तो बहुत तीव्र है, लेकिन तीव्र होने पर भी वह भी सीमित ही है। अतः प्रभु के वास्तविक स्वरूप को समझने में वह मन भी समर्थ नहीं हो सकता है। मन के माध्यम से कल्पना कर सकते हैं। तो मैं प्रभु को कैसे स्मरण करूं, और कैसे मैं आत्मा का कल्याण कर सकूं ? इसके लिये बुद्धि के सामने एक प्रश्न वाचक चिन्ह बन जाता है। इस प्रश्न का उत्तर कवि ने साथ ही दे दिया है कि तू अपने इन्द्रिय और मन से प्रभु को पहिचानने में समर्थ नहीं है। अतः शास्त्र के प्रमाण की बात कहीं गई कि—

शास्त्र प्रमाण पिछाण प्रभु गुण मन चंचल थिर कर रे।
श्री श्रेयांस जिनन्द सुमर रे॥

शास्त्र में प्रभु के स्वरूप का बड़ा ही सुन्दरतम वर्णन है। शास्त्र के प्रमाणों से तुम प्रभु के स्वरूप को पहिचान कर इस चंचल मन को स्थिर कर लो। मन के स्थिर हुए बिना उस आत्मिक स्वरूप का दर्शन नहीं होगा। मन जितना चंचल है उतनी ही आत्मा की चंचल होती है। मन के सहारे आत्मा की शक्ति प्रवाहित है

इन्द्रिय तक भी मन के माध्यय से ही पहुँचा जाता है और बाहर के पदार्थों का भी मन से ही चिन्तन किया जाता है। इसलिये इस चंचल मन को एक स्थान पर केन्द्रित कर दो। जो श्रेष्ठतम स्थान है जिस स्थान को छोड़कर अन्य श्रेष्ठ स्थान नहीं है। यदि उस श्रेष्ठ स्थान के चिन्तन में मन को लगा दिया तो वह इधर-उधर नहीं भटकेगा। किन्तु यदि किसी अभद्र या अधूरे स्वरूप में मन को केन्द्रित करने का प्रयास किया गया तो वह रुक नहीं सकेगा। उसकी स्वाभाविक चंचलता बढ़ेगी और एकाग्रता उससे परे होगी। आप देखते हैं कि जब बच्चे के सामने एक खिलौना रखा जाता है, तो वह उस खिलौने को देखने की कोशिश करता है लेकिन जब उसकी दृष्टि आगे की ओर गिरती है तो उसके मन में जिज्ञासा पैदा होती है और बच्चा अपने संरक्षक से पूछता है कि यह क्या है? जब उसको दूसरी चीज बतायी जाती है तो फिर वह आगे का प्रश्न करता है। बच्चे का यह स्वभाव है कि वह जानकारी के लिये तन्मय हो जाता है और आगे का प्रश्न करता है। कब तक करता रहता है जब तक कि वह अपनी समझ के अनुसार संतुष्टि नहीं कर लेता है। बच्चा तो शरीर की दृष्टि से ऐसा ही है लेकिन एक दृष्टि से देखा जाये तो यह मन भी बच्चे के तुल्य है। बच्चे को समझाना सहज है। बच्चे की गति को रोकना सरल है। बच्चे को तुष्टि देना मनुष्य के बूते की बात है लेकिन मन को रोकना यह मनुष्य की शक्ति से थोड़ा परे जा रहा है। मन की गति को कन्ट्रोल करना और तुष्टि देना यह प्रत्येक मनुष्य के बूते की बात नहीं है। इस मन को अगर स्थिर करना है तो आप छोटे-छोटे जितने लक्ष्य हैं, जो चंचल पदार्थ हैं जो नाशवान है, उन पदार्थों से उसको हटाकर अविनाशी, अटल और स्थायी तत्वों पर केन्द्रितकरिये जिससे स्थिर तत्वया स्थायी स्वरूपपर केन्द्रित होने के कारण उसमें भी स्थिरता आए। वह स्थायी तत्व नहीं हिलेगा तो मन भी नहीं हिलेगा और यदि मन उसके साथ एकाकार

जो सब प्रकार के मदों—अहंकार के कारणों का त्याग करके सदा धर्मध्यान में लीन रहता है, वही सच्चा भिक्षु है।

परम श्रमण आचार्य देव **श्री नानालालजी म०**

के

पावन-प्रवचन हम सबके लिए
मार्गदर्शक हों—यही शुभ कामना !

भीखमचंद झूमरमल सेठिया

भीनासर (बीकानेर)
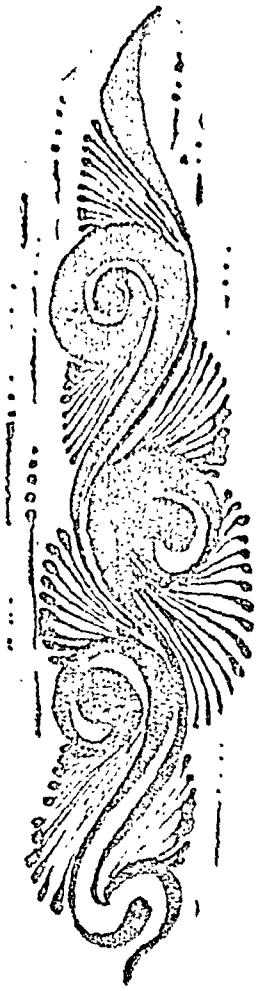
धर्म-धुरा-धुरीण

प्रवचन-कला-प्रवीण

परमादरणीय आचार्य

श्री नानालालजी म० सा०

के

पावन चरण कमलों में

हार्दिक अभिनन्दन

□

बन गया तो आत्मा के कल्याण का मार्ग वहां शीघ्र ही प्रशस्त बन सकता है। यदि तुमने मन को उस स्थायी तत्व पर नहीं टिकाया, नाशवान तत्वों पर मन को केन्द्रित किया तो थोड़े समय तक तो वह रहेगा, लेकिन जड़ पर केन्द्रित होने से वह जड़ पदार्थ गिर जायगा, बिखर जायगा तो भागेगा और सोचेगा कि अब मैं किसको पकड़ूँ? कल्पना करिये एक कपूर डली है। कपूर की डली के ऊपर मनुष्य अपने मन को केन्द्रित कर ले और यह सोचले कि मेरा मन कपूर से सम्बन्धित है, यह कपूर साफ है, श्वेत है। इसके साथ मेरा मन भी सम्बद्ध है और वह भी इसके समान श्वेत बने, काला न रहे, इसमें कोई धब्बा न रहे। इस भावना से कपूर की डली पर अपने मन को केन्द्रित कर लीजिये और भावना यह रखें कि यह कपूर की डली ऐसी की ऐसी रहे। उसमें कोई परिवर्तन नहीं आवे। यह ऐसी की ऐसी रहेगी तो मेरा मन भी ऐसा ही बना रहेगा। इस भावना से कपूर की डली के ऊपर अपने मन को केन्द्रित कर दीजिये। लेकिन यह कपूर की डली, या वह कपूर की टिकड़ी कितने समय तक उस रूप में रह सकेगी ? क्या वह स्थिर रह सकेगी ? वैसा का वैसा रूप उसका स्थिर रहेगी ? क्या इसका कभी आपने अनुभव किया है। कपूर का उड़ने का स्वभाव है। वह खुला पड़ा रहा तो जल्दी ही उड़ जायेगा। और कदाचित मनुष्य उसे उड़ने से रोकने के लिये अपनी मुट्ठी के अन्दर बांध लेता है और यह सोचता है कि इससे यह उड़ेगा नहीं लेकिन फिर भी कपूर उड़ेगा ही। जब वह चीज उड़ गई तो कैसे उसके ऊपर मन टिकेगा। आप मन को उस पर केन्द्रित करना चाहते थे, उस पर मन को स्थायी करना चाहते थे, लेकिन कपूर की टिकिया तो उड़ गई। तो आप ज्ञान की दृष्टि से चिन्तन करिये कि कौन कौन से पदार्थ ऐसे हैं जो कपूर की टिकिया के स्वभाव के नहीं है ? कौन से पदार्थ स्थिर हैं जिनके ऊपर मेरा मन सदा स्थिर बन जाये। यदि इस प्रकार का चिन्तन करने के लि

संसार के पदार्थों का परीक्षण करते जायेंगे तो मैं समझाता हूं कि जितने पदार्थ आपकी दृष्टि में आ रहे हैं,वे सारे के सारे उस कपूर की टिकिया के मानिन्द ही मालूम होंगे। क्या ऐसा कोई भौतिक तत्व है जो कि विखरने वाला न हो। शास्त्रीय दृष्टिकोण से चाहे कैसा भी चित्रण करें· यह खम्भ आप देख रहे हैं, यह मजबूत है, आपको दिखाई दे रहा है। शास्त्रीय दृष्टि से खम्भ में परमाणु उड़ रहे हैं, प्रतिक्षण इसमें परमाणु प्रवेश कर रहे हैं और निकल रहे हैं। हमारी चमड़े की आँखें इसको समझ नहीं पा रही है। शास्त्रकारों का कथन है कि जो संपदा वनी है वह सम्पदा ज्यादा से ज्यादा अगर रहे तो असंख्य काल तक रह सकती है, उसके बाद तो सारी की सारी बिखर जाती है। अब आप सोचिये कि मन को केन्द्रित करने के लिये किस पर टिकाना है। कभी कभी हठ योग की प्रक्रिया से साधक को बताया जाता है कि मन को केन्द्रित करने के लिये त्राटिक करे। त्राटिक का मतलब यह है कि एक चिन्ह कहीं दिवाल पर या किसी स्थान पर लगा दिया जाता है वह वहाँ पर दृष्टि लगाकर मन को केन्द्रित करने की कोशिश करता है। मनुष्य मन से हैरान है। मन की गति से मनुष्म घबराया हुआ है और कहीं सहारा मिलता है तो उस तरफ भी व्यक्ति प्रयत्न करता है। धार्मिक क्षेत्र में विचरण करने वाले महात्माओं ने भी भगवान् के चरणों में आन्तरिक निवेदन कर दिया और उन्होंने भी कह दिया कि भगवन् ? इस मन को मैं कैसे स्थिर करूँ।

> कुंथू जिन मनड़ूं किम् हिनिबाजे।
> जिम जिम जतन करीने राखूँ, तिम तिम अलगू भाजे हो ॥ कुंथू जिन ॥
> रजनि विचारे वस्ति उजाड़े, गहण पाया ले जाय।
> सांप खाइय ने मुखड़ थोथुं एम ओलखिए न्याय ॥ कुंथू जिन ॥

कवि आनन्दघनजी अपनी साधना करते करते हैरान हो गये

और भगवान् कुन्थुनाथ से कहने लगे, भगवन् ! बताओ, यह मेरा मन क्यों वश में नहीं आता है ? मैं इसका कितना ध्यान रखता हूं, कितना इसको लाड़ प्यार करता हूं, यह मन जिस वस्तु की भी चाहना करता है वही वस्तु मैं इसको देता हूं, मन अमुक रूप देखता है तो दिखाता हूं और अमुक स्थान पर ले जाना चाहता है तो ले जाता हूं, जैसे जैसे यह कहता है वैसे वैसे मैं इसका लाड़ प्यार करता हूं। लेकिन यह सब प्रयत्न करने पर भी यह मन मेरी कुछ भी बात नहीं मानता और दूर दूर भागता रहता है। रात और दिन इस हैरानी से हैरान हूं। दिन को भी यह ज्यादा देर तक एक जगह नहीं टिकता, जागृत अवस्था में भी दिन भर यह मन स्थिर नहीं रह कर इधर-उधर वेकाबू भागने लगता है और सोता हूं तो भी यह हैरान करता है, शान्ति से मैं विश्राम नहीं कर सकता, यह मन चंचल बना रहता है और ताने वाने बुनता रहता है, कितने ही जाल बनाता है। हे प्रभु ! मैं इस चंचल मन को किस प्रकार वश में करूँ ? जब आध्यात्मिक रस में रमने वाले महात्मा और कवि भी हैरान हो गये तो दूसरों का तो कहना ही क्या ?

आज मन को वश में करने के तरीके अजीब से हैं। त्राटिक में दृष्टि उसकी ओर लगायी जाती है, दृष्टि को उस पर गढ़ा कर बैठ जाता है, पलक नहीं गिरने देता है। लेकिन मन तो फिर भी विचलित हो जाता है। परिणाम यह होता है कि दृष्टि की रोशनी मंद पड़ जाती है, लेकिन मन को स्थिर नहीं कर पाता है। हठयोग में ऐसे अनेक खतरे आ सकते हैं जिससे मनुष्य की जिन्दगी व्यर्थ सी हो जाती है। आपने सुना होगा कि अमुक मनुष्य चतुर था और योग साधना की बड़ी बड़ी बातें करता था। एक रोज देखा गया कि वही व्यक्ति पागल होकर घूम रहा है। और अंड खंड बोल रहा है। यह क्यों हुआ ? इसका कारण यही है कि उसे-योग साधना कराने वाला योग्य व्यक्ति नहीं मिला। योग्य गुरु के अभाव में साधना भी

विकट हो जाती है। उसी तरह से प्राणायाम है। प्राणायाम भी एक योगिक साधना है। प्रायः नासिका से श्वास को अन्दर ले जाना और नियमानुसार उसको वापिस बाहर लाकर छोड़ देना। रेचक और पूरक दो क्रियायें होती हैं। कुम्भक क्रिया की दो अवस्थायें होती हैं वे इस प्रकार हैं :- एक वाह्य कुम्भक, और दूसरी आभ्यन्तर कुम्भक। बाहरी कुम्भक प्रक्रिया वह है जिसमें श्वास को बाहर छोड़कर रोकना होता है और आभ्यन्तर कुम्भक वह है जिसमें स्वास को अन्दर रखकर रोकना होता है बाहरी प्रक्रिया तो इतनी खतरनाक नहीं होती है किन्तु अन्दर रखने की जो प्रक्रिया होती है उसका साधन अच्छी तरह न बनपाये तो उसकी साधना तो कहीं रह जाती है किन्तु वातवाहक उसको नाड़ियों में वायु का प्रेसर इतना अधिक हो जाता है कि उसकी नाड़ियां फट सकती हैं मस्तिष्क की स्थिति डावांडोल हो जाती है। वह कभी कभी खतरे में पड़ जाता है। मन की साधना के अनेक उपाय बताये जा सकते हैं। मन एक साथ काबू में नहीं होता है। हो तो कैसे हो ? उस पर चिन्तन किया जाय तो अनेक उपाय सामने आ सकते हैं। लेकिन यदि चाबी पकड़ ली जाय तो जल्दी हाथ में लाया जा सकता है।

मन का बटन दबाइए

आपके हवा के लिये पंखा चलता है। उस पंखे की हवा लेते लेते अगर व्यक्ति घबरा जाय और वह स्वयम् पंखे को बन्द करने में अशक्त हो और किसी दूसरे व्यक्ति से कहता है, या नौकर से बोलता है, भाई, इस पंखे की हवा मुझे नहीं चाहिए। यह बहुत गति से दौड़ रहा है इसको बन्द कर दो। जिसको कह दिया वह व्यक्ति कोई ग्रामीण है, उसने कभी कहीं हवेलियों में पंखा लगाते नहीं देखा और पंखा चलाते भी नहीं देखा अतः उसको वन्द कैसे करना यह वह नहीं समझता है। ऐसे व्यक्ति को कहा जाय,

वह व्यक्ति उस पंखे को बन्द करने के लिए अपना हाथ लम्बा करके उस पंखे को पकड़ता है और यह सोचता है कि पंखा पकड़ कर बन्द कर दूं। क्या वह हाथ से चलते हुए पंखे को पकड़ कर रोक सकता है? नहीं, रोक सकता। वह यह सोचता है कि पंखा हाथ से बन्द नहीं हो रहा है। रस्सी डाल कर पंखे को खम्बे से बांध दूं और इसको बन्द कर दूं। यह सोच कर रस्सी डाल कर दोनों मुंह रस्सी के लेकर पंखे को खम्बे से बांधना चाहता है। पंखे को बांध सकता है? रस्सी मजबूत है तो पंखा टूट जाएगा और रस्सी कमजोर है तो रस्सी टूट जावेगी। वह इस तरह से भी पंखा नहीं रोक सकता है। अगर जानकार व्यक्ति उस स्थल पर पहुंच जाय और ग्रामीण व्यक्ति को हैरान होते देखे तो कहेगा, भाई, क्यों हैरान हो रहा है, वह ग्रामीण व्यक्ति कहेगा कि भाई साहब सेठ साहब की आज्ञा है पंखा बन्द कर दो, हवा उनको नहीं चाहिए। लेकिन पंखा बन्द नहीं हो रहा है। हाथ लम्बा करके पंखे को रोक कर बन्द करना चाहा लेकिन वह नहीं हुआ और रस्सी डाल कर पंखे को बन्द करना चाहा लेकिन वह भी नहीं हुआ। उस आगन्तुक ने कहा, 'रस्सी और हाथ से पंखा बन्द थोड़े ही होता है। देखो मैं जरा सी देर में बन्द कर देता हूं। जरासी अंगुली को आगे ले जाकर वह बटन को दबा देता है और पंखा रुक जाता है, पंखा बन्द हो जाता है। जिस तरह पंखे को बन्द करने के लिए बटन है उसी प्रकार मन के पंखे को, जो मनुष्य को जीवन में चक्कर लगवा रहा है, इसको बन्द करने के लिये अलग अलग तरीके से उपाय कर रहे हैं, वे उपाय प्रायः ग्रामीण मनुष्य की तरह कर रहे हैं। जिस प्रकार ग्रामीण मनुष्य हाथ से पंखे को बन्द करना चाहता है। आज का मनुष्य भी इसी प्रकार मन को बांध कर बन्द करना चाहे तो मन काबू में आने वाला नहीं है। ज्यादा जोर दिया तो पंखे की पंखुड़ियां टूटेंगी। इसका तात्पर्त यह

है कि मस्तिष्क की नाड़ियां टूटेंगीं या इन्द्रियां नष्ट हो जावेंगी या कोई आघात लग जावेगा। सफलता नहीं मिलेगी।

आज के मानव की यही दशा है। वह इस मन रूपी पंखे को ग्रामीण मनुष्य की तरह रोकने की कोशिश कर रहा है। वह इस मन रूपी पंखे पर कन्ट्रोल करना चाहता है लेकिन जीवन कला रूपी इसकी चाबी को नहीं पकड़ पा रहा है। वह अगर इसके बटन को दवाने की कला समझ ले तो मन रूपी पंखा स्थिर हो जाता। फिर उसके सामने कितने भी चंचल पदार्थ आये, कितने भी दृश्य उसके सामने आयें, उसके मन को चंचल बनाने वाले ही स्वर्गीय दृश्य उपस्थित हो जांय फिर भी मन उसकी आज्ञा के बिना चंचल नहीं होगा। इस कला को प्राप्त करना है और इस चंचल मन को स्थिर करना है, तो इसके लिये दो प्रकार के मार्ग हैं। एक प्रारम्भिक मार्ग और दूसरा स्थायी मार्ग। प्रारम्भिक दृष्टि से जीवन के २४ घंटे हैं। उसमें से आधे घंटे निकालने चाहिए उसमें मन की गति-विधि को देखने की कोशिश करे। २४ घंटे का सारा का सारा समय आज किस काम में जा रहा है? मन की गतिविधि को देखने में, या मन को स्थिर करने के प्रयास में या लापरवाह बनकर जीवन को चंचल बनाने में जा रहा है? अगर आप अपने जीवन की दिनचर्या को देखेंगे तो, विदित होगा कि जीवन के चौबीसों घंटे पदार्थों को बटोरने के लिये व्यतीत हो रहे हैं। मन को वश करने के लिये कुछ भी समय नहीं दिया जा रहा है। आत्मा के साथ न्याय-करना चाहते हैं तो १२ घंटे आत्मा को दीजिये और १२ घंटे शरीर को दीजिये। यदि आप आत्मा के साथ न्याय की स्थिति में नहीं है। और शरीर के साथ ज्यादा न्याय करना चाहते हैं तो, चौथाई समय, छैः घंटे इस इस विषय में दीजिये। कदाचिद् आपके मन की कमजोरियां अधिक हों तो छः घंटे नहीं तो तीन घंटे दीजिये, तीन भी नहीं दे सकें तो दो दीजिये और दो भी नहीं दे सकें तो एक तो

कम से कम दीजिये। एक भी नहीं ? एक घंटा भर भी आपको इस ओर ध्यान देने का अवकाश नहीं। चौबीस घंटे हाय-हाय करते-करते चले जा रहे हैं, चौबीस घंटे मशीन की तरह दौड़ रहे हैं। और दौड़ कर भी प्राप्त क्या करने वाले हैं ? क्या लेने वाले हैं ? चौवीस घंटे इन चन्द चाँदी के टुकड़ों को प्राप्त करने में बिता देते हैं, सौ वर्ष या ८० वर्ष की जिन्दगी सारी की सारी इसमें लगा दी और कदाचिद् कुछ सम्पत्ति प्राप्त भी कर ली, कितनी ? अरबों खरवों की प्राप्ति कर ली, उसके वाद भी आपका मन स्थिर हुआ क्या ? अव तो अरब प्राप्त हो गये अब तो संतुष्ट हैं क्या ? नहीं। संतुष्ट नहीं।

सच्चे व्यापारी बनिए

मन दौड़ रहा है। हमने अपने जीवन में इतना पैसा इकट्ठा किया है, इस मन को पैसे की तरफ लगाया है कि पैसा मनुष्य के पास अरवों, खरबों हो गया है। परन्तु क्या यह आपका सारा पैसा स्थायी रूप से रहने वाला है। क्या यह आपके पास में टिक कर रहने वाला है। अगर ऐसा नहीं है तो क्या अपनी शक्ति का अपव्यय नहीं कर रहे हैं ? आप व्यापारी हैं। यहां पर वैठने वाले भी अधिकतर व्यापरी हैं। व्यापार कैसे होता है ? उसमें आय-व्यय का ध्यान रखा जाता है और वह व्यापार आप करते हैं जिसमें व्यापारी को अधिक आय होती है और स्थायी वस्तु प्राप्त होती है। इस वात का ख्याल रखे और कार्य करे तो वह सच्चा व्यापारी है और जिसमें आय व्यय का हिसाव न रखा जावे, अन्धाधुन्ध चलता रहे, उसमें व्यय अधिक हो और आमदनी कुछ न हो तो क्या वह सच्चा व्यापारी है ! आप सव चुप क्यों हो। आप कहते हैं, महाराज, हम सावधान हैं। लेकिन सावधान इस विषय में कि जो नाशवान पदार्थ हैं जो पदार्थ स्थायी नहीं है उनके लिये शरीर लगा रहे हैं उसके

व्यापार में शरीर लगा रहे, मन, वचन, काया उसमें लगी रहे, हैं २४ घंटे उसी में लगी रहे, आगे के लिये आप नहीं देख रहे हैं और जब कभी मृत्यु का दौर दौरा आया, उस समय विवश होकर, यह सब छोड़कर आप चले जायेंगे। तब आपके साथ कौन जायेगा, क्या स्थिति बनेगी इसका भी कभी आपने चिन्तन किया है ? आप अपने जीवन की समग्र शक्ति का अपव्यय कर रहे हैं, उसके मुनाफे की तरफ आपका ध्यान नहीं है। आध्यात्मिक जीवन की तरफ आपका ध्यान नहीं है। आप चतुर व्यापारी हैं पर इस व्यापार में आय व्यय का हिसाब नहीं है तो इस स्थिति से आपको कुछ ऊपर उठना है उसके लिए कम से कम एक घन्टा मन की साधना में लगाना हैं। इससे आपका मन स्वाभाविक बन जायेगा और इन सारी प्रवृत्तियों से हटने लगेगा। एक इन्सान यदि अपने मन को स्थिर करके चलता है तो वह अपने इच्छित कार्य कर सकता है। यह इन्सान के हित में है। यह एक अपूर्व लब्धि है। इसको इन्सान खो रहा है मैं इसके लिए टेम्प्रेरी उपाय आपको बता रहा हूं। यह टेम्प्रेरी उपाय यह है कि घंटे भर की साधना में आप बैठें। यह चिन्तन करे कि यह जो मैंने २४ घंटे बिताए हैं, इन चौबीस घंटों के अन्दर मैंने क्या-क्या किया है। इस बीच में कितने कार्य तो नैतिकता के हुए हैं ? और कितने अनैतिकता के हुए है ? यह देख लीजिए कि मैंने कितनी गल्तियां की हैं ? और ये गल्तियां हुई हैं ? तो लाचारीबश हुई हैं या अज्ञान से हुई हैं। लाचारीवश हुई हैं तो उसका प्रायश्चित रख दीजिए जिससे मन पर उसका असर हो, और मन यह अनुभव करे कि ऐसी गल्ती करूँगा, तो मुझे यह दण्ड मिलेगा और इससे आपकी यह गलती छूट जायेगीं और भविष्य में ऐसा ध्यान रख कर ही कार्य किया जायेगा। आपका मन भी सोचेगा। इस प्रकार की भावना रख कर कुछ क्षण वह अपने पूर्व जीवन के २४ घण्टों का चिन्तन करे और फिर थोड़ा-

सा भावी जीवन के २४ घण्टों का नक्शा खीचें, यह नक्शा सामनें रखें कि भविष्य के इन २४ घण्टों में वह इस प्रकार की गलती नहीं करेगा। तो यह मन की एक प्रारंभिक साधना है। इसके पश्चात् कुछ मिनिट के लिये हाथ की अनुपूर्वी का अभ्यास किया जाए जब कुछ समय तक यही अनुपूर्वी चलेगी तो मन को आप एकाग्र कर सकेंगे। इससे आगे के अवशेष समय में आप स्वाध्याय करिये। स्वाध्याय कैसे हो ? शास्त्रों को प्रमाण स्वरूप समझिये और उस पर मन को स्थिर करने का प्रयत्न कीजिये। परन्तु आज हो क्या रहा है ? इसके लिए आपके पास समय नहीं है किन्तु यदि कोई लड़ाई झगड़े की बात अखबार में आ गई या अंड बंड बात आ गई, तो आप उस अखवार को पढ़ेंगे, और दूसरी बातों में समय को गंवा देंगे,लेकिन शास्त्रों के स्वाध्याय के लिए उनको आधा घंटा भी नहीं मिलता है और कदाचित मैं यहां पर इस आधे घण्टे के लिए मांगनी कर दूं। यहां बैठने वाले मेरे भाई एक घंटा भर का स्वाध्याय का नियम ले और एक घंटा नियमित स्वाध्याय करें ऐसी मांगनी मैं कर दूं ? क्या मांगनी नहीं करूं। बस कहते जाइये। स्वाध्याय की फुरसत नहीं है। उपन्यास पढ़ लेंगे परन्तु शास्त्रों का स्वाध्याय नहीं होगा। इस प्रकार मन से हैरान होकर इस मन को कैसे पकड़ पायेंगे। जब मन में कोई चीज बैठ जाती है तो मन उसके लिए हठोला हो जाता है। इसी प्रकार शास्त्रों के स्वाध्याय की बात, इसके व्यापार की बात एक घंटे भर के लिये, आधे घंटे के लिए या कम से कम १५ मिनिट के लिये ही कर लीजिये। अगर इतना स्वाध्याय नियमित रूप से चलता है तो मन को एक जगह पर टिकाने का एक साधन मिल जायेगा। अब स्वाध्याय किसका करना है, इसके करने का तरीका क्या है ? शास्त्रों का स्वाध्याय कैसे हो ? आदि बातों को समझाने के पूर्व में आपके मन को एकाग्र करने के लिये प्रारंभिक भूमिका बता रहा हूँ। आप पुस्तक पढ़ने के लिए पहले

क्या सोचते हैं ? वर्ण माला ? वर्णमाला को नहीं समझें और दसवीं कक्षा का पाठ आपको पढ़ने के लिये दे दें, एम० ए० का पाठ दे दें, जब ए० बी० सी० डी० का ज्ञान नहीं है तो क्या आप उसको समझ लेंगे ? इसी दृष्टिकोण से स्वाध्याय का भी तरीका है। यह तरीका है कि चाहे जैसी पुस्तक हो, पर हो धर्म शास्त्र की, चाहे वह शास्त्रों का अनुभव हो, उस धर्म पुस्तक के स्वाध्याय के लिये आप उसका एक पेज ले लीजिये और उस पेज का भी एक पैराग्राफ लीजिये। प्रारंभिक रूप से उस पैराग्राफ को आप पढ़िये और उस पैराग्राफ को पढ़ने के बाद अपने मुंह से अपने कानों को ही वह सुना दें। दूसरा सुनने वाला हो तो ठीक है वरना अपने कान तो सुनने वाले हैं ही। कानों को सुनाकर आगे को बढ़ें। इस प्रण के साथ आप इसको पढ़िये कि मुझे इसको पुनः सुनाना है तो आपका मन एकाग्र हो जायेगा, मन उसमें दत्तचित्त होकर एकाग्रता से उसको पढ़ेगा। फिर दूसरे पैराग्राफ को लीजिये। उसके बाद दूसरे पृष्ठ को लीजिये और धीरे धीरे दो पृष्ठों तक बढ़िये। इसमें सबसे पहिला लाभ होगा कि जितने समय तक पढ़ेंगे आपका मन एकाग्र हो जायेगा। दूसरा लाभ यह होगा कि आपकी स्मरण शक्ति तीव्र हो जायेगी, कई व्यक्तियों को यह शिकायत होती है कि थोड़ी सी बात देखते ही वे भूल जाते हैं। हमारी स्मृति नहीं है क्या करें ? मैं पूछता हूं आज व्याख्यान में क्या सुना। कहते हैं, सुना तो था, याद नहीं है। उनकी स्मृति कहां गायब हो गई। मन डोलायमान हो रहा था। एकाग्रता में स्मृति तीव्र हो जाती है और स्मृति से विषय का ज्ञान कर पायेंगे। तीसरा लाभ यह होगा कि आपको वक्तृत्व शक्ति आयेगी। आपको बोलने की कला आयेगी। चौथा लाभ यह होगा कि पुस्तक में क्या रहस्य है ? उसका क्या विषय है, उस विषय की बारीकी को आप पढ़ पायेंगे और वह आपके जीवन में हित साधक है या नहीं ? इसका मनन कर पायेंगे। इस तरीके से लाभ की स्थिति चली तो आपकी

सामायिक का जो समय है वह सहज ही निकल जायेगा। सामायिक कर तो लें परन्तु घण्टे भर तक मन नहीं लगता है। यह प्रश्न हमारे सामने आता है। परन्तु इसमें इस तरह से मन को एकाग्र करके, इस तरह का एक प्रोग्राम बना कर मन को साधने की दृष्टि से चलें तो मन को एकाग्र करने का यह एक प्रारंभिक साधन हो सकता है। मन को साध लिया तो शरीर की स्थिति ठीक वन जायेगी। उसके वाद स्थायी रूप से मन को केन्द्रित करना है, अभी आपको बिजली के वटन की वात कही थी। जो बिजली के बटन का ज्ञान रखता है उसको यह भी मालूम रहता है कि कहां से शक्ति आ रही है और कहां पर शक्ति केन्द्र है। वह उससे सम्बन्धित सब चीजों का ज्ञान रखता है। वैसे ही शरीर के अन्दर रहने वाले जो तत्व हैं, यह शरीर ही जीवन नहीं है, मैं यहां पर मूल स्थिति को समझा रहा हूं। इसके साथ-साथ आप मन को और उसके साथ-साथ शरीर को समझेंगे, तो शरीर से सम्वन्धित इन्द्रियों का ज्ञान भी कर सकेंगे। इन्द्रिय और मन से शरीर का ज्ञान होगा, उससे आत्मा का ज्ञान करेंगे और आत्मा के ज्ञान से निर्णायक शक्ति को पहचान पायेंगे। इसी दृष्टि से मैं जीवन की परिभाषा की व्याख्या करना चाहता हूं—वह है सम्यक् निर्णायकम् समता मयं च यत् तत् जीवनम्। क्या प्रश्न चल रहा है? जीवन क्या है? समयक् निर्णायकम्— निर्णायक शक्ति जिसमें होती है उसको पहिचान सकेंगे। कल मैंने इसका थोड़ा रूपक रखा था। इन्सान निर्णायक शक्ति का विवेचन नहीं कर पा रहा है। निर्णायक शक्ति के रूप में स्थायी तत्व आत्मा को माना जाता है। क्योंकि आत्मा ज्ञानवान है निर्णायक है यदि आत्मा को ज्ञान शून्य माना जाय तो उसका अस्तित्व ही मिट जायेगा, जिसमें ज्ञान नहीं है वह आत्मा नहीं है भले ही उसको आत्मा की संज्ञा दे दी गई हो। ज्ञान के विना आत्मा नहीं हो सकती है और विना ज्ञान के निर्णायक शक्ति नहीं आती है।

ज्ञान के बिना आत्मा का स्वरूप मिट जायेगा और उसे जड़ तत्व समझ लिया जायेगा। यह पाटा है। यह ज्ञानवान है ? या अज्ञानवान आप इसका ध्यान करिये। यह जड़ है इसमें ज्ञान नहीं। इसके अन्दर किसी तरह की चिन्तन शक्ति नहीं है। यह कुछ भी नहीं कर सकता है। चाहे आप इसको चोट मारो यह उसका निर्णय नहीं कर सकता है। यह भी नहीं समझता है कि ऊपर कौन बैठा है लेकिन जो ज्ञानवान, आत्मा है वह इसका निर्णय कर पाती है क्योंकि निर्णय उससे किया जाता है—इसको संस्कृत की दृष्टि से कहा है—"निर्णीयते अनेन", जिससे निर्णय किया जाये, निर्णीयते यस्मात्—जिसमें से निर्णय किया जाये और निर्णीयते यस्मिन्- जिसमें निर्णय किया जाये। ये सभी अवस्थाएं आत्मा की ही हैं अतः उसमें निर्णायक या ज्ञान शक्ति को मानना होगा, निर्णय की शक्ति ज्ञान के साथ है, ज्ञान से चिन्तन मिलेगा उससे चिन्तन का स्वरूप स्पष्ट होगा। कुछ दार्शनिक ऐसा बोल देते हैं कि आत्मा में ज्ञान होता है लेकिन जब आत्मा परमात्मा रूप बनती है तब ज्ञान नष्ट हो जाता है।

यह भी एक हास्यास्पद बात है, इसमें गहरी दार्शनिक चर्चा है मैं उसे अभी नहीं ले रहा हूं; मूल में मैं आपको निर्णायक की बात समझा रहा था कि मूल रूप में जो गुण जिसमें नहीं हैं, अर्थात् अनिना भाव सम्बन्ध से जिसमें ज्ञान नहीं है, वह ज्ञान उसमें कैसे रहेगा और मोक्ष अवस्था में सर्वथा नष्ट हो जावेगा। यह कैसी विशेषता है ? विशेषण लगाइये, यह असंस्कारित जीवन है। ऐसा व्यक्ति निर्णायक स्थिति नहीं समझ पाता और उसको जीवन का स्वरूप समझ नहीं आता और हर समय धोके की धड़ी में रहता है। जड़ तत्व को बेचने पर कुछ पैसा बटता है लेकिन मनुष्य जीवन इस स्थिति में है कि यदि उसने निर्णायक स्थिति का पता नहीं लगाया और केवल मुर्दा अवस्था में ही रह गया तो उसके शरीर की एक दमड़ी भी नहीं

बटेगी और श्मशान में लेजाकर उसको जलाना होगा। यदि मन को केन्द्रित करें और चाबी पकड़ना चाहें जीवन की, तो निर्णायक स्थिति की, शक्ति को निखालस रूप से समझने का प्रयास करें और यह समझने का प्रयास थोड़े रूप में होता है तो भी हो जाता है और एक दिन मन की केन्द्रित अवस्था आ जाती है। यह स्थिति नहीं आती है तो मन डावांडोल हो जाता है।

सच्चा साधक

निर्णय के अभाव में व्यक्ति कभी कभी समस्या में उलझ जाता है। इसके विषय में कल आपके सामने मैं एक रूपक रख रहा था। आपको ध्यान होगा। एक तरुण की बात आरही थी। गोविन्द नाम का तरुण भयावह स्थिति के बीच में बैठा हुआ है। किसके साथ ? अपनी धर्म पत्नी के साथ, धर्म सहायिका के साथ। वह पत्नी धर्म के अन्दर मददगार थी, वह पति को विषयों में डुबोने वाली पत्नी नहीं थी। उस गोविन्द के मन में पत्नी की बात सुन सुन कर उल्लास पैदा हो रहा है और एक तरफ मन में ग्लानि का अनुभव भी हो रहा है। उसने जब पूछा कि तुमने उस साधु के सामने क्या संकेत दिया, तुम्हारा एक गया आदि। तो उसकी पत्नी ने कहा नाथ, उस व्यक्ति ने अपने शरीर के अन्दर भस्मी रमा रखी थी, चर्म उसके पास था, कमण्डलू था और वह साधु अवस्था की दृष्टि से चल रहा था। मैंने जिस साधु जीवन के स्वरूप को समझा वह उसमें थोड़ा कमजोर था क्योंकि संसार के नाशवान पदार्थों से ऊपर उठता है, उसकी भावना आध्यात्मिक जीवन की ओर होती है, उसके सामने कैसा भी प्रदर्शन क्यों न हो लेकिन वह अपने मन को उस तरफ चंचल नहीं करता है। जिस प्रकार ऊपर का वेश है वैसा ही अन्दर का जीवन रख कर चलता है। दोनों ही स्थितियां एक सी होती हैं। दोनों पहलू उसके सुरक्षित रहते हैं तो उसका साधु जीवन सुरक्षित

रहता है लेकिन अगर एक चीज गायव हो गयी तो उसका साधु जीवन अधरा हो गया। उसने चाहे जैसा वेश लिया हो, लेकिन मैं अपनी दृष्टि से सोच रही थी, चिन्तन कर रही थी कि साधु संसार के सारे पदार्थों से विरक्त होता है। और जब भिक्षा की दृष्टि से घर में प्रवेश करता है तो उसकी दृष्टि चंचल नहीं होती है। गृहस्थ के घर में कौन सा सामान है, क्या वस्तुयें कहां पड़ी हैं, भाइयों बहिनों के पहिनने के कौन से वस्त्र हैं, निपटने का स्थान कहां है? आदि इन सब बातों की ओर साधु का विशेष ध्यान नहीं रहता है, उसका ध्यान किधर रहता है? उसका ध्यान इस ओर रहता है कि जब वह भिक्षा के लिये चले तो नीची निगाह रख कर चले, गृहस्थ के घर में प्रवेश करता है और जहां उसकी रसोई है वहां वह प्रवेश करता है तो यह देखता है कि सूजती रसोई है या नहीं, छोटी मोटी चीजों को उठाकर इधर उधर तो नहीं किया जा रहा है, कहीं बटन दबाकर प्रकाश करके भोजन तो नहीं दिया जा रहा है, हरी को छू कर तो भोजन नहीं दिया जा रहा है, उस ओर साधु का ध्यान रहता है तो वह साधु बाह्य और आन्तरिक स्थिति को ठीक लेकर चलता है। मैंने सुना है आचार्य श्री श्रीलालजी महाराज साहब फरमाया करते थे।

> "ईर्या भाषा एषणा ओलखजो आचार,
> गुणवन्त साधु ने देखने बन्द जो बारंबार।

साधु में ईर्ष्या समिति कैसी हो, भाषा क्या बोल रहा है, ऊटपटांग भाषा बोल रहा है या हितकारी भाषा बोल रहा है, गवेषणा यानी गोचरी की उसकी स्थिति कैसी है, कैसी गवेषणा कर है इससे उसके बाह्य और आन्तरिक जीवन की पहिचान हो सकती है। आचार्य श्रीजी महाराज साहब ने फरमाया था। उसी को शास्त्रीय प्रमाण से मैं आपके सामने रख रहा हूँ कि साधु जीवन की आन्तरिक और बाह्य स्थिति सुरक्षित रहती है तो उसका जीवन

ठीक तरह से चलता है। गोविन्द ने कहा प्रिये, उसने क्या कहा ? भिक्षा लेकर चला गया तो उसने अन्दर की चीजें देखी नहीं, बाहरी दृष्टि से हवेली देखने लग गया तो उसको क्या सार्टीफिकेट दे दिया कि एक गया। उसने कहा नाथ ! बाहरी हवेली की भी रौनक है और साधु वन जाने के बाद स्वाभाविक दृष्टि पड़ गयी तो ठीक है लेकिन घूर-घूर कर अनिमेष दृष्टि से खड़ा रह कर देखना यह उसके मन की चंचलता प्रकट करता है और आन्तरिक जीवन का इससे साधुपन चला जाता है। मैंने कहा अन्तर और बाहर का साधुपन। वाहर का साधुपन जैसा वेश में लगता है वैसा है पर एक अन्दर का गया। मैंने तो उसको सावधानी दिलायी। मेरी कोई बुरी भावना नहीं थी। गोविन्द सुनकर चकित हो गया। आश्चर्य करने लगा। यह अलौकिक वात प्रथम बार सुन रहा हूं। मैं क्या कहूं। मेरी धर्म पत्नी कहूं या ज्ञान की दृष्टि से उसे उच्च स्थान पर वैठाऊँ। यह अत्यन्त जिज्ञासा रख कर आगे का प्रश्न करता है।" उसको कह दिया तुम्हारा एक गया, वह तो समझ में आ गया। उसने संकेत किया, तुम्हारे दोनों गये। तूं क्या समझी ? "प्राणनाथ ? वह थोड़ा चंचल जरूर था। पर उसकी बुद्धि ने मेरे अभिप्राय को समझ लिया। उसने सं . त दिया। मनुष्य जीवन मिला है, उसके साथ-साथ पूर्व जन्म की पुण्याई से सारे साधन उपलब्ध हैं। करोड़पति का घर है, खाने पीने पहिनने की वस्तुओं की कमी नहीं है, यह सव होने के वावजूद भी यदि तू अपने सासुजी के अभिप्राय के अनुसार कंजूस वनी रही और दान पुण्य नहीं किया तो जीवन खोखला रह जावेगा। आन्तरिक और वाह्य दोनों जीवन चले जावेंगे। न तो ऊपर से स्वच्छ वृत्ति की स्थिति और न अन्दर की स्थिति से वैराग्य भावना। पहला अर्थ तो यह लिया। दूसरा अर्थ यह समझा कि मुझे उस साधु ने यह संकेत दिया कि जीवन में

गुण होते हैं। सत्वोगुण, रजोगुण और तमोगुण।' सत्व और रजोगुण उसमें से चला गया। जो गृहस्थ अवस्था में रहते हुए भी इतना ख्याल रहता है कि साधु ऊट पटांग बातों में न लगे और वैराग्य भावना लेकर चले और अन्तर और बाह्य में ठीक रहे। साधु की भी मंगलमय कामना नहीं करता वह रजोगुण और तमोगुण में रहता है। उसने संकेत किया रजोगुण और तमोगुण दोनों चले गये इसलिये दो चले गये। मैंने उत्तर दिया कि तुम्हारे तीनों जायं। गोविन्द कहने लगा कि इसका मतलब क्या है कि तुम्हारे तीनों जांय। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण ये तीनों मनुष्य में रहते हैं। रजोगुण रहता है, राजसी प्रवृत्ति रहती है और राजनैतिक दृष्टि से भाग लेता है और मन को उस ओर दौड़ाता है और रजोगुण में प्रवृत्त रहता है तो दुर्व्यसन उसमें लगे रहते हैं। सतोगुण रहता है तो धार्मिक जीवन बिताता है और समता के साथ रहता है। इंसान को तीनों गुणों से भी परे होना चाहिये। जैसा कि गीता में कहा है :

त्रिगुणातीतो भवार्जुन ?

तीनों गुणों को नष्ट करके सनातन भाव में चले जाओ।

असत्य को झुकना पड़ा

तीनों सांकेतिक शब्दों का अर्थ जब गोविन्द ने सुना तो उसका दिल दहल गया। वह सोचने लगा कि बड़े बड़े महात्माओं के पास भी इस प्रकार की गूढ़ बातें नहीं मिलतीं। अपनी धर्म पत्नी को क्या उपमा दूँ, किस प्रकार इसका सत्कार करूँ। बिना निर्णय के कोई कार्य होता है तो गलत होता है। माता पिता की आज्ञा से मैं यहां इसको लेकर आया और अगर इसको कुए में धक्का दे देता तो मैं इस बहुमूल्य रत्न को खो देता। मेरी क्या स्थिति होती ? इस प्रकार उसके मन में ग्लानि होने लगी और उसका चेहरा मलीन होने लगा। पत्नी कहती है प्राणनाथ ! "मैंने आपको सही बात सुनायी और

सत्य सत्य बात कही उससे आपको प्रसन्न होना चाहिये, फिर चहरे पर मलीनता किस प्रकार की ?" उसने कहा, प्रिये, "तुम्हारी बातों से मैं बहुत प्रभावित हूं, तुम जैसी सत्य निष्ठावान पत्नी मिली और धर्म में भी आगे वढ़ रही है। इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता है। यदि मुझे विषय लोलुप और संसार में फँसाने वाली पत्नी मिल जाती तो मेरे जीवन को वासनाओं में डाल कर नष्ट कर देती। किन्तु मुझे तुम्हारी जैसी पत्नी मिली है जो जीवन को उच्च शिखर पर पहुंचाने की कोशिश करती है। ऐसी पत्नी को खत्म करने के लिये पिता की आज्ञा लेकर चला उसका पश्चाताप और ग्लानि हो रही है।" पत्नी कहने लगी वस्तु स्थिति को आपने सुन लिया लेकिन "मातेश्वरी और पिताजी ने जो आदेश दिया है, अब आप उनकी आज्ञा का पालन करिये।"

मेरे मोह में मत फंसिये। यदि उन्होंने आपको कुए में धकेलने को आज्ञा दी है तो आप कृपा पूर्वक मुझे कुए में धकेलिए और परमात्मा के साथ एकाकार होने में मुझे सहयोग दीजिये। मैं उस समय भी परमात्मा में ध्यान रखूँगी और सोचूँगी कि मेरे जीवन में यह निर्णायक क्षणअपने सत्यस्वरूप को समझाने के लिये ही आया है। यह सुनकर गोविन्द अत्यन्त ही दुःखित हो गया। हा ! हा ! अरे अरे मैं कैसी पत्नी को कुए में धकेलने को जा रहा हूं। देवी, क्या तू आज मुझे अकेले को छोड़कर स्वर्गीय आनन्द को लूटने जाना चाह रही है। कुए में तुझे नही गिरना है, मुझे गिरना है । क्योंकि माता पिता के पास चला गया तो वे दूसरी स्त्री के साथ मेरी शादी कर देंगे और फिर मेरा जीवन अन्धकार के कुए में गिर जायेगा। तुम्हारी जैसी धर्म प्रिया के विना जीवन अन्धकारमय हो जायेगा। अतः हम दो मिलकर प्रेम से धार्मिक महोत्सव करें और घर घर धर्म को फैला। दोनों इस प्रकार का विचार कर अपने घर की ओर चले।

गुण होते हैं। सत्वोगुण, रजोगुण और तमोगुण।' सत्व और रजोगुण उसमें से चला गया। जो गृहस्थ अवस्था में रहते हुए भी इतना ख्याल रहता है कि साधु ऊट पटांग बातों में न लगे और वैराग्य भावना लेकर चले और अन्तर और बाह्य में ठीक रहे। साधु की भी मंगलमय कामना नहीं करता वह रजोगुण और तमोगुण में रहता है। उसने संकेत किया रजोगुण और तमोगुण दोनों चले गये इसलिये दो चले गये। मैंने उत्तर दिया कि तुम्हारे तीनों जायं। गोविन्द कहने लगा कि इसका मतलब क्या है कि तुम्हारे तीनों जांय। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण ये तीनों मनुष्य में रहते हैं। रजोगुण रहता है, राजसी प्रवृत्ति रहती है और राजनैतिक दृष्टि से भाग लेता है और मन को उस ओर दौड़ाता है और रजोगुण में प्रवृत्त रहता है तो दुर्व्यसन उसमें लगे रहते हैं। सतोगुण रहता है तो धार्मिक जीवन बिताता है और समता के साथ रहता है। इंसान को तीनों गुणों से भी परे होना चाहिये। जैसा कि गीता में कहा है :

त्रिगुणातीतो भवार्जुन ?

तीनों गुणों को नष्ट करके सनातन भाव में चले जाओ।

असत्य को झुकना पड़ा

तीनों सांकेतिक शब्दों का अर्थ जब गोविन्द ने सुना तो उसका दिल दहल गया। वह सोचने लगा कि बड़े बड़े महात्माओं के पास भी इस प्रकार की गूढ़ बातें नहीं मिलतीं। अपनी धर्म पत्नी को क्या उपमा दूँ, किस प्रकार इसका सत्कार करूँ। बिना निर्णय के कोई कार्य होता है तो गलत होता है। माता पिता की आज्ञा से मैं यहां इसको लेकर आया और अगर इसको कुए में धक्का दे देता तो मैं इस बहुमूल्य रत्न को खो देता। मेरी क्या स्थिति होती ? इस प्रकार उसके मन में ग्लानि होने लगी और उसका चेहरा मलीन होने लगा। पत्नी कहती है प्राणनाथ ! "मैंने आपको सही बात सुनायी और

सत्य सत्य वात कही उससे आपको प्रसन्न होना चाहिये, फिर चहरे पर मलीनता किस प्रकार की ?" उसने कहा, प्रिये, "तुम्हारी बातों से मैं वहुत प्रभावित हूं, तुम जैसी सत्य निष्ठावान पत्नी मिली और धर्म में भी आगे वढ़ रही है। इससे मुझे वड़ी प्रसन्नता है। यदि मुझे विषय लोलुप और संसार में फँसाने वाली पत्नी मिल जाती तो मेरे जीवन को वासनाओं में डाल कर नष्ट कर देती। किन्तु मुझे तुम्हारी जैसी पत्नी मिली है जो जीवन को उच्च शिखर पर पहुंचाने की कोशिश करती है। ऐसी पत्नी को खत्म करने के लिये पिता की आज्ञा लेकर चला उसका पश्चाताप और ग्लानि हो रही है।" पत्नी कहने लगी वस्तु स्थिति को आपने सुन लिया लेकिन "मातेश्वरी और पिताजी ने जो आदेश दिया है, अब आप उनकी आज्ञा का पालन करिये।"

मेरे मोह में मत फंसिये। यदि उन्होंने आपको कुए में धकेलने को आज्ञा दी है तो आप कृपा पूर्वक मुझे कुए में धकेलिए और परमात्मा के साथ एकाकार होने में मुझे सहयोग दीजिये। मैं उस समय भी परमात्मा में ध्यान रखूँगी और सोचूँगी कि मेरे जीवन में यह निर्णायक क्षण अपने सत्यस्वरूप को समझाने के लिये ही आया है। यह सुनकर गोविन्द अत्यन्त ही दुःखित हो गया। हा ! हा ! अरे अरे मैं कैसी पत्नी को कुए में धकेलने को जा रहा हूं। देवी, क्या तू आज मुझे अकेले को छोड़कर स्वर्गीय आनन्द को लूटने जाना चाह रही है। कुए में तुझे नही गिरना है, मुझे गिरना है । क्योंकि माता पिता के पास चला गया तो वे दूसरी स्त्री के साथ मेरी शादी कर देंगे और फिर मेरा जीवन अन्धकार के कुए में गिर जायेगा। तुम्हारी जैसी धर्म प्रिया के विना जीवन अन्धकारमय हो जायेगा। अतः हम दोनों मिलकर प्रेम से धार्मिक महोत्सव करें और घर घर धर्म को फैलावें। दोनों इस प्रकार का विचार कर अपने घर की ओर चले। माता-

पिता देख रहे थे कि उनका पुत्र अपनी स्त्री के साथ वापिस आ रहा है। उनकी दूर से ही दृष्टि पड़ी कि पुत्रवधू को साथ लेकर वह आ रहा है। दोनों ने माता के पैर छूए। नमस्कार किया तो माता ने भी मुँह मोड़कर आशीर्वाद नहीं दिया। पिता ने भी मुँह फेर लिया। गोविन्द ने कहा, पिताजी आप क्यों नाराज हो रहे हैं? क्या करूं मैंने आपकी आज्ञा का पालन नहीं किया है। आप मेरी बात को सुनिये। पहले किसी भी बात का तथ्य निकालिये, फिर उस पर निर्णय कीजिये। सहसा विदधीत न क्रिया। जल्दी में कोई कार्य नहीं किया जाना चाहिये। मैं इसको कुए में गिराने के लिये तैयार था और आपकी यह पुत्रवधू भी इसके लिये तैयार थी और इसने कोई विरोध भी नहीं किया। किन्तु मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि आपने जो यह निर्णय किया है यह क्यों किया? ये जो तीन बातें थी इन तीन बातों का अर्थ समझे बिना, उस पर विचार किये बिना आपने आज्ञा दे दी और मैं भी उसके लिये तत्पर हो गया। वहां पर मैंने इससे उसका अर्थ पूछा। इस प्रकार गोविन्द ने उन सारी बातों को माता-पिता के सामने रखा और उसको सुनकर माता पिता अत्यन्त ही दुखी हुए। उनकी आंखों में आंसू भर आये और अपनी पुत्रवधू के चरणों पर गिर कर कहने लगे हे देवी, तुम्हारा जीवन धन्य है। छोटी अवस्था के अन्दर भी तुमने सत्यनिष्ठा का परिचय दिया है, धर्म भावना का परिचय दिया है, वह हम नहीं भूल सकते हैं। यह सारा घर, यह सारी सम्पदा अब तुम्हारे चरणों में है। इस प्रकार एक शान्ति का वातावरण, प्रेम का साम्राज्य, धार्मिक भावना का साम्राज्य उस परिवार में आया और वह परिवार एक आदर्श परिवार बन गया। ऐसी भावना आप अपने परिवार के अन्दर रखने को तैयार हैं तो आप आज आत्मा के स्वरूप को समझने

के साथ साथ जीवन क्या है ? उसकी परिभाषा चल रही है। उसको आप अपने मन में स्थायी रूप से बिठाइये तो आपकी हैरानी समाप्त हो जायेंगी और हैरानी समाप्त होने के साथ साथ धर्म ध्या की जागृति करते रहेंगे तो आपका जीवन भी ऐसे मंगलमय प्रसंग के साथ भगवान श्रेयांस की प्रार्थना के अनुरूप बन सकेगा।

लाल भवन
२७ जुलाई ७२

●●

●●

सोच समझ कर काम करने से मनुष्य अनेक संकटों से बच जाता है। अयत्न पूर्वक किया गया काम चाहे वह धर्म का ही क्यों न हो, उसमें अनिष्ट की सम्भावना रहती ही है। इसीलिए बुद्धिमानों ने कहा है कि :— पहिले सोचो, समझो, फिर करो।

—जैनाचार्य श्री जवाहरलाल जी म०

× × × ×

पूरे निर्णय के साथ किया गया कार्य ही हितावह होता है।

—महात्मा गांधी

●●

अलमप्पणो होंति अलं परेसिं

—सूत्रकृतांग १२।१९

ज्ञानी आत्मा ही स्व और पर के कल्याण में समर्थ होता है।

---

९ | परम–आश्रय

प्रणमु वासुमपूज्य जिननायक सदा सहायक तू मेरो,
विषम वाट घाट भयथानक परमाश्रय शरणो तेरो''''॥

यह प्रभु वासपूज्य भगवान की प्रार्थना है। नामों की स्थितियों के साथ कविता की स्थिति भी परिवर्तित हो रही है और भावों का संकलन भी विभिन्न प्रकारों से आ रहा है। वासपूज्य भगवान के चरणों में जो कुछ भी प्रार्थना का प्रसंग आया है, इस प्रार्थना में कल की प्रार्थना से आज कुछ अन्तर है। कल की प्रार्थना में चेतन को सम्बोधन करके सावधानी दिलाई थी कि तू अपने वर्तमान जीवन को कल्याण के मार्ग पर लगा दे, जब कि आज की प्रार्थना में वासपूज्य भगवान को सहायक के रूप में पुकारा जा रहा है, और वह भी सहायता कहाँ ? तो उसका संकेत दिया है, "विषम वाट-घाट" विषम-भयंकर रास्ता है, पहाड़ आदि भयंकर जंगली स्थान है।

जहाँ पर चोर डकैतों का भय है, आदि वातों को लेकर भयानक अवस्थाओं का वर्णन किया गया है, और सब अवस्थाओं में यह अभियाचित किया गया है कि यदि आपकी कृपा रहे तो सब स्थानों पर मैं कुशलतापूर्वक गमन कर सकता हूं, अपनी स्थितियों को सुरक्षित रख सकता हूं। प्रार्थना करना प्रार्थना की दृष्टि से उपयुक्त है, लेकिन प्रार्थना के अन्दर आये भावों को तात्त्विक दृष्टि से जीवन के साथ सम्वन्धित करना, सिद्धान्त की सुरक्षा भी रहे और जीवन के क्षेत्र में भी प्रगति हो यह विशेष महत्व की बात है। इस प्रार्थना से सहसा यह समझाया गया है कि कितना भी भयावह स्थान हो और कैसी भी विकट स्थिति हो, लेकिन वहाँ पर भगवान को सहायक मान लेने से सव दुविधायें टल जाती हैं, और यह जीवन निर्वाध होकर आगे वढ़ जाता है।

वात तो एक दृष्टि से उपयुक्त लगती है, लेकिन दार्शनिक दृष्टि से तर्कप्रधान व्यक्ति की निगाह में इस प्रार्थना में भी कई प्रश्न खड़े हो जाते हैं। विचारक व्यक्ति इधर शास्त्र का श्रवण करता है, उस शास्त्र के श्रवण से यह उसको अवगत होता है, शास्त्र के मर्म की स्थिति का वोध होता है, तो वह यह सोचता है कि सिद्धान्त की दृष्टि से भगवान तटस्थ हैं, दृष्टा हैं। वे सांसारिक कार्यों में या ऐसे प्रसंगों के ऊपर कभी उपस्थित नहीं होते। वे अपने स्वरूप में तल्लीन हैं। जव भगवान अपने स्वरूप रमण में अपनी अवस्था को रख रहे हैं तो प्रार्थना के प्रसंग में यह प्रार्थना करें कि भगवान आपकी सहायता से हमारी ये सव वातें हट जायगीं यह कैसे संभावित हो सकता है? इसमें अपेक्षा दृष्टि से सोचने की आवश्यकता है। यद्यपि भगवान अपने स्वरूप में सदा के लिए विद्यमान हैं और वहां से जरा भी विचलित नहीं होते और न कभी इस भू-मण्डल के ऊपर आकर किसी के सहायक के रूप में उपस्थित होते हैं जैसा कि आज

अलमप्पणो होंति अलं परेसिं

—सूत्रकृतांग १२।१९

ज्ञानी आत्मा ही स्व और पर के कल्याण में समर्थ होता है।

---

१ | परम-आश्रय

प्रणमु वासुमपूज्य जिननायक सदा सहायक तू मेरो,
विषम वाट घाट भयथानक परमाश्रय शरणो तेरो''''॥

यह प्रभु वासपूज्य भगवान की प्रार्थना है। नामों की स्थितियों के साथ कविता की स्थिति भी परिवर्तित हो रही है और भावों का संकलन भी विभिन्न प्रकारों से आ रहा है। वासपूज्य भगवान के चरणों में जो कुछ भी प्रार्थना का प्रसंग आया है, इस प्रार्थना में कल की प्रार्थना से आज कुछ अन्तर है। कल की प्रार्थना में चेतन को सम्बोधन करके सावधानी दिलाई थी कि तू अपने वर्तमान जीवन को कल्याण के मार्ग पर लगा दे, जब कि आज की प्रार्थना में वासपूज्य भगवान को सहायक के रूप में पुकारा जा रहा है, और वह भी सहायता कहाँ ? तो उसका संकेत दिया है, "विषम वाट-घाट" विषम-भयंकर रास्ता है, पहाड़ आदि भयंकर जंगली स्थान है।

जहाँ पर चोर डकैतों का भय है, आदि बातों को लेकर भयानक अवस्थाओं का वर्णन किया गया है, और सब अवस्थाओं में यह अभियाचित किया गया है कि यदि आपकी कृपा रहे तो सब स्थानों पर मैं कुशलतापूर्वक गमन कर सकता हूं, अपनी स्थितियों को सुरक्षित रख सकता हूं। प्रार्थना करना प्रार्थना की दृष्टि से उपयुक्त है, लेकिन प्रार्थना के अन्दर आये भावों को तात्विक दृष्टि से जीवन के साथ सम्बन्धित करना, सिद्धान्त की सुरक्षा भी रहे और जीवन के क्षेत्र में भी प्रगति हो यह विशेष महत्व की बात है। इस प्रार्थना से सहसा यह समझाया गया है कि कितना भी भयावह स्थान हो और कैसी भी विकट स्थिति हो, लेकिन वहाँ पर भगवान को सहायक मान लेने से सब दुविधायें टल जाती हैं, और यह जीवन निर्बाध होकर आगे बढ़ जाता है।

बात तो एक दृष्टि से उपयुक्त लगती है, लेकिन दार्शनिक दृष्टि से तर्कप्रधान व्यक्ति की निगाह में इस प्रार्थना में भी कई प्रश्न खड़े हो जाते हैं। विचारक व्यक्ति इधर शास्त्र का श्रवण करता है, उस शास्त्र के श्रवण से यह उसको अवगत होता है, शास्त्र के मर्म की स्थिति का बोध होता है, तो वह यह सोचता है कि सिद्धान्त की दृष्टि से भगवान तटस्थ हैं, दृष्टा हैं। वे सांसारिक कार्यों में या ऐसे प्रसंगों के ऊपर कभी उपस्थित नहीं होते। वे अपने स्वरूप में तल्लीन हैं। जब भगवान अपने स्वरूप रमण में अपनी अवस्था को रख रहे हैं तो प्रार्थना के प्रसंग में यह प्रार्थना करें कि भगवान आपकी सहायता से हमारी ये सब बातें हट जायगीं यह कैसे संभावित हो सकता है? इसमें अपेक्षा दृष्टि से सोचने की आवश्यकता है। यद्यपि भगवान अपने स्वरूप में सदा के लिए विद्यमान हैं और वहां से जरा भी विचलित नहीं होते और न कभी इस भू-मण्डल के ऊपर आकर किसी के सहायक के रूप में उपस्थित होते हैं जैसा कि आज

का सिपाही किंवा पुलिस दुःखनिवारण की दृष्टि से मनुष्य के लिए सहायक बनती है या ऐसी कोई आततायी की स्थिति बन जाती है तो उसमें उसका सहारा लिया जाता है, उस तरह का सहारा तो भगवान से मिलने वाला नहीं है। लेकिन भगवान का सहारा भगवान के मार्ग से जो हमें मिलता है उस सहारे से ही यह आत्मा अपने गन्तव्य स्थान पर निर्विघ्नता के साथ पहुंच जाती है। इस दृष्टि से भगवान को सहायक के रूप में माना जाय, भगवान चाहे पहुंचे या न पहुंचे लेकिन भगवान का मार्ग सर्वत्र विद्यमान है। जहां कहीं भी आप अवलोकन करना चाहें। उस मार्ग को ध्यान में रखकर उस मार्ग के सहारे यदि चलें तो वह भगवान का ही सहारा है। यदि हम उनके बताये हुए मार्ग के सहारे चल रहे हैं तो भगवान के सहारे ही चल रहे हैं, और यदि मार्ग से भटककर अर्थात बताये हुए उस रास्ते से हटकर एकान्त गुफा में भी जाकर बैठ जाते हैं और यदि वहां पर रट लगाते हैं कि भगवान आप मेरे सहायक बनो, मैं आपका जप कर रहा हूं आपकी पूजा कर रहा हूं आपके लिए तप कर रहा हूँ अतः आप महरबानी करके इस गुफा के अन्दर मेरी सहायता करो। इस भावना से यदि वह बैठा रहे और एक जिन्दगी नहीं अनेक जिन्दगियां बिता दें, लेकिन फिर भी भगवान की सहायता नहीं मिल सकती, क्योंकि भगवान की सहायता अविधि से नहीं मिलती है, विधि से मिलती है। भगवान का मार्ग ऐसा है जो कि राजमार्ग है। उस राजमार्ग पर जो भी पहुंच जाता है उसको वहां पर भगवान की सहायता स्वतः प्राप्त हो जाती है। एक मनुष्य कमरे में प्रवेश करे और उस कमरे के दरवाजे को बन्द करके अन्दर से कूंठा (संकल) लगा दे और अपनी आंखों पर पट्टी बान्ध ले, फिर वहां बैठकर सूर्य से प्रार्थना करे कि सूर्यनारायण तू आ और मुझे प्रकाश दे, मैं अन्धकार में बैठा हुआ हूं। तू आ। मेरे नेत्रों को खोल

और अपना प्रकाश यहां विस्तार रूप से फैला दे। इस प्रकार वह व्यक्ति उस कमरे में बैठकर सूर्य की प्रार्थना करे तो क्या सूर्य वहां कमरे में जाकर प्रकाश देगा ? एक दिन की प्रार्थना से नहीं, दो दिन की प्रार्थना, दो दिन की ही नहीं तो १० महीनों तक भी वह प्रार्थना करे सारी जिन्दगी भर करे और कल्पना कर लीजिये कि ऐसी अनेक जिन्दगियां प्रार्थना करता रहे लेकिन फिर भी सूर्य उस कमरे में जाकर प्रकाश देने वाला नहीं है। यदि उसको प्रकाश लेना है तो उसको यही कहा जाय कि जो तेरी आंखों पर पट्टी बन्धी हुई है उस पट्टी को स्वयं तू खोल और दरवाजा खोलकर बाहर आ। यदि वह सूर्य के मार्ग पर आगया तो सूर्य का प्रकाश बिना प्रार्थना के ही उसे मिल जायगा। सूर्य की साधना करने की भी जरूरत नहीं है, लेकिन उसके मार्ग पर आने की आवश्यकता है। वह व्यक्ति अपने आंख की पट्टी खोलकर दरवाजे के बाहर आयेगा और उसके मार्ग पर आ गया तो सूर्य की सहायता स्वतः उसको उपलब्ध हो जाती है। ठीक वैसे ही इस आत्मा को भगवान की सहायता के लिए प्रार्थना करने से पूर्व अपने नेत्रों की पट्टी को दूर करना है और हृदय के दरवाजों को खोलकर वीतराग देव का जो मार्ग है उस मार्ग को भलीभाँति समझना है। यदि समझकर उस पर गमन करे तो प्रभु की सहायता स्वतः ही उसको मिल सकती है, परमात्मा को यहाँ आने की आवश्यकता ही नहीं रहती। सूर्य के प्रकाश में आकर के वह सूर्य का प्रकाश ले लेता है, तो सूर्य को उसके पास आने की जरूरत नहीं है। वैसे ही वासपूज्य भगवान की प्रार्थना आप इस तात्विक दृष्टि से करें, तो उनके मार्ग के अनुसार चलें तो उनकी सहायता की स्थिति आपके हाथ में आ जाती है।

भिखारी मत बनो

लेकिन फिर भी कुछ भाइयों के मन में यह प्रश्न तो अवश्य

रहता है कि जो भगवान के उक्त मार्ग पर चलने वाला मनुष्य है वह कभी भी माँगणी नहीं करता है और शास्त्रीय दृष्टि से भी हम सुनते हैं "नो इह लोगट्ठयाए तव महिट्ठिज्जा" इस लोक की कामना के लिए हम तप न करें। "नो परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा।" परलोक की कामना के लिए तप मत करो, आदि तो इन शास्त्रीय बातों में इस लोक सम्बन्धी सारी परिस्थितियाँ आ गई। चोर डकैत यह सब के सब इस लोक में भय उत्पन्न करते हैं और इन्हीं उपद्रवों से वचने के लिए वासुपूज्य भगवान की प्रार्थना कवि ने की है। इसमें तो कामना कर ली गई और इस कामना के साथ चलेंगे तो (निदान) तो नही हो जायगा ? यदि निदान की (स्थिति आ गई तो भगवान का मार्ग कहां रहेगा। इस प्रश्न में भी तथ्य अवश्य है लेकिन तथ्य की स्थिति को आप यदि ठीक तरह समझें तो उसका भी समाधान हो जाता है। कामना की दृष्टि से अगर वह भगवान को याद कर रहा है, और निदान की स्थिति में सोच रहा है तो वह गलत राह पर है, वह भगवान के मार्ग पर नहीं है, लेकिन एक शुद्ध सम्यक् दृष्टि के नाते अपने जीवन के क्षेत्र को लेकर चल रहा है, और उसको यह ख्याल है कि मुझे प्रभु के अतिरिक्त और किसी को याद नहीं करना है। इस प्रकार हर क्षेत्र में प्रभु को ही याद करें और इससे भिन्न तत्वों की तरफ उसका किंचित भी ध्यान न रहे इस भावना को रखकर कि वह इसमें इस लोक की मांगणी नहीं कर रहा है तो उसका दृढ़ विश्वास उसको आगे बढ़ाता जाता है, लेकिन ऐसी स्थिति सब मनुष्यों की नहीं बनती है। सब मनुष्य एक तरह के नहीं होते हैं, सब का मनोबल प्रबल नहीं वनता है और जिनका मन निर्वल है वे व्यक्ति यदि कदाचित् ऐसे प्रसंग में सहायता भी चाहें तो भगवान की सहायता की ही कामना व्यक्त करें, लेकिन उसके अतिरिक्त किसी की सहायता की बात व्यक्त न करें।

स्वर्गीय आचार्य श्री का कथन था कि पुत्र अपने घर पर पहुंचता है और वह चाहता है कि मुझे भोजन मिले। उसकी अभिलाषा के अनुसार घर में पुत्र की माता स्वतः उसको भोजन परोस देती है, लेकिन कदाचित् माता किसी कार्य में लगी हुई है, भोजन नहीं परोस सकती है और मांगने की आवश्यकता है तो वह माता से ही मांगे न कि वह अन्य से जाकर मांगे। इसमें आचार्यश्री का कथन था कि किसी अयोग्य से जाकर नहीं मांगा जाय। हालांकि माता विना मांगे ही परोस देती है, लेकिन फिर भी न रहा जाय तो उससे ही याचना करे। वैसे ही साधक के लिए यह निर्देश है कि ठीक तरह से धर्म में दृढ़ विश्वास रखकर लगातार सम्यक् दृष्टि से अपने जीवन की यात्रा को लेकर आगे बढ़ता रहे तो किसी भी बात की मांगणी की आवश्यकता नहीं। उसका रास्ता स्वतः साफ होता चला जाता है, और कदाचित् न रहा जाय और मांगा ही जाय तो भगवान के अतिरिक्त किसी और के सामने हाथ नहीं फैलाया जाय इस बात का संकेत भी इसमें दिया गया है—

दूसरी बात, बीच की शताब्दी में कुछ ऐसी मान्याएं चल पड़ीं थीं जिनमें अनेक तरह की मिन्नतें इधर-उधर की होने लगीं और साधक अन्य स्थानों पर भटकने लगा। तब ज्ञानियों ने देखा कि जो गलत स्थान पर जाकर मिन्नत करता है, प्रार्थना करता है, इसकी अपेक्षा इसको मूल स्थान पर ही कायम रखा जाय। इस दृष्टि से प्रार्थना की पंक्तियों में यह संकेत भी दिया गया कि भाई, तू जो कुछ भी करना चाहता है वह प्रभु के चरणों में निवेदन कर। इस दृष्टि से इन बीच की शताब्दियों में प्रार्थना की इस प्रकार की परम्परा चल पड़ी। लेकिन इसमें कोई वीतराग वाणी के विपरीत हो यह भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जहाँ "लोगस्स" का पाठ है उसमें स्पष्ट शब्दों में कहा है :—

"सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु"

लोगस्स के इस पद में सिद्धों से प्रार्थना की है कि हेसिद्धदेव ? हमको सिद्धि दो या दिखाओ। लोगस्स का पाठ कौन उच्चारण नहीं करता है। इसको प्रायः सभी ने अपने प्रतिक्रमण की दृष्टि से सबसे पहले याद किया है। तो वहां पर सिद्धों से मांगणी (याचना) की गई है कि सिद्ध भगवान मुझे भी सिद्धि दें। वास्तव में भगवान सिद्धि देते नहीं हैं लेकिन सिद्धि की भावना जब वह अपने अन्दर जागृत करता है और उसका दृष्टिकोण मांगनी का होता है तो इसका तात्पर्य यह लेना चाहिए कि तुम्हारे अन्दर में जो सिद्धि की योग्यता है अर्थात् तुम्हारी आत्मा योग्यता की दृष्टि से सिद्ध तुल्य है। उस सिद्ध तुल्य आत्मा से ही प्रार्थना की गई कि मुझे सिद्धि दे, अर्थात् मेरे अन्दर में रहने वाले भाव जो सिद्ध पर्याय हैं, उस सिद्ध पर्याय आत्मा से प्रार्थना की गई कि तुम मुझे यह जीवन दे दो। आप कभी कहेंगे कि, क्या यह बात कहीं सम्भावित हो सकती है। अपने आपको सिद्ध मान कर उससे सिद्धि की याचना की जाय क्या यह सम्भव है ? इसके लिए कहा गया है कि किसी नय की दृष्टि से सिद्ध तो पूर्ण सिद्ध पर्याय हैं लेकिन योग्यता की दृष्टि से भव्य आत्मा भी सिद्ध रूप में रही हुई है। इसीलिए कहा है कि **सिद्धां जैसा जीव है, जीव सोही सिद्ध होय। कर्म मैल को आंतरों, बूझे विरला कोय।** आप यह उच्चारण करते हैं। इसमें किस बात का संकेत है ? संकेत यह है कि आप भी सिद्ध जैसे हैं लेकिन आप कर्म बन्धनों से बंधे हैं इसीलिए आपअन्य की पुकार कर रहे हैं। लेकिन यह नय दृष्टि ही सब कुछ नहीं है, क्योंकि यदि एकान्त दृष्टिकोण आगया तो भगवान के मार्ग से हम भटक जाएंगे। और यदि सापेक्षता को मद्देनजर रख कर इसको समझने का प्रयास करें तो यह सिद्धि जो अपने में रही है उसे सिद्धि के रूप में प्रगट कर सकते हैं। शास्त्रीय दृष्टिकोण की इस उच्चतम स्थिति को समझने से पूर्व हम वर्तमान

जीवन की उन समस्याओं या प्रश्नों को हल करने का प्रयास करें जिनके कि बिना हम उस स्वरूप को नहीं पहिचान सकते हैं। यदि इस प्रकार क्रमिक प्रयास करते रहे तो हम प्रार्थना के माध्यम से उस सिद्ध स्वरूप को प्राप्त कर सकेंगे या अपने आप में प्रकट कर सकेंगे जिसकी याचना हम सिद्ध प्रभु से कर रहे हैं।

सोचिए समझिए और फिर करिए

मैं कुछ जीवन के स्वरूप को समझाने का प्रयास कर रहा हूं। यह जीवन क्या है और जीवन की वह वास्तविक परिभाषा हमारे मन मस्तिष्क में कैसे आए, हम कहीं जीवन के नाम पर अजीवन को तो जीवन नहीं समझ रहे हैं, हम कहीं आत्मा के नाम पर अनात्मा को तो आत्मा नहीं समझ बैठे हैं, भगवान के नाम पर अभगवान को तो भगवान नहीं समझ लिया गया है। इन बातों का ज्ञान आपको और हमको स्पष्ट रूप से कब होगा जब कि हम इसका चिन्तन ठीक तरह से करेंगे। जीवन की परिभाषा के साथ अपने वर्तमान जीवन को जानने की कोशिश करें क्योंकि शास्त्रकारों ने मानव को उद्‌बोधन दिया है :—"असंखयं जीवियं मापमायए" यह जीवन असंस्कारित है अतः प्रमाद मत कर और इस प्रमाद की स्थिति से ऊपर उठकर उसे इस जीवन का संस्कार करके जीवन के स्वरूप को समझने का प्रयास करना है।

उस जीवन की परिभाषा में अनेक व्यक्तियों के लक्षण आपके सम्मुख आ सकते हैं। इन अनेकों में से वास्तविक लक्षण पहचानने का उत्तरदायित्व बुद्धिमान व्यक्ति पर आता है और बुद्धिमान व्यक्ति ही इन अनेकों में से एक का निर्णय करता है। उसी दृष्टि से जीवन की एक परिभाषा आपके सामने रखी जा रही है, उसमें भी आप थोड़ा ध्यान दें और परिभाषा को समझने का प्रयास करें।

इसमें कहा गया है कि सम्यक् निर्णायकम् समतामयं च यत् तज्

जीवनम्। इसमें सम्यक् निर्णायकम् शब्द पर थोड़ा गहरा सोचना है क्योंकि निर्णायक स्थिति यदि हमारे सामने स्पष्ट होती है तो हमें जीवन का वास्तविक प्रकाश उपलब्ध हो सकता है जिसकी हम प्रार्थना के माध्यम से याचना कर रहे थे। आज सम्यक् निर्णायक स्थिति के अभाव में मनुष्य इधर-उधर भटक रहा है। और खास कर आत्मा के स्वरूप के विषय में तो वह दिग्भ्रान्त सा हो रहा है क्योंकि अलग-अलग दार्शनिक भिन्न-भिन्न रूप में आत्मस्वरूप को प्रस्तुत करते हैं। कोई-कोई सांख्यादि दार्शनिकों का कहना हैं कि आत्मा कर्त्ता धर्त्ता कुछ नहीं है। आत्मा परिणामी नहीं है, आत्मा कूटस्थ नित्य है। एक शरीर की स्थिति में रहने वाली है। ऐसी आत्मा सम्यक् निर्णायक है, ऐसे विचार जब सामने आते हैं तो उन पर कुछ चिन्तन आगे बढ़ता है कि यदि आत्मा कर्ता धर्ता कुछ नहीं है और कूटस्थ नित्य है तो फिर निर्णायक कैसे? जो परिणामी नहीं होता वह निर्णायक नहीं हो सकता है आपके लिए ये शब्द कुछ अपरिचित से आ रहे हैं। आप कहेंगे यह परिणामी क्या है? परिणामी का अर्थ होता है परिणमनशील। परिणमन स्वभाव हैं। 'परिणमन से तात्पर्य है एक अवस्था की स्थिति से दूसरी अवस्था में मुड़ना, लेकिन दूसरी अवस्था के अन्दर मुड़ने पर भी अपने स्वरूप को नहीं छोड़ना। जैसे स्वर्ण, सोने के रूप में है। सोना परिणामी है। क्योंकि स्वयं स्वर्णत्व के रूप में होते हुए भी ढल सकता है, टूट सकता है, मुड़ सकता है, पिघल सकता है यानि आग के अन्दर द्रवित हो सकता है और दूसरे रूप में ढल सकता है लेकिन ऐसी स्थिति में भी स्वर्णत्व रूप को नहीं छोड़ता। सोने की डली का आकार टूटा और लड़ी का वह आकार बना। उस डली को अग्नि का ताप लगा, बहुत ज्यादा ताप लगा और वह द्रवित हो गयी, यह डली में परिणमन हुआ इसको कहते हैं परिणाम। द्रवित होने के बाद फिर

उसको दूसरे सांचे में ढाल कर, तोड़ मरोड़ कर लड़ी बना दिया लेकिन उस लड़ी में भी स्वर्ण ज्यों का त्यों मिलता है। तो आप समझे होंगे कि उस डली में परिणाम होने का स्वभाव था पर अवस्था अन्तर होने पर भी, अर्थात् दूसरी-दूसरी अवस्था में उसका परिवर्तन होने पर भी सोने का महत्व और सोने का स्वरूप कायम रहा। कहां तो डली और कहाँ लड़ी का आकार। आकार बिल्कुल नहीं मिल रहा है लेकिन स्वर्णपन में कोई कमी नहीं आ रही है। यह परिणाम की स्थिति जैसे सोनें में है उसी तरह से आत्मा में समझी जायेगी तो आत्मा का सही स्वरूप समझ पायेंगे और यदि ऐसे परिणाम के स्वरूप को नहीं समझ पाये तो आप उस निर्णायक तत्व को नहीं समझ सकेंगे, क्योंकि निर्णय करने का भी एक परिणाम है। आत्मा परिणमनशील है, वह परिणामी है, चैतन्यमय है।

दूसरा इसका विशेषण है कूटस्थ नित्यता जैसे—वज्र का खम्बा कभी मुड़ता नहीं है उसमें लचक के रूप में परिणाम नहीं होता है उसे कहते हैं कूटस्थ नित्य। आत्मा ऐसी नहीं है कि जिसमें किसी तरह का परिणाम न हो। अगर ऐसा हो तो वह आत्मा नही रहेगी आप भले हो उसे आत्मा के नाम से पुकारें। लेकिन वह अनात्मा है।

बन्धुओ, इसको मैं थोड़ा गहराई के साथ कहने की सोच रहा हूं मैं वैसे बहुत गहराई में इस समय नहीं जाना चाहता लेकिन अपनी आदत के अनुसार मैं इस बारे में कुछ कहना चाहूंगा कि आप उस आत्म तत्त्व की गहराई को समझें।

केवल शरीर बदलता है।

आप सोचिये कि आत्मा एकान्त कूटस्थ नहीं परिणामी भी है क्योंकि एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जा सकती है, लेकिन

दूसरे शरीर में जाने पर भी वह अपने स्वरूप को नहीं छोड़ देती है। एक मनुष्य की आत्मा प्रसंग आने पर हाथी के शरीर में भी जा सकती है। मनुष्य शरीर के आकार में जो आत्म प्रदेश व्याप्त थे, वे आत्मप्रदेश हाथी के लम्बे चौड़े शरीर में पहुंच गये, लेकिन हाथी के शरीर में पहुंचने पर भी जो आत्मा का लक्षण है जो आत्म प्रदेश मनुष्य की आत्मा के अन्दर थे, मनुष्य के पर्याय में थे वे वही हैं, उनमें कोई अन्तर नहीं आया तो परिणामी होते हुए भी आत्मा अपने स्वरूप के अन्दर दृढ़ है, अटल है। इसी को सत् तत्व की संज्ञा दी गई है। इसलिए शास्त्रकारों ने "उत्पात् व्यय ध्रोव्ययुक्त' सत्", यानी जिसके अन्दर उत्पात् अर्थात् उत्पन्न होना व्यय होना और ध्रुव या अटल रहना ये तीनों अवस्थायें हों वह सत् है, और जिसमें ये तीनों अवस्थायें एक साथ नहीं पाई जातीं हैं वह तत्व सत् नहीं असत् है। उस दृष्टिकोण से आत्मा को भी तत्व माना गया है और आत्मा को निर्णायिक माना गया है। जब आत्मा तत्व है और निर्णायिक है और सत् है तो उसमें ये तीन अवस्थायें अवश्य माननी होंगीं। इन तीन अवस्थाओं को माने बिना आप तत्व के निर्णय को पूरी तरह नहीं समझ पायेंगे। इन तीन अवस्थाओं को मानेगें तो आत्मा को परिणामी स्वीकार करेंगे, और परिणामी स्वीकार करने पर ही आप सोच पायेंगे कि उसमें निर्णय करने का भी एक परिणाम है। कभी ऐसा भी विचार सामने आता है कि आत्मा तो कूटस्थ नित्य है यह परिणामी स्वभाव आत्मा का नहीं, प्रकृति का है, और प्रकृति सत्व रजस् और तमो तीन स्वभावात्मक है। जब तक इन तीनों की साम्यता रहती है तब तक सृष्टि का कोई कार्य नहीं होता है, लेकिन तीनों अवस्थाओं में जब विकृति-विषमता आती है तो उसमें महद् तत्व पैदा होता है। उससे अहंकार फिर तनू मात्रा आदि कुछ तत्वों की सृष्टि होकर प्रकृति सारे संसार की रचना कर लेती है और पुरुष के सामने अपना नत्य उपस्थित करती है। इसमें प्रकृति

के अन्दर बुद्धि भी मानी गई है वह प्रकृति का ही गुण है। उस बुद्धि में सफेदी है और उसमें आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है। प्रतिबिम्ब पड़ने से आत्मा इस प्रकृति की सारी रचना को अपने आप समझ लेती है। और जब उसको यह खयाल हो जाता है कि यह सारा संसार एक प्रकृति का नाटक है और मैं इस कार्य से अलग हूं ऐसा जब विवेक होता है तो वह प्रकृति से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार के विचारों की स्थिति के साथ युक्तियुक्त विचारों का चिन्तन किया जाय तो यह प्रश्न होता है कि प्रकृति के ऊपर पुरुष का प्रतिबिम्ब कैसे पड़ा ? समान प्रकृति का समान प्रकृति पर प्रतिबिम्ब पड़ सकता है। कांच में जो मनुष्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है तो कांच पुद्गलों से बना है। और मनुष्य का शरीर भी पौदगलिक है अतः उसमें प्रतिबिम्ब पड़ता है। उस दपर्ण में वर्ण, गंध रस और स्पर्श होता है और जिसका प्रतिबिम्ब पड़ता है वह भी वर्ण गंध, रस और स्पर्श वाला होता है। दोनों समान धर्म वाले हैं इसलिए प्रतिबिम्ब पड़ता है, लेकिन प्रकृति वर्ण, गन्ध और स्पर्श वाली मा ी जाती है और आत्मा वर्ण,गन्ध और स्पर्श रहित मानी जाती है.तो आत्मा का प्रतिबिम्ब बुद्धि पर कैसे पड़ सकता है ? रूपी का प्रतिबिम्व अरूपी पर नहीं पड़ता है। प्रतिबिम्ब रूप का रूप पर ही पड़ता है, लेकिन इसलिए यह कथन कि बुद्धि के अन्दर आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है और आत्मा में भ्रान्ति पैदा होती है, यह युक्तिसंगत नही है।

दूसरी वात यह है कि आत्मा यह सोचती है कि मेरा प्रतिबिम्ब इस पर पड़ रहा है और यह प्रकृति है, यह सोचने की स्थिति अगर उसमें आगई तो आत्मा परिणामी हो गई। फिर उसको कूटस्थ नित्य कैसे कहा जाय ? यदि यह कहा जाता है कि आत्मा विवेक ख्याती से सोचती है, तो विवेक ख्याती परिणामी के विना नहीं होती है। पहले आत्मा भ्रान्ति के साथ थी फिर विवेक ख्याती मिली तो विवेक के कारण भ्रान्तिरहित हुआ इसे ही तो परिणामी स्वभाव

कहते हैं यदि इस परिणामी नित्य आत्मा को निर्णायक शक्ति के रूप में लिया जाता है तो वह इस जीवन के साथ, आगे का मोड़ कर सकती है।

आप जिस शरीर के अन्दर बैठे हुए हैं, जिस परिणामी भाव को धारण करके यह आत्मा मनुष्य पर्याय में बैठी हुई है इस पर्याय के वास्तविक संस्कारित स्वरूप को समझाने के लिए चरित्रवल का सहारा लिया जाता है ताकि चरित नायकों के चरित्र के माध्यम से तत्वों को समझ सकें। मनुष्य जीवन का पर्याय तो हर आत्मा को मिला हुआ है पर जीवन की निर्णायक शक्ति को समझे बिना वह पर्याय अधूरा रह जाता है। एक तरुण के जीवन की स्थिति का एक चिन्तन मैं आपके सामने रखता हूं। एक तरुण जिसकी आत्मा आत्मिक गुणों से परिपूर्ण है और सही निर्णय कर पाने में सक्षम है। वह कविता के रूप में इस प्रकार है—

निज गुण सुखकारी ध्याता है आत्मराम को

इस भरत क्षेत्र की दक्षिण दिशा में विख्यात मनिपिंगल नाम का एक देश है। उसमें विविध नगर हैं वे नगर शोभा से युक्त हैं। उसमें धनी मानी और विद्वान सभी तरह की जनता का आवास है। बस्तियां सभी तरह की वस्तुओं के व्यापार से, आदान-प्रदान से और सामाजिक व्यवस्था से वह देश सम्पन्न है। उस देश का नामकरण पोतनपुर के रूप में है, उस देश के राजा जयशत्रु के रूप में विख्यात थे।

यह राजकीय जमाने का प्रसंग है, लेकिन राजाओं में भी सभी ऐशोआराम में लगे हुए थे ऐसी कल्पना नहीं करनी चाहिए। अधिकांश भाग विकृत हो सकता है, लेकिन उसमें कुछ शासक निर्लिप्त भी रह सकते हैं।

जो पोतनपुर के राज्य सिंहासन पर आरूढ जयशत्रु महाराज थे वे प्रजा का पालन भी पुत्रवत् करते थे। वहां उनकी दृष्टि में
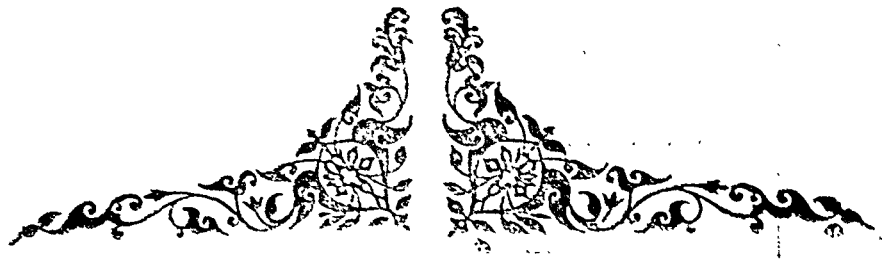
महामहिम आचार्य श्री नानालालजी म० सा०

के

चरण कमलों में

शत-शत अभिवंदन ।

सन्त वाणी
जीवन की
सच्ची निधि
है।
सच्चा मित्र
और मार्ग
दर्शक है!

संजय साहित्य संगम
(साहित्य प्रकाशन का विश्वसनीय प्रतिष्ठान)
दास बिल्डिंग नं० ५
बिलोचपुरा, आगरा-२
फोन : ६१२६४

●

श्री प्रिंटर्स
(आधुनिक मुद्रणकला का आदर्श केन्द्र)
२९/१५४ राजामण्डी, आगरा-२

राज्य, सत्ता और सम्पत्ति ही सब कुछ नहीं थे लेकिन जनता का जीवन महत्वपूर्ण कैसे रह सके इसको ध्यान में रख करके जनता के जीवन के लिए वे सब तरह के उपाय काम में लेते और जनता के साथ स्नेह का व्यवहार करते, जनता के जीवन का विकास कैसे हो सकता है इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए कार्य किया करते। यहां महाराजा का सैद्धान्तिक दृष्टि से संकेत दिया है कि वे चरित्र बल से भी कैसे थे, क्योंकि शासक जितना चरित्र सम्पन्न होता है वैसे ही शाष्य-जनता भी अपने जीवन को वैसा ही चरित्र निष्ठ बनाने का प्रयास करती है।

यथा राजा तथा प्रजा

राजा का तात्पर्य आप शासक से लीजिए। चाहे वह मुकुट बन्द राजा हों या अन्य। वे राजा तो अब चले गए हैं लेकिन आज भी जो शासक हैं उन शासकों को आप राज्य को चलाने की स्थिति में शासक के रूप में राजा मान सकते हैं। उनके चरित्र का प्रभाव जनता पर पड़ता है, उनका चरित्र यदि उन्नत है, वे यदि अपने चरित्र को देश भक्ति की दृष्टि से ठीक समझते हैं, उनको राष्ट्रीय चरित्र का ख्याल है तो उनका जनता पर भी असर होगा। और यदि शासक की स्थिति बिगड़ी हुई है, शासक व्यक्तिगत चरित्र से गिर गया है अथवा राष्ट्रीय चरित्र उनमें नहीं है अथवा शासकीय दृष्टि से तटस्थता नहीं है, तो वे शासक भले ही कुछ समय के लिए शासक बने रहें, उनके संस्कारों का असर जनता पर आए बिना नहीं रह सकता है। कभी-कभी ऐसे प्रसंग पर पूर्व स्थितियों का भी स्मरण हो आता है।

पूर्वकाल का एक शासक था उस शासक का वर्णन जब कभी कर्णगोचर होता है तो दिल के अन्दर अनुसंधान जुड़ जाता है। वह शासक शिकार खेलने की दृष्टि से जंगल में निकला और बहुत दूर

भटक गया। साथी पीछे छूट गए, शिकार भी नहीं मिला, हैरान हो गया। लौट करके पुनः राजधानी में पहुंचना चाहता था लेकिन जोर से प्यास लगी हुई थी। बीच में एक किसान का खेत आ गया, वहां पर एक कुआ था। यह शिकारी के वेष में राजा उस किसान के कुए पर पहुंचा, वहां एक बुढ़िया को देखता है। राजा को प्यास इतनी जोर से लग रही थी कि वह बोल नहीं पाया और हाथ से इशारा किया कि मुझे प्यास लग रही है, पानी पिलाओ। बुढ़िया समझ गई। उसने सोचा यह कोई वेचारा जंगली दिखता है। यह कहीं शिकार खेलने के लिए गया है और हैरान होकर आया है लेकिन मेरे कुए पर आ गया, कुआ भी मेरा एक तरह का घर ही है और घर पर यदि कोई अतिथि आता है तो उसका सत्कार करना मेरा कर्त्तव्य बन जाता है। उसका सत्कार करने के लिए उस बुढ़िया ने एक गन्ना तोड़ा। सांठे को खींच कर बाहर लाई वह वृद्धावस्था में भी इतनी ताकतवर थी कि उसने उस गन्ने को निचोड़ करके रस का लोटा भर दिया और उस राजा को रस पिलाया फिर पूछने लगी— बोलो भाई, अब भी क्या तुम्हारी प्यास अवशेष रही। तो राजा ने कहा मांजी, मैंने मांगा तो पानी था लेकिन तुमने रस पिला दिया तो भूख और प्यास दोनों गायब हो गई। बुढ़िया ने निस्वार्थ भावना से रस पिलाया और मानवीय दृष्टि से, वात्सल्य भावना से कहा कि भाई शिकारी—(वह बुढ़िया नही जानती थी कि यह राजा है)— तुम्हारा मैं क्या सत्कार कर सकती हूं, तुम्हारा ही घर है, तुम अभी जाते हो तो जाओ लेकिन फिर कभी आना। राजा वहां से रवाना हो गया। रास्ते में जाते जाते वह चिन्तन करता है कि मैंने जमीन का टेक्स बहुत कम लगा रखा है, ये किसान परिवार कितना कमा रहे हैं एक गन्ने के अन्दर ही इतना रस कि इतन सारा लोटा भर गया। कितना गुड़ और शक्कर तैयार कर रहे हैं। इन पर टैक्स अधिक लगाना चाहिए। राज्य में जाकर उसने बहुत ज्यादा

टैक्स लगा दिया। जनता उस टैक्स को सुन कर संत्रस्त हुई और कुछ काल बीत गया। उसके वाद कुछ समय पश्चात संयोगवश वह राजा पुनः उसी कुए पर जा निकला, फिर वही बुढ़िया उसको मिली उस बुढ़िया के सामने उसने पानी की फिर पुकार को उसने उसे पानी के बदले पुनः रस पिलाने का प्रयास किया लेकिन अबकी बार एक से काम नहीं चला, तीन तीन गन्ने उखाड़े और उनका रस निचोड़ा लेकिन तीन तीन गन्नों से भी लोटा पूरा नही भरा और उस रस को पीया तो भी उतना जायका नहीं रहा जितना कि पहले था। तव इस राजा के मन में प्रश्न उठ खड़ा हुआ। वह पूछने लगा मांजी; पहले मैं आया था तब आपने एक ही सांठे से लोटा भर दिया और वह रस कितना मिठासपूर्ण था लेकिन अब की बार तीन तीन सांठों में भी लोटा नहीं भरा और उसमें भी रस में वह जायका नहीं है, क्या वात है ? उस बुढ़िया ने कहा, अरे भाई क्या बताऊँ—यथा राजा तथा प्रथा। राजा की नीयत खराव हो गई। जो हमारे ऊपर साधारण टैक्स था, राजा में जनता के हित की भावना थी वह निकल गई और स्वार्थवश होकर इतना टैक्स लगा कर अपना भण्डार भर रहा है और अपने ऐशोआराम में लग रहा है लेकिन जनता का हित छोड़ दिया गया है, राजा की नीयत खराव हो गई है, इसका प्रभाव जनता पर पड़ा और जनता का प्रभाव इन पदार्थों पर पड़ा है जिससे गन्ने की स्थिति वह नहीं रही जो कि पहले थी। यह बात ऐसे सरल मालुम होती है लेकिन इसका मनोवैज्ञानिक तथ्य बहुत गहरा है। इन्सान की भावना का प्रभाव इन पदार्थों पर कैसे पड़ता है और कैसे इनके अन्दर इन रसों की कमी होती है। यह सारा विज्ञान यदि बारीकी से समझ में आ जाय तो अतिशयोक्ति मालुम नहीं होगी। फिर वह राजा सारी बात समझ गया, और उसने टैक्स कम कर दिया और इस भावना से किया कि जनता का कल्याण हो।

यह रूपक किसी भी तरह से हुआ होगा, मैं तो आपके सामने

इसलिए रख गया हूं राजा का असर प्रजा पर पड़े विना नहीं रहता। जिस राज्य में कोई उत्तम पुरुष पैदा होता है उस राज्य में शासन की स्थित उत्तम होती है। तो जिस तरुण का और जिस राजा का वृत्तान्त आने वाला है उस राजा का जीवन कैसा था, इसका थोड़ा सा संकेत मात्र किया गया है कि वे कैसे थे उन्होंने परस्त्री को माता समझी। पर स्त्री उनकी दृष्टि में कभी नहीं आई,अपनी जगत् साक्षी से बनी हुई उनकी स्त्री के अलावा कोई भी वहिन उपस्थित हुई तो उसको माता की निगाह से देखने की कोशिश करते। जहां शासक के स्वयं के जीवन में इस प्रकार की चरित्र निष्ठा हो, उसके राष्ट्रीय चरित्र की प्रगति होती है। वे राज्य के शासक थे और उन पर सब तरह का उत्तरदायित्व था। वे अक्रांता नहीं बनना चाहते लेकिन यदि कोई अक्रांता वन कर आक्रमण करने की स्थिति में आता है तो वे पहले साम, दाम और भेद की नीति से समझाने का प्रयास करते यदि इनसे भी नही मानता तो दण्ड नीति का प्रयोग करना पड़े तो शत्रु को नाश करने की दृष्टि से नहीं अपितु आतमरक्षा व राज्य की रक्षा के लिए और स्वयं के आश्रित रहने वाले प्राणियों की सुरक्षा के लिए कार्य करते थे। तो वैसा प्रसंग आने पर कभी शत्रु के सामने पीठ नहीं दिखाते, स्वयं आगे वढ़ कर जाते। वे पास में रहने वालों को या अपने पास के सिपाहियों और फौज को आगे बढ़ाकर स्वयं पीछे नहीं रहते, बल्कि स्वयं सबके आगे रह कर लड़ाई के मैदान में उतरते थे। यह सारा विश्लेषण उनके व्यक्तित्व का, उनके चरित्रबल का इसमें कियागया है। उनका चरित्र बल कितना उन्नत था इसकी कल्पना संक्षेप में मनुष्य कर सकता है। लेकिन उस राज्य में राजा कितना भी चरित्र वाला हो और वह राष्ट्रीय चरित्र का स्वामी हो लेकिन यदि उसकी धर्मपत्नी उनके अनुरूप नहीं हो तो वहां की स्थिति डांवाडोल हो सकती है। तो महाराजा के साथ में रहने वाली महारानी का जिक्र भी आता है।

उनकी महारानी बसन्तसेना चौंसठ कलाओं में निपुण थी। नारी जाति के जो श्रेष्ठ गुण हैं उन गुणों से वह अलंकृत थी। उसके सौंदर्य की जो कवि की कल्पना थी उसके अनुसार इन्द्र की इन्द्राणी, अप्सरा स्त्री की तरह थी और उसके साथ ही साथ आध्यात्मिक जीवन के साथ धर्मवृत्ति का भी संकेत है कि वह अपने धर्म की दृष्टि से जिस रूप में चलती थी, उस धर्म की स्थिति का उनके जीवन पर बहुत बड़ा प्रभाव था, उससे वह जनता की प्रिय बनी हुई थी, उनका जीवन स्व-पर हित दृष्टि से चल रहा था; महाराजा और महारानी का जो दाम्पत्य जीवन का प्रसंग आता है, वह दाम्पत्य जीवन भी केवल भौतिक दृष्टि का ही नहीं अपितु आध्यात्मिक दृष्टि का भी प्रतीक था और उसी जीवन के अन्दर उन्होंने जीवन के मर्म को समझने का प्रयास किया। महारानी के सम्पर्क से महाराजा अपने जीवन की स्थिति को आगे बढ़ाने में कैसे सफल रहे हैं। निर्णायक रूप में एक इन्सान की जीवनी आने वाली है, वह आत्मा किस रूप में आती है यह तो समय पर ही ज्ञात हो सकेगा। अभी तो मैंने इस चरित्र को प्रारम्भ करने से पहले थोड़ा सा संकेत दे दिया है कि शासक कैसे थे, महारानी और नागरिकों की स्थिति क्या थी, इसका संक्षेप में जिक्र कर दिया है, इसको आप ध्यान में रखकर वर्तमान जीवन के साथ तुलना करें और उसके सम्बन्ध में अपने जीवन को समझने का प्रयास करें तो आपका जीवन भी मंगलमय होगा और निर्णायक शक्ति को समझने में कामयाब हो सकेंगे। इसी भावना से अभी तो इस विषय को यहीं रख कर समाप्त किए देता हूं।

लाल भवन
२८ जुलाई ७२

अज्झत्थहेउं नियस्स बंधो

—उत्तराध्ययन १४।१९

अन्दर के विकार ही वस्तुतः बंधन के हेतु हैं। निर्विकार जीवन ही निर्मल होता है।

---

१० निर्मल जीवन

विमल जिनेश्वर सेविये थारी बुद्धि निर्मल हो जाय रे जीवा।
विषय विकार विसार ने रे जीवा तूं मोहनीय कर्म खपाय रे जीवा॥

बन्धुओ,

यह विमलनाथ परमात्मा की प्रार्थना है। प्रभु के नाम भी कैसे कैसे आ रहे हैं। विमल शब्द, यह शब्द हर व्यक्ति के मन में एक विमलता की भावना उत्पन्न करने वाला है।

विगतः यस्य मलः स विमलः।
अथवा विगतोमलो यस्मात् स विमलः॥

जिसमें से मल चला गया है वह विमल बन गया। गटर के पानी में मैल मिला रहता है इसलिये वह पानी गन्दा रहता है। प्रत्येक व्यक्ति कहता है कि यह पानी गन्दा है, विमल नहीं है, निर्मल नहीं है। लेकिन जहां हौज का स्वच्छ और निर्मल पानी है उसको निर्मल कह

सकते हैं। जड़ पदार्थ में भी विमलता की स्थिति, जड़ रूप में रहती है, पर यहां विमल का प्रसंग चैतन्य तत्व से है। हमारी यह आत्मा अनादि काल से मलयुक्त बनी हुई है। एक जन्म से नहीं, अनन्तानन्त जन्मों से।

कब से यह मलयुक्त बनी, इसका कोई छोर नहीं है। पहले कभी भी यह आत्मा निर्मल नहीं थी क्योंकि एक वक्त निर्मल बन जाने के बाद में किंवा एक वक्त कर्मों के आवरण के सर्वथा हट जाने पर वह आत्मा पुनः मलयुक्त नहीं बनती।

यह कल्पना करना कि पूर्व में यह आत्मा मलरहित थी और बाद में मलयुक्त बनी, असंगत है। क्योंकि अगर मल रहित होकर भी मलयुक्त बन सकती है तो फिर इस विश्व में कोई भी आत्मा ऐसी नहीं रहेगी जो सदा सर्वदा के लिये मल रहित हो। फिर तो सिद्ध परमात्मा भी कर्ममल से युक्त बनने लगेगा। इसलिये शास्त्रकारों का कथन है कि यह आत्मा अनादि काल से कर्मों के मल से युक्त है, मोह और माया का जाल इसके साथ लगा हुआ है, छल और कपट के पटों से आवारित है, स्वार्थों के घटाटोप में यह आत्मा छिपी हुई है। इसने अनेक योनियों में भ्रमण करते हुए आज तक पूर्ण रूप से निर्मलता प्राप्त नहीं की।

जिन आत्माओं ने इस बीच में अनादि काल के लगे हुए मल को धो दिया, मोह माया और ममत्व को सर्वथा नष्ट कर दिया और जिन्होंने परम छोर की निर्मलता प्राप्त कर ली, वे विमलनाथ के रूप में बन गए हैं।

जो आत्मा अनादिकाल से मलयुक्त है वह भी किसी न किसी समय मल रहित हो सकती है। मोटे तौर पर एकदेशीय उदाहरण के द्वारा आप इस विषय को समझ लीजिये। सोना है।

कहां रहता है यह ?

जमीन में, मिट्टी में।

सोना मिट्टी में दवा पड़ा हैं। वह सोना कब से मिट्टी में है, इसका कोई अन्दाज लगा सकता है ? अनादि काल से मिट्टी के साथ वह घुला मिला हुआ है। पर उस अनादि काल से मिट्टी के घुलने वाले को भी एक दिन मिट्टी से रहित किया जा सकता है। उसको भी निखालिस बनाया जा सकता है। वह कुन्दन बन सकता है।

इस एक देशीय उदाहरण से अनादि काल से मिट्टी के समान कर्मों के साथ आतमा लिप्त हो रही है। पर प्रयत्न विशेष से इसको भी इस कर्म रूप मिट्टी से अलग करके निखालिस निर्मल बनाया जा सकता है। जीवन के ऐसे निर्मल प्रसंग को जिन्होंने उपस्थित किया वे विमलनाथ भगवान् कहे जाते हैं उन्हीं के चरणों में आज प्रार्थना का प्रसंग है।

विमल जिनेश्वर सेविये
तूं मोहनीय करम खपाय रे जीवा।

प्रार्थना की ये पंक्तियां सीधी सादी हैं और सम्बोधन भी बड़ा सुन्दर है। तू विषय विकारों को छोड़कर, विमलनाथ भगवान् की सेवा में यदि लग जाता है तो तेरे ये तमाम बन्धन टूट सकते हैं। लेकिन यह सोचने का विषय है कि विमलनाथ भगवान् के चरणों में लगेगा कौन ?

लगने वाले अपने आपको समझेंगे तब ही तो लगेंगे, जिसने अपनेआपको नहीं समझा वह कैसे विमलनाथ के चरणों में जाएगा ?

आप सब यहां व्याख्यान के स्थल पर उपस्थित हैं। आपको में कभी पूंछ लूं कि आप कौन हैं ? बतलाओ !

आतमा हैं।

आतमा हैं ? तो आतमा का स्वरूप क्या है ? आज उस आतमा के स्वरूप को ही हमें ठीक समझना है। एक आध या कुछ व्यक्ति वता सकते हैं कि आतमा है, पर मेरा प्रश्न कुछ व्यक्तियों से नहीं है,

कुछ व्यक्ति थोड़े जानकार रहते हैं। कुछ और अधिक जानकारी रखते हैं। पर आम जनता का विषय अभी तक उस जानकारी से परे है और वे जब अपने आपकी स्थिति को पहचान नहीं पाते तो उनको निर्मलता का स्वरूप, विमलनाथ का स्वरूप कैसे समझ में आ सकता है ? उस विमलता को प्राप्त करने के लिये हमें प्रयास करना है और इस प्रश्न को हल करना है कि जीवन क्या है ? उस जीवन की परिभाषा में आये हुए शब्दों को और उसके भाव को समझना है। उन शब्दों को और उनके अर्थ को ठीक तरह से समझ लेंगे तो हम अपने आपको भी पहचान लेंगे और जीवन की परिभाषा को भी व्यवस्थित रीति से समझ लेंगे।

उसके लिये जो आपके सामने परिभाषा आ रही है कि—

"सम्यग् निर्णायकं समतामयं च यत् तज्जीवनम्।"

जो सम्यग् निर्णायक है समतामय है वह जीवन है। उस सम्यग् निर्णायक और समतामय की शक्ति को कभी आत्म रूप से पुकारा जाता है और कभी उसको निर्णायक रूप में कहा जाता है।

लेकिन वह निर्णायक कैसे ?

मैं समझता हूं—आत्म तत्व की मान्यता से शायद ही कोई इन्कार करे, लेकिन आत्मा का सही स्वरूप समझने में अधिकांश भ्रान्तियुक्त हैं।

आत्मा मानी जा रही है पर कल मैंने बताया था कि आत्मा मानने वाले आत्मा को परिणामी नहीं मानते हैं तो वे वस्तुतः आत्मा के स्वरूप को नहीं समझ रहे हैं, और एक दृष्टि से देखा जावे तो वे अन्धकार में भटक रहे हैं, भ्रान्तियुक्त हैं। अन्धकार युक्त हैं, प्रकाश की किरणों से दूर हैं। जब उस आत्मा को परिणामी माना जावेगा तभी उसके साथ कर्त्तृत्व और भोक्तृत्व का सम्बन्ध जुड़ेगा।

एक स्वतंत्र तत्व "आत्मा"

आत्मा चैतन्यमय है। आत्मा परिणामी है। चैतन्यमय का तात्पर्य

आत्मा ज्ञानवान है और वह ज्ञान युक्त गुण भी ऊपर से चिपकाया हुआ नहीं है। वह आत्मा के साथ अभिन्न रूप से तदाकार रूप में रहता है। अगर ज्ञान अलग चीज है और आत्मा अलग चीज है और किसी पदार्थ से उन ज्ञान को आत्मा के साथ चिपका कर यदि कोई उसकी स्थिति को समझाता हो तो यह दृष्टिकोण भी असंस्कारित मानस का है।

ज्ञान आत्मा के साथ अलग से लाकर चिपकाया नहीं जाता। ज्ञान तो आत्मा की शक्ति के रूप में है। आप सूर्य को देख रहे हैं। इस सूर्य की किरणें सूर्य के साथ किस सम्बन्ध से रही हुई हैं? किरणें अलग हैं और सूर्य अलग है क्या आप यह अनुभव कर रहे हैं? नहीं। तो क्या किसी दूसरे ठिकाने से किरणों को लाकर किसी चिपकाने वाले पदार्थ के द्वारा वे सूर्य के साथ चिपका दी गई हैं। अथवा वे किरणें सूर्य का रूप ही है? आप इस को समझ लेंगे तो आगे की स्थिति भी स्पष्ट हो जावेगी।

सूर्य की किरणें सूर्य से अलग नहीं हैं। अगर अलग हो जावें तो कोई उसको सूर्य नहीं कहेगा। वह पिण्ड सूर्य नहीं कहलावेगा। सूर्य वह है जिसके अन्दर किरणें ओत-प्रोत हैं। जैसे सूर्य की किरणें सूर्य से भिन्न नहीं और बाहर से लाकर चिपकाई भी नहीं जाती वैसे ही ज्ञान शक्ति चैतन्य शक्ति आत्मा से भिन्न नहीं, आत्मा के साथ ही सूर्य की किरणों की तरह वह ओत-प्रोत है। उनको कथंचित् भिन्न भी कह सकते हैं और कथंचित् अभिन्न भी। यह तो स्याद्वाद् दृष्टिकोण है। पर आत्म-स्वरूप को समझने वाली सम्यग्दृष्टि आत्मा सबसे पहले आत्मा को चैतन्यमय माने और उसके साथ ही साथ दूसरा विशेषण इसका परिणामी माने। जो परिणामी है वह कर्त्ता भोक्ता की स्थिति में आता है। जिसके अन्दर परिणाम नहीं है वह कर्त्ता भी नहीं हो सकता और न वह किसी चीज का भोक्ता हो सकता है। कर्त्तृत्व शक्ति और भोक्तृत्व शक्ति दोनों एक दृष्टि से आत्मा के स्वभाव गुण के अन्तर पेटे

में हैं। क्योंकि आत्मा के अन्दर एक क्रियावती शक्ति मानी गई है, आत्मा क्रियावान् है। पर वह शक्ति आत्मा से ज्ञान की तरह अभिन्न है और उसके अन्दर जब क्रिया होती है तब इन्सान यह समझ पाता है कि यह काम मैंने किया है, और यह काम मैं करने वाला हूं। यह प्रश्न तब समझ में आता है जब कर्त्तृत्व शक्ति को आत्मा का गुण माना जाय और यह मानना नितान्त आवश्यक है। क्योंकि इस विज्ञान को जाने बिना किसी प्रश्न का समाधान नहीं होगा।

आप यहां बैठे हैं, कहाँ से चल कर आये हैं ? और वह आने वाला कौन है ?

मेरे कुछ ऐसे ही प्रश्न होते हैं। क्योंकि मैं एक दृष्टि से आप से धर्म चर्चा करने के लिये बैठा हूं। मैं उन वक्ताओं की दृष्टि से भाषाणबाजी करने नहीं बैठा हूं। मैं तो एक साधक के रूप में हूं और आपको भी साधक के रूप में समझ कर चरचा करने के रूप में कुछ वातें बतला रहा हूं तो यह भी प्रश्न हो जाता है कि कौन चल कर आया है ?

जड़ सहित आत्मा आई है।

अब देखिये कि जड़ सहित आत्मा क्या है। यह कर्त्तृत्व शक्ति आत्मा के साथ है और जड़ उसका विशेषण लग गया है। लेकिन यह ध्यान रखिये कि जिसमें निर्णय करने की शक्ति है और जिसमें रास्ते के मोड़ पर ठीक तरह से मुड़ जाने की विज्ञानशक्ति है, वह शक्ति जड़ की नहीं, वह शक्ति चैतन्य की है। जड़ अपने अन्दर क्रिया की योग्यता रखता है लेकिन वह क्रिया करने की स्थिति में नहीं रहता। कर्तृत्व शक्ति उसमें नहीं रहती।

आत्मा रूपी भी है !

जो क्रिया होती है उसमें, और जो क्रिया की जाती है उसमें अन्तर है। एक रेती का कण उड़कर इधर से उधर पड़ रहा है, वह

क्रिया हो रही है। लेकिन एक व्यक्ति इधर से उठकर उधर बैठ रहा है वह क्रिया हो नहीं रही है बल्कि यह क्रिया की जा रही है। अपने घर से व्यक्ति चला, वह अपनी कर्तृत्व शक्ति के साथ शरीर को साथ में लेकर चला लेकिन शरीर वर्तमान की स्थिति में आत्मा से ओत-प्रोत हो रहा है। लोह पिण्ड के अन्दर जैसे आग का प्रवेश है और उस लोह पिण्ड को आग के गोले के रूप में पुकारा जाता है वैसे ही यह आत्मा इस समय इस शरीर पिण्ड के साथ में आग की तरह शरीर में ओतप्रोत हो रही है। तो जैसे उस लोह पिण्ड को आग युक्त होने से लोह पिण्ड न कह कर आग का गोला कहा जाता है वैसे ही वर्तमान में आत्मा को इस शरीर युक्त होने के कारण इस शरीर सहित आत्मा को आत्मा कहा जाता है। इस समय शरीर को हम सर्वथा जड़ नहीं कह सकते। हम उस सूत्र पर चिन्तन करें जो भगवती सूत्र में प्रश्न के रूप में आया है :—

"आया भन्ते काया अन्ने काया ?

भगवन् ? आत्मा काया है या काया अन्य है ? तो भगवान ने उत्तर दिया "आयावि काया अन्नेवि काया।" आत्मा काया रूप भी है और अन्य रूप भी। इसी प्रकार आत्मा को रूपी आत्मा भी कह सकते हैं उसका भी प्रश्न वहां भगवती सूत्र में आया है :—

रूवी ए भन्ते आया अरूवी आया ?

हे भगवन आत्मा रूपी है या अरूपी ? तो उत्तर मिलता है :—

गोयमा ! रूवीवि आया अरूवी वि आया।

हे गौतम ? आत्मा रूपी भी है, और अरूपी भी है। रूपी आत्मा किस रूप में, जब तक कर्मों के साथ लिप्त है और शरीर का पिण्ड धारण करके चल रही है तब तक इसको रूपी आत्मा कहा जाता है और वह रूपी आत्मा चलती है चल कर अन्य स्थान पर पहुंचती है। आप जो आये हैं रूपी आत्मा के

रूप में आये हैं। आपकी आत्मा वर्तमान में रूप को लेकर चल रही है लेकिन उसमें चलकर आने का जो विज्ञान है और चलकर आने का जो कर्तृत्व है वह आत्मा का स्वभाव है, वह आत्मा का कर्तृत्व है न कि शरीर का। शरीर अगर आत्मा रहित हो जाता है तो उसमें कर्तृत्व शक्ति नही होती। एक मुर्दा कलेवर किसी घर में पड़ा हुआ है और उसे आवाज देकर कहा जाये कि अरे भाई उठो महाराज के व्याख्यान का टाइम हो गया है हम व्याख्यान में चलें। क्या वह मुर्दा कलेवर आपके वाक्य को सुनेगा क्या वह उठकर चलने की तैयारी करेगा? वह कभी तैयारी करने वाला नहीं है क्योंकि उसके अन्दर जो कर्त्तृव्य शक्तिमान् आत्मा थीं, जो क्रिया करने का निर्णायक तत्व था वह तत्व उस शरीर को छोड़कर अन्यत्र चला गया है। इसलिए मुर्दा शरीर इरादतन चलने की क्रिया नहीं कर सकता। लेकिन आप जो कि शरीर के साथ निर्णायक तत्व को लेकर बैठे हैं और किसी कार्य में व्यस्त हैं, यदि कोई दलाल पुकारता है, दलाल भी कई तरह के होते हैं और धर्म के दलाल भी होते हैं तो धर्मदलाली करने वाले का भी स्वभाव होता है कि वह जाते-जाते पुकारता जाता है वह सोचता है कि मैं धर्म के लिए जा रहा हूं तो चार व्यक्तियों को बुलाता हुआ क्यों न जाऊँ जिससे—मेरे कर्मों की भी निर्जरा हो और शुभ भावों के साथ में दलाली भी कर लूँ और मुझे लाभ मिले और मेरे कहने से वह पहुंच जाये तो उसको भी लाभ मिल जाये। इसलिये ऐसी भावना रखने वाला वह व्यक्तियों को पुकारता है कि बैठे क्या हो, यह संसार का काम तो रात और दिन चौबीसों घण्टे हो रहा है लेकिन चलो ज्ञान प्राप्त करने के लिए कुछ आध्यात्मिक चर्चा ही सुनें, जीवन निर्माण की बातें सुनें। इस प्रकार वह प्रेरणा करता है और उसकी प्रेरणा को सुनकर वह कितना ही अपने कार्य में व्यस्त हो लेकिन वह इस निर्णय पर पहुंचता है कि वह व्यक्ति ठीक कहता है, मुझे घण्टे भर का समय

निकास होना चाहिए। इस तरह वह निर्णय लेकर चल पड़ता है और जब भटकता है तो रास्ते में बहुत ट्रैफिक है उस ट्रैफिक के बीच में,से होकर जाता है लेकिन अपने आपको अखण्ड लेकर आता है, कहीं ऐक्सीडेन्ट नहीं होता, कहीं टकराव नहीं और लाल भवन में प्रवेश करता हुआ सीधा नहीं आता, नीचे टेढ़ी-मेढ़ी नाल है लेकिन कहीं दीवार से टकराता है ? नहीं। चाहे अँधेरा क्यों न हो लेकिन एकाएक टकराता नहीं। तो समझो विचार यह करना है कि इस प्रकार काम करने की निर्णायक ;शक्ति किस में है ? वह जिसमें है वह आत्मा है और वह निर्णायक तत्व है। उस कर्तृत्व को हर हालत में मानना पड़ेगा। और कोई इन्सान कहे कि आत्मा कर्ता .धर्ता कुछ नहीं है, और यह जो कुछ होता है वह शरीर से होता है, यह बोल रही है तो यह जिह्वा बोल रही है और आत्मा तो कुछ नहीं बोलती। मैं कभी-कभी विचार करता हूं कि कितने बचपने की सी बात है और कितनी असंस्कारित बात है। आत्मा जब तक वैज्ञानिक शक्ति से बोलने का प्रयत्न नहीं करेगी तो बेचारी आत्मा रहित जिह्वा क्या समझती है कि मुझे क्या शब्द बोलने हैं। वह जिह्वा और मुंह क्या समझता है कि वह कुछ खुल सके। वह कुछ नहीं समझता। उसमें बोलने वाली, चेतन्य कर्तृत्व शक्ति वाली आत्मा है इसलिए आत्मा के अन्दर कर्तृत्व गुण है। शरीर के माध्यम से जो खाना खाते हैं, यद्यपि खाना शरीर के अन्दर आ रहा है लेकिन खाने की जो व्यवस्थित क्रिया है वह आत्मा की है और खाने का कर्तृत्व भी आत्मा के साथ है। कोई बिना आत्मा के कर्तृत्व के खा ले तो जहर सामने रख दो उसको वह जहर का ज्ञान कौन कराता है। यह खट्टा है, मीठा है। मुझे मीठा खाना है खट्टा नहीं, इस बात का विज्ञान कराने वाला कौन है ? क्या जिह्वा में ताकत है ? चैतन्य रहित जिह्वा कुछ भी ज्ञान की शक्ति नहीं रखती, इसलिए

जिह्वा के माध्यम से खट्टे और मीठे का जायका लेने वाली और कर्तृत्व भाग रखने वाली आत्मा है। आत्मा ही पहचानती है कि खट्टा है, यह मीठा है, यह मेरे स्वयं के लिए हितप्रद है और यह अहितप्रद है। इस प्रकार आपने यदि चैतन्य निर्णायक को नहीं समझा और प्रवाह में बहकर कह दिया कि नहीं साहब आत्मा तो शरीर के अन्दर रहती हुई कर्ता धर्ता कुछ नहीं है, जो कुछ करता है शरीर करता है—तो यह बहुत अन्धकार की बात होगी। यह अनादिकाल से चले आए अज्ञान की बात होगी। उसे वीतराग देव की वाणी नहीं कहा जाएगा इस प्रकार का प्रतिपादन निर्णायक स्वरूप को नहीं समझने का प्रतिफल है। इस जीवन के प्रश्न को हल नहीं करने का ही परिणाम है वह इस प्रकार सोचता है।

तो बन्धुओ मैं आपके सामने कर्तृत्व और भोक्तृत्व शक्ति की बात कह रहा था—जो करता है वही भोक्ता है करने वाला और भोगने वाला एक है और वही अपने कर्मों का निर्माण करता है इसीलिए भगवान ने उत्तराध्ययन सूत्र में स्पष्ट उद्घोषणा की है कि :

"अप्पा कत्ता विकत्ताय दुहाणाय सुहाणय्।

आत्मा ही अपने सुखदुख का कर्ता है। जो पाप कर्म का बन्धन करता है वह उसका प्रतिफल भोगता है और जो अच्छी प्रवृत्ति करता है वह धर्म के मार्ग पर चलकर निर्जरा करके आत्मशुद्धि करता है। इस दृष्टिकोण से आपको और हमको ठीक तरह से चिन्तन करना है। यह मनुष्य जन्म वारवार मिलने वाला नहीं है। वर्तमान का जीवन केवल मशीन की तरह बरबाद करने का नहीं है। वर्तमान जीवन में रहता हुआ आदमी अपने वर्तमान जीवन के स्वरूप को समझे। इसके साथ ही आगे का विशेषण आपके सामने आने वाला है वह मैं समय आने पर ही कहूंगा।

उपादान और निमित्त

मैं यह कह रहा हूं कि इस सिद्धान्त को मनुष्य समझ लेता है तो

अन्धकार से परे हो जाता है। जो यह समझते हैं कि हमारा किया गया हो सकता है, जो कुछ होता है वह तो उसके अधीन है, दूसरा ही करने वाला है, कोई दूसरा ही नचाने वाला है और हम तो कठपुतली की तरह नाचने वाले हैं, हमारा किया कुछ नहीं होता। कभी-कभी तो हम यहां तक पहुंच जाते हैं कि यह सब कुछ कराने वाला भगवान है। कितनी बड़ी बात कह दी। भगवान कराने वाला है तो भगवान विमल है कि मल सहित है? जो रागद्वेषरहित है वह यह सब कराता है तो ईश्वर इस आत्मा को रागद्वेष में क्यों गिराता है। मलिन करने के लिए क्यों पाप कर्म करवाता है, क्यों नास्तिक कर्म करवाता है—ऐसे अनेक प्रश्न आकर सामने खड़े हो जायेंगे, जिनका कि समाधान नहीं हो पायेगा। और वस्तुतः जहां विचित्र ढंग से सोचा जाता है वहां समाधान नहीं हो पाता है इसलिए वह ईश्वर तो सदा तटस्थ अपने स्वरूप के अन्दर तल्लीन है और वह विमल है। हमने उस विमलता का आदर्श सामने रखा, कर्तृत्व शक्ति को अपनी समझ कर अच्छा करते हैं तो उसका अच्छा फल भोगेंगे और पाप कर्म करेंगे तो बुरा फल भोगेंगे क्योंकि आत्मा में कर्तृत्व शक्ति है। यह सब व्यक्तियों के साथ रही हुई है इस भावना को लेकर इन्सान को अपने जीवन का चिन्तन करना चाहिए और इसके साथ ही साथ यह भी चिन्तन करना चाहिए कि हम अपनी शक्ति के अनुसार अपना तो निर्माण करते ही हैं लेकिन साथ ही पड़ोसियों का निर्माण भी कर सकते हैं, कुछ सामाजिक संस्थाओं का भी निर्माण करने में निमित्त बन सकते हैं। उसमें निमित्त के रूप में भी कर्तृत्व हमारे सामने आ सकता है। जैसे कुम्भकार, घड़ा बनाता है। घड़ा बनाने के दो मुख्य कारण हैं एक तो उपादान और एक निमित्त। उपादान का तात्पर्य यह है कि जो कार्य रूप में परिणत हो जाये। मिट्टी का ढेला मिट्टी के ढेले के स्वरूप को

छोड़कर घड़े का रूप धारण कर लेता है इसलिए घड़े का उपादान कार्य मिट्टी का ढेला है। लेकिन वह मिट्टी का ढेला स्वतः घड़े के रूप में परिणत नहीं होता, उसमें योग्यता रहने पर भी योग्य कर्तृत्व के बिना, व्यवस्थित कर्ता के बिना, विज्ञानवान कर्ता के बिना वह मिट्टी का ढेला घड़े का सुन्दर रूप धारण नहीं कर सकता अतः वह कुम्भकार उसका निमित्त है, कर्त्ता है। निमित्त कर्ता कार्य का सम्पादन करके अपने आपको अलग रखता है, वह कार्य रूप में परिणत नहीं होता उसमें व्यवस्थित विज्ञान की क्रिया होती है। कुम्भकार घड़े का निर्माण करता है लेकिन घड़े को बनाकर, उसको सुन्दर आकार देकर अपने आपको वह सुरक्षित रखता है इसलिए कुम्भकार को निमित्तकर्ता माना गया। कर्ता दोनों आ रहे हैं।

किन्तु निमित्त कर्ता के बिना भी घड़ा नहीं बनता और उपादान शक्ति के बिना भी नहीं बनता। दोनों का समन्वय होता है तभी घड़ा बनता है। पर फिर भी निमित्त और उपादान दोनों ही सब कुछ नहीं हैं। इसमें सहकारी कारण सामग्री भी रही हुई है। कुम्भकार कितना ही कलाकार और चतुर हो पर उसके पास अगर चाक न हो, उस चाक को घुमाने वाली डंडी न हो और वहां उस घड़े को घड़ने की प्रक्रिया के अन्य साधन न हों तो कुम्भकार भी घड़े का निर्माण नहीं कर सकता और इसलिए उपादान और निमित्त के साथ सम्पूर्ण सहकारी कारण सामग्री का होना भी आवश्यक है। उपादान शक्ति प्रत्येक आत्मा में है और निमित्त शक्ति सन्तजन, माता-पिता आदि के रूप में आती है। सन्तों के चरणों में बैठकर मानव अपनी उपादान शक्ति का उपयोग करके अपनी आत्मा को उनके निमित्त से ऊपर उठा सकता है और उसमें कुछ प्रगति कर सकता है, पर साथ ही सम्पूर्ण कार्य कारण सामग्री का होना भी आवश्यक है, तभी वह अपनी प्रगति के सभी साधन जुटा सकता है।

इनमें से एक की भी कमी रह जावे तो लक्ष्य प्राप्ति में अधूरापन रह सकता है। वाधा आ सकती है।

मैं अभी इस विषय को अधिक गहराई में नहीं ले जा रहा हूं। कभी प्रसंग आ गया तो खुलकर चर्चा करने का विचार है। यहां तो कुछ थोड़ी सी वस्तुओं का विवेचन करके आगे चलना चाहता हूं।

सन्त जन-समुदाय के लिये निमित्त कर्ता वनकर जीवन निर्माण की स्थिति का कार्य करते हैं, चरित्र निर्माण की भावना उत्पन्न करते हैं, उपादान शक्ति को भी विकसित करने का शक्ति भर प्रयास करते हैं और उनके निमित्त रूप में उपस्थित होकर कार्य कर पाते हैं। वैसे ही सन्तों के अभाव में जो परिवार के मुखिया हैं उन पर परिवार के निर्माण का दायित्व है सन्तान की स्थिति को सुसन्तान के रूप में परिणत करने में निमित्त कारण उनके परिवार के अन्दर रहने वाले सदस्य अथवा परिवार का मुखिया वनता है। आप दृष्टान्त रूप में समझिये कि घर के अन्दर रहने वाली माता अपनी सन्तान को सुसंस्कारित वनाने में कुम्भकार की तरह निमित्त कर्ता बन सकती है। लेकिन किसकी ?

सन्तान की।

पर सन्तान कैसी हो। उस घर में जन्म लेने वाला पुत्र सुशील हो, चारित्र सम्पन्न हो और वह अपने जीवन को सुन्दर तरीके से निर्माण करने वाला साबित हो इस भावना से यदि माता या पिता अपनी स्थिति से कुछ कार्य करें तो सन्तान का बहुत कुछ उपकार कर सकते हैं और यदि माता-पिता लापरवाह रहें तो यह काम किसी सीमा तक नहीं हो पावेगा। सन्तान को जन्म दे देना एक बात है पर उसको पढ़ा लिखाकर सुन्दर तरीके से उसका जीवन निर्माण कर देना दूसरी बात है।

मैं आपके सामने जो एक विशिष्ट पुरुष का चरित्र रखना चाह रहा हूं उस विशिष्ट पुरुष के जीवन का निर्माण करने वाला कौन

था ? यद्यपि उपादान शक्ति जो आत्मा में थी, पर निमित्त के रूप में माता पिता भी कैसे मिले इसका रूपक थोड़ा दिया जा रहा है—

मन के विचार और स्वप्न

कल महाराज और महारानी का वर्णन कर गया था वहां बसन्तसेना नाम की महारानी, राजा की महारानी ही नहीं, जीवन की भी महारानी थी। जो जीवन की महारानी हो उसकी अलौकिकता कुछ और ही होती है। जो अपने जीवन में उतम संस्कारों का संग्रह करती है जो अपने जीवन को सुन्दर तरीके से आध्यात्मिक जीवन के साथ जोड़ती है, जिन्होंने सुन्दर तरीके से निर्णय लिया है और जो यह सोचते हैं कि मेरे जीवन से जितनों का भला हो सकता हो मुझे करना चाहिये। मेरा जीवन इस दुनिया के सामने आदर्श रूप में रहे। मैं नारी जाति में रहती हुई भी नारी जाति की शिरोमणि भूषण के रूप में स्थापित होऊं इस प्रकार की भावना जिस महाराणी में जागृत हुई वह वस्तुतः इस संसार के लिए बहुत बड़ी सौभाग्यशाली है। संसार की शोभा बढ़ाने बाली है। महारानी बसन्तसेना जीवन में वैसे ही संस्कारों को लेकर चलती थी वह धर्मकरणी में तल्लीन रहती थी। २४ घंटों में कुछ घंटे धर्म कार्यों में लगाया करती थी। पास पड़ोस वाली बहिनों को बुलाकर धार्मिक संस्कार देने में पीछे नहीं रहती थी। नैतिक जीवन के निर्माण करने में कितना योगदान करती थी इसका वर्णन कथा के प्रसंग से लम्बा चौड़ा है। पर संक्षेप में सोचिये कि वह महलों में रहने वाली और वैभव में पलने वालो रानी भी अपने पास-पड़ौस को और गांवों में रहने वाली महिलाओं अन्य व्यक्तियों को भी प्रभावित कर गयी थी। उसकी इस उदार वृत्ति के कारण यह महारानी वड़ी दयालु हैं इसका धार्मिक जीवन जन-जन के सम्पर्क में किस प्रकार आ रहा है। वह सारो जनता की भाग्य विधाता के रूप मैं पार्ट अदा

कर रही है। जन-जन के मुँह से शब्द निकल रहे थे।

वह पवित्र जीवन लेकर चलने वाली महारानी। उसे स्वप्नों का अधिक प्रसंग नहीं आता। शान्ति के साथ जीवन यापन करती है। अधिक कार्य में भी व्यवस्थित रूप से चल रही है। एक दिन की बात है वह शय्या पर सोई हुई थी। उसने एक दिव्य स्वप्न देखा। उस स्वप्न में देखा कि एक दिव्य सरोवर जिसमें निर्मल पानी भरा हुआ है उसमें और भी बहुत से कमल खिलकर महक रहे हैं। कमलों के अन्दर से सुन्दर पराग बिखर रहा है और चारों ओरं सुगन्धि फैल रही है। तो उसने रात्रि को इस प्रकार का स्वप्न देखा। महारानी स्वप्न को देखते ही जगी और सोचने लगी कि मुझे सहसा कोई स्वप्न नहीं आता, लेकिन आज जो अचानक स्वप्न बना है यह किसी न किसी बात की सूचना देने वाला है और मुझे इस स्वप्न का सुन्दर तरीके से चिन्तन करना है। जिन भाई और बहिनों को बहुत स्वप्न आते हैं जिनकी कि गिनती नहीं रहती उनके स्वप्न सार्थक नहीं होते। प्राय: वे सब मानसिक कल्पनाओं के रूप में होते हैं। उनके स्वप्नों की स्थिति सामान्य पदार्थों की बनती है।

वैसे स्वप्न की धारा मानसिक विचारों के साथ है। मन के अन्दर जो कुछ देखकर संस्कार डाले गये हैं और जिन पदार्थों को ग्रहण करना चाहते हैं उनकी पूर्ति नहीं हुई, और उनकी चिन्ता लेकर सो गये तो रात्रि में उसी का स्वप्न देखने में आ जावेगा। अथवा वह कहीं से कुछ सुन लेता है कुछ देख लेता है, या सूंघ लेता है कुछ चख लेता है या कुछ स्पर्श कर लेता है या अनुभव करता है तो उसका भी मिला जुला स्वप्न बन जाता है और उसी में रातभर भ्रमण करता रहेगा और जिनका दिल इतने तुच्छ स्वार्थों में तल्लीन होता है उनको तो दिन में बैठे बैठे ही स्वप्न आ जाया करते हैं।

सन्त लोग कभी-कभी कुछ बोल दिया करते हैं और मैंने भी एक बात इसी तरह की सुनी है। एक श्रावक जी सामायिक में बैठे

थे और व्याख्यान श्रवण कर रहे थे। व्याख्यान श्रवण करते-करते उनको नींद आ गई। धर्मस्थान में यह होना स्वाभाविक भी है क्योंकि दिन भर दिमाग थका हुआ रहता है उसे यहां विश्रान्ति मिलती है।

या तो कोई मन को आह्लादित करने वाला विषय होता है, या मनोरंजन का विषय होता है तो थोड़ा सावधान हो जाते हैं नहीं तो फिर सुस्ती आ जाती है या नींद आती है। कुछ देर तक तो सुनते हैं लेकिन फिर मस्तिष्क थक जाता है तो विश्रांति लेने की स्थिति बनती है। तो वह भाई साहब रात दिन स्वार्थ के अन्दर तल्लीन रहकर दुकान से उठकर आये ही थे और सामायिक के अन्दर बैठे थे और बैठे बैठे उन्होंने स्वप्न देख लिया उसी तंद्रा में। स्वप्न देखते देखते वह झट से अपनी मुख वस्त्रिका को लेकर फाड़ते हैं और कहते हैं कि लो लो ले जाओ ४ आने में ले जाओ। यह क्या था? स्वप्न में उन्होंने देखा कि ग्राहक आया है इन्होंने अधिक पैसा, ८ आना मांगा और ग्राहक ने कहा कि मैं तो ४ आने ही दूँगा और उसी स्वप्न में निर्णय लिया कि ले जा ४ आने में ही ले जा। इस तरह वह मुँह पत्ती को उठाकर फाड़कर उसके हाथ में दे देता है। जब वह जागता है तो चौंकता है। निद्रा भंग हुई तो देखा कि मैं तो व्याख्यान में बैठा हूं और स्वप्न में व्यापार कर रहा हूं। तो इसप्रकार के स्वप्न जिसको आते हैं उसका मन विमल नहीं होता,मलयुक्त होता है आत्मा के अन्दर ऐसी स्थिति बनती है लेकिन जिन व्यक्तियों की मलरहित स्थिति बनती है वे या तो ऐसे स्वप्न नहीं देखते और देखते भी हैं तो उनका कुछ न कुछ फल अवश्य होता है।

महारानी को रात्रि के अन्दर जो स्वप्न आया उसको देखकर वह विचार करने लगी :

उस सुन्दर स्वप्न में कमलों से भरा हुआ सरोवर देखकर महारानी हर्ष विभोर हो गयी, और बैठकर चिन्तन करने लगी। ऐसा

जो भव्य स्वप्न आया है यह मुझे आज क्या संकेत दे रहा है, कौन सी बात का फल देने वाला है ? वह चिन्तन करने लगी कि जो उत्तम स्वप्न आते हैं, वे कुछ न कुछ लाभदायक होते हैं। इस भावना से महारानी बिविध कल्पना करने लगी और अनुमान लगाया कि सम्भव है कि मुझे ऐसा स्वप्न आया तो मेरी कोख में कोई उत्तम पुरुष आ सकता है, क्योंकि जब कभी उत्तम पुरुष के आने का प्रसंग आता है तो ऐसा स्वप्न आता है। इस प्रकार महारानी भी स्वप्न का चिन्तन करके कुछ अनुमान लगा पाई। लेकिन यह सोचा कि जो मुझे स्वप्न आया है इसका में स्वयं ही निर्णय न करके अपने प्राणनाथ जो मेरे पतिदेव हैं उनके सामने भी इसका वर्णन करूँ और उनके मुखार्विन्दु से भी इस स्वप्न का अर्थ समझूँ। इसी भावना को लेकर : उसने सोचा मेरे पतिदेव की शैया पास के कमरे में है। मैं पतिदेव के चरणों में पहुंचकर इस स्वप्न का सारा वृतान्त उनसे कहूं। प्राचीन काल के अन्दर रहने वाले मनुष्यों की एक आचार संहिता होती थी। गृहस्थ अवस्था में रहने वाले जो पुरुष अपने जीवन को चरित्रनिष्ठा के साथ रखना चाहते है वे विषय वासना के कीड़े नहीं होते। उनका शयन कक्ष भी अलग-अलग होता था। पति के सोने का कमरा अलग और पत्नि के सोने का कमरा अलग। वे उस दृष्टि से दोनों विभक्त थे। जब वह वहाँ से उठी और पतिदेव के कमरे में योग्य समय पर पहुँची जिस समय कि पति की निद्रा प्रायः समाप्त हो चुकी थी, कुछ थोड़ा सा आलस्य अवश्य था। जैसे ही इसके पैरों की आहट हुई तो महाराजा जाग गये। आंख खोलकर देखते हैं तो महारानी जी नजदीक खड़ी हैं, कहा, महारानी अभी इस समय आपका यहां आगमन कैसे ? नाथ ! आज मैं आपके सामने कुछ प्रश्न लेकर उपस्थित हुई हूं। कहा, कौन सा प्रश्न है ? झट से उनको समीप में सिंहासन दिया। महारानी बैठी और

बैठने के बाद महाराजा पूछने लगे ऐसा कौन सा प्रश्न है आप रखिये आपके प्रश्न का समाधान मैं यथाशक्ति करूँगा। देखिये दाम्पत्य जीवन का पारस्परिक सहयोग। जीवन में कोई समस्या उत्पन्न होजाये तो एक दूसरे के सामने रखने से उनका समाधान हो सकता है। महारानी ने अपना सारा वृतान्त कह सुनाया कि रात्रि के समय इस प्रकार का मुझे स्वप्न आया व महाराजा उस स्वप्न के वृतान्त को सुनकर :—

"हर्षित होकर वे भी बोले सुनकर प्रिये इस बार,
कुल भूषण कुल दीपक हों पुत्र रत्न हितकार।
निज····

महाराजा भी स्वप्नशास्त्र के कुछ ज्ञाता थे और उन्होंने महारानी के सारे वृतान्त को सुनकर महारानी की दिनचर्या के अनुपात से उन्होंने कल्पना की कि महारानी जैसा तुम्हारा चरित्र सम्पन्न जीवन है और तुम्हारी जितनी कोमल भावना है और जिस प्रकार तुम परोपकार के अन्दर तल्लीन हो रही हो उससे ऐसा आभास होता है कि तुम्हारी कुक्षि में कोई न कोई पुत्र रत्न की प्राप्ति होने वालो है। यह सरोवर का स्वप्न और उसके साथ ऐसे कमल खिले हुए और उनमें सुगन्धि आ रही थी मानो यह तुम्हारे पुत्र प्राप्ति की पहले से सूचना है। सरोवर कैसा गम्भीर होता है, उस सरोवर के अन्दर कोई पत्थर फेंकता है तो उसके बदले पानी उछलता है, पत्थर के वदले में पत्थर नहीं आता है इसी तरह से तुम्हारी कुक्षि के अन्दर से ऐसा पुरुष आने वाला है जो दुनियां में सरोवर की तरह गम्भीर वन कर पत्थर फेंकने वाले पर भी बदले में पानी का छींटा देने वाला होगा, पत्थर के वदले पत्थर फेंकने वाला नहीं होगा। जैसे पानी सवके प्राणों का रक्षक है और पानी से ही दुनियाँ का जीवन ठीक तरह से व्यवस्थित है उसी तरह से तुम्हारे पुत्र रत्न के आधार पर दुनियाँ का जीवन सुव्यवस्थित हो

सकता है। जैसे सरोवर के अन्दर कमल खिले हुए थे उसी तरह से तुम्हारे पुत्र के जीवन में आन्तरिक कमल खिलेंगे, उससे गुणों की सुगन्धि फैलेगी। उन्होंने कहा कि मैंने जितना श्रवण कर रखा है जितनी शिक्षा पाई है उतनी आपके सामने रख रहा हूँ। आपने स्वप्न देखने के बाद निद्रा ली या नहीं ?...

नाथ ? मैंने तो कुछ भी निद्रा नहीं ली। उसी समय मैं धर्म चिन्तन में बैठ गई।

"बहुत अच्छा।" उत्तम स्वप्न के वाद निद्रा नहीं लेनी चाहिए। नहीं तो, उसका फल मारा जाता है। तुमने उत्तम स्वप्न आने के बाद मन में बुरा संकल्प तो नहीं किया ?

नहीं नाथ, इनता तो मैं जानती हूं फिर खोटा संकल्प क्यों करती। मैं भी कुछ अनुमान लगा रही थी। पर अब आपके चरणों को पाकर धन्य हो गई। आपने इसका अर्थ विस्तार से बतलाया है। आपकी सभी वातों को मैं हृदयंगम करती हूं और विश्वास करके अपने जीवन की स्थिति को शान्त रखने का विचार करती हूं।

"महारानी, तुम्हारी कुक्षी से जन्म लेने वाला कुल भूषण होगा, कुल की शोभा बढ़ाने वाला होगा। यद्यपि पुत्र में उपादान शक्ति तो अपनी है पर निमित्त कर्ता के रूप में तुम बनोगी अतः तुम्हारा जीवन जितना निर्मल होगा उतनी ही गर्भस्थित तुम्हारी सन्तान निर्मलता की तरफ बढ़ती जावेगी इसलिए तुम यह प्रयास करो कि तुम्हारा जीवन निर्मल से निर्मलतर बनता जावे और उस प्रयास के द्वारा तुम अपनी सन्तान के जीवन को भी सुसंस्कारित बना सको।

इस चारित्र भाग से हमें भी कुछ सोचना है। इसीविषय की पूर्ति के लिए विमलनाथ की प्रार्थना चल रही है—

विमल जिनेश्वर सेविये

आप इसके आधार पर अपने जीवन के कर्तव्यों को समझकर अपनी क्रियात्मक उपादान और निमित्त शक्ति को समझने का प्रयास करेंगे तो हमारा जीवन धीरे धीरे निर्मलता की तरफ बढ़ता जावेगा। इस निर्मलता की तरफ बढ़ते हुए आप भी विमलनाथ की तरह बन सकते हैं।

लाल भवन
२९ जुलाई ७२